'बेदिल सरहदी के 'धूप खिली है ' गजलों में जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण'

डॉ. गजानन सुखदेव चव्हाण
सहयोगी प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
श्रीमती गंगाबाई खिवराज घोड़ावत कन्या महाविद्यालय,
जयसिंगपुर।
ई-मेल : chavangajanan1980@gmail.com
दूरभाष : 9890277316

शोध सारांश

गज़ल उर्दू काव्य की विद्या है। उर्दू में ग़ज़ल की परम्परा फारसी से आयी। फारसी में 'रौदकी' नामक कवि हो गए, जिनकी रचनाओं में ग़ज़ल शैली के दर्शन हुए। यद्यपि ग़ज़ल को फारसी में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व मिला किन्तु उसका मूल स्रोत अरबी काव्य में मिलता है। ग़ज़ल शब्द अरबी भाषा का ही है जो प्रेमी और प्रेमिका के वार्तालाप के अर्थ में प्रयोग किया जाता रहा है। अरबी कविगण प्रायः अपने राजाओं की प्रशंसा में 'क़सीदे' लिखा करते थे जिसका प्रारम्भिक अंश प्रेम एवं श्रृंगार के भावों से ओतप्रोत था। क़सीदे के इसी अंश को फारसी कवियों ने ग़ज़ल के रूप में स्वीकार किया। फारसी ग़ज़ल की परम्परा जब उर्दू में आयी तो भारत के विभिन्न साहित्यिक केंद्रों पर इसका विकास एवं संस्कार हुआ। फारसी में रौदकी से लेकर सादी शीराजी तक ग़ज़ल की विशाल परम्परा मिलती है। सादी, अमीर खुसरो और हाफिज़ शीराजी की ग़ज़लें फारसी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। उर्दू में ग़ज़ल की जो प्रतिष्ठा एवं लोकप्रियता मिली, उससे हिंदी काव्य भी प्रभावित हुए बिना न रह सके जिसमें बेदिल सरहदी आदि ग़ज़लकार उल्लेखनीय है। बेदिल सरहदी, जो एक जाने-माने उर्दू शायर और संत निरंकारी मिशन के पूर्व संपादक थे। इनका ग़ज़ल संग्रह 'धूप खिली है' में बहुत ही साफ-सुथरा और पवित्र लेखन शामिल है, जिनमें जीवन के उच्च और श्रेष्ठ मूल्यों का चित्रण किया है। उनकी कविताएं अक्सर आध्यात्मिक दृष्टिकोण से जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालती है। बेदिल सरहदी एक संवेदनशील और समझदार इंसान का दिल और दिमाग रखनेवाले गजलकार है। आज की विशिष्ट परिस्थितियों में यह गजलें महत्वपूर्ण उपदेश देती है। उर्दू संग्रह को देवनागरी लिपि में प्रस्तुत किया है। हिंदी भाषियों की सुविधा के लिए उर्दू के कठिन शब्दों के हिंदी अर्थ भी दिए जा रहे हैं। यह गज़ल संग्रह जहाँ काव्य प्रेमी लोगों को सुकून देगा, वहीं एक आम पाठक को जीवन में सकारात्मक सोच (मसबत तर्ज़े-फ़िक्र) अपनाने की प्रेरणा देगा। बेदिल सरहदी ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में से खासकर दार्शनिक स्वर का चित्रण किया है। उन्होंने जीवन, मृत्यु, समय और अस्तित्व के कठिन सवालों को ग़ज़ल में सादगी से पिरोया है। सरहदी का सकारात्मक सोच का तरीका, प्रेरणा एंव प्रोत्साहन उन्हे सदगुरु से प्राप्त हुआ है। सदगुरु की कृपा से परमात्मा की प्राप्ति हो गयी है। इसलिए इसी अनुभव से समाज को जाग्रत करना चाहते है। बेदिल सरहदी का 'धूप खिला है' गज़ल संग्रह में बहुत ही 'साफ-सुथरा और पाकीज़ा' (पवित्र) कलाम है, जो जीवन के उच्च मूल्यों को दर्शाता है। भाषा: इसमें उर्दू के साथ-साथ हिंदी गीतों और कविताओं की खूबसूरती का भी मिश्रण है। हिंदी पाठकों की सुविधा के लिए कठिन उर्दू शब्दों के अर्थ भी दिए गए हैं। इसका उद्देश्य पाठकों को जीवन के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करना है। प्रेमपरक ग़ज़लों से हटकर यदि हमें सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक सांस्कृतिक, व्यंग्यात्मक, आध्यात्मिक एवं कुछ यथार्थवादी ग़ज़लों का अध्ययन मिलता है। बेदिल ने अपनी ग़ज़लों में देवताओं के साथ मानव और मानवीय मूल्यों को प्रधानता देते हैं। जहाँ उर्दू-फारसी ग़ज़ल 'इश्क-ए-हक़ीक़ी' (ईश्वरीय प्रेम) और 'इश्क-ए-मिज़ाजी' (लौकिक प्रेम) तक सीमित थी, उसी लौकिक-अलौकिक दृष्टिकोण से कायम रखकर ईश्वरीय अनुभव को अभिव्यक्ति करने का प्रयास बेदिल सरहदी ने किया है। हिंदी-उर्दू का मेल से उनके भाषाई बदलाव के कारण इनकी उर्दू ग़ज़ल हिंदी के अत्यंत समीप आ गई है।

बीज शब्द - गज़ल,धूप खिली है, बसीरत, इबादत, तजसुस, मारफत, इंसानियत,तौहीद, तहजीब

प्रस्तावना :

गज़ल फारसी और उर्दू की एक लोकप्रिय काव्य विद्या है। उर्दू में ग़ज़ल की परम्परा फारसी से आयी। फारसी में 'रौदकी' नामक कवि हो गए, जिनकी रचनाओं में ग़ज़ल शैली के दर्शन हुए। यद्यपि ग़ज़ल को फारसी में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व मिला किन्तु उसका मूल स्रोत अरबी काव्य में मिलता है। ग़ज़ल शब्द अरबी भाषा का ही है जो प्रेमी और प्रेमिका के वार्तालाप के अर्थ में प्रयोग किया जाता रहा है। अरबी कविगण प्रायः अपने राजाओं की प्रशंसा में 'क़सीदे' लिखा करते थे जिसका प्रारम्भिक अंश प्रेम

एवं श्रृंगार के भावों से ओतप्रोत था। क़सीदे के इसी अंश को फारसी कवियों ने ग़ज़ल के रूप में स्वीकार किया। फारसी ग़ज़ल की परम्परा जब उर्दू में आयी तो भारत के विभिन्न साहित्यिक केंद्रों पर इसका विकास एवं संस्कार हुआ। फारसी में रौदकी से लेकर सादी शीराजी तक ग़ज़ल की विशाल परम्परा मिलती है। सादी, अमीर खुसरो और हाफिज़ शीराजी की ग़ज़लें फारसी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। उर्दू में ग़ज़ल की जो प्रतिष्ठा एवं लोकप्रियता मिली, उससे हिंदी काव्य भी प्रभावित हुए बिना न रह सके। भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग कवियों ने ग़ज़ल परम्परा को समृद्ध बनाया। इस परंपरा को रामप्रसाद 'बिस्मिल', निराला, प्रसाद, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', हरिकृष्ण 'प्रेमी', शमशेर बहादुर सिंह, गिरिजाकुमार माथुर, दुष्यंत कुमार आदि ने विकसित कराया हैं। निरंकार देव सेवक, चंद्रसेन विराट, कुंवर बेचैन, भवानी शंकर, ज़हीर कुरैशी, जोश मलिहाबादी, फिराक गोरखपुरी, फैज़ अहमद फैज़, बशीर बद्र, वसीम बरेलवी, माया (राजे खन्ना), बेदिल सरहदी आदि ग़ज़लकार उल्लेखनीय है। बेदिल सरहदी का मूल नाम मनोहर लाल आहूजा था। उनका जन्म सन् 10 नवम्बर 1929 में डेरा इस्माइल खान, पाकिस्तान के खैबर (उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत) पख्तूनख्खा में हुआ। उनका निधन दिल्ली में 2003 में हुआ है। बेदिल सरहदी, जो एक जाने-माने उर्दू शायर और संत निरंकारी मिशन के पूर्व संपादक थे। इनका ग़ज़ल संग्रह (मजमुआ ए कलाम) 'धूप खिली है' नवंबर 1993 में प्रकाशित हुआ था। इसका प्रकाशन संत निरंकारी मंडल, दिल्ली द्वारा प्रकाशित किया गया है। ग़ज़लों के इस संग्रह में बहुत ही साफ-सुथरा और पवित्र लेखन शामिल है, जिनमें जीवन के उच्च और श्रेष्ठ मूल्यों का चित्रण किया है। उनकी कविताएं अक्सर आध्यात्मिक दृष्टिकोण से जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालती है।

बेदिल सरहदी एक संवेदनशील और समझदार इंसान का दिल और दिमाग रखनेवाले गजलकार है। आज की विशिष्ट परिस्थितियों में यह गजलें महत्वपूर्ण उपदेश देती है। कुछ ग़ज़लों में ऐसे शब्दों का सुंदर प्रयोग मिलता है जो हिंदी गीतों और कविताओं की खूबसूरती है। उर्दू संग्रह को देवनागरी लिपि में प्रस्तुत किया है। हिंदी भाषियों की सुविधा के लिए उर्दू के कठिन शब्दों के हिंदी अर्थ भी दिए जा रहे हैं। यह गज़ल संग्रह जहाँ काव्य प्रेमी लोगों को सुकून देगा, वहीं एक आम पाठक को जीवन में सकारात्मक सोच (मसबत तर्ज़े-फ़िक्र) अपनाने की प्रेरणा देगा। "हिंदी ग़ज़लों में प्रेम, सौंदर्य, सुकुमारता और माधुर्य एंव संगीतात्मकता के साथ-साथ जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों एंव विद्रूपताओं के स्वर मुखरित होने के कारण श्रृंगार के साथ-साथ अन्य रसों का परिपाक भी हुआ है।"[i] बेदिल सरहदी ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में से खासकर दार्शनिक स्वर पर 'धूप खिली है' में गजलों चित्रण किया है। उन्होंने जीवन, मृत्यु, समय और अस्तित्व के कठिन सवालों को ग़ज़ल में सादगी से पिरोया है। सरहदी का सकारात्मक सोच का तरीका, प्रेरणा एंव प्रोत्साहन उन्हे सदगुरु से प्राप्त हुआ है। सदगुरु की कृपा से परमात्मा की प्राप्ति हो गयी है। इसलिए इसी अनुभव से समाज को जाग्रत करना चाहते है। बेदिल सरहदी कहते है -

"किस धांधली से सुबह को कहते है शाम लोग
देने लगे हैं झूठ को सच का मुकाम लोग।"[ii]

बेदिल सरहदी ने अपनी पहली गज़ल में समाज के लोगों की जल्दबाजी या मनमानी का वर्णन किया है। लोग सुबह को शाम कह रहे है। इसी गलतफहमी में असत्य को सत्य समझ रहे हैं, जैसे कि अज्ञानता को ज्ञान अथवा प्रकाश कह रहे हैं। ऐसी स्थिति में लोग को समझाने की ज़रूरत है। आगे जाकर कवि कहते हैं -

"चेहरे की धूल पर न पड़ेगी कभी निगाह
इल्ज़ाम आइनों पे रखेंगे तमाम लोग।"[iii]

इसतरह लोग गलती स्वयं कर रहे हैं और दोष दूसरों को दे रहे हैं। जैसे ग़ालिब की प्रसिद्ध गज़ल की तरह— ' उम्र भर गालिब यही भूल करता रहा,धूल चेहरे पर थी और आईना साफ करता रहा'। उसी तरह लोग अपनी गलती को समाज की गलती समझ रहे हैं। इसी अंधकार और अज्ञान रूपी समाज को सचका पता लगाकर खुद को जाग्रत रहकर अपनी गलती भी समझनी चाहिए। इन लोगों को भलाई और बुराई की पहचान आवश्यक है।

"बेदिल ये नेक ओ बद को पहचानते भी हैं
फिर जाने क्यों बुराई से लेते हैं काम लोग।"[iv]

कवि बेदिल कहता है लोगों को अच्छे-बुरे पहचान नहीं फिर भी वे बुराई की ही सहारा लेते हैं। उन्हें सच्चाई परख होनी जरूरी है। ऐसी दृष्टि अथवा सिद्धांत से जुड़ना चाहिए जिसमें सत्य और प्रेम का मार्ग मिलता है। समाज में ठोकरें खाने वालों को सरल मार्गदर्शक ढूंढना चाहिए। हमें ज्ञान का प्रकाश और मानवीयता चाहता है। लेकिन लोग इस रास्ते से भागते नजर आते है। इसलिए वे कहते हैं -

"हैं रास्ते कई बेदिल फ़रार के यूं तो
मगर फ़रार परेशानियों का हल तो नहीं" [v]

हमें यह मार्ग परेशानियों का तो लग रहा है लेकिन यह वह मार्ग है जहां मानवीयता या जीवन में बदलाव आ सकता हैं। इसलिए इस वास्तविकता को देखने के लिए भले ही कठिन मार्ग है, पर सच्चाई देखनी चाहिए -

"खरा सोना है या खोटा तपा कर देख लेते हैं
हकीकत को चलो सूली चढ़ा कर देख लेते हैं"[vi]

इस सच्चाई मार्ग को परखने के लिए ग्रंथ प्रचिती, आत्म प्रचिती और गुरु प्रचिती भी देखना जरूरी है। यह ज्ञान सत्य और शाश्वत है। उसे अध्यात्म, विज्ञान और अनुभव पर परखना जरूरी है जैसे सोना खरा या खोटा उसे तपा-तपाकर देखना जरूरी है।

"अहल ए बसीरत का करना है वहमों के अंधेरे नगर में
मुमकिन हो तो कदम कदम पर ज्ञान की इक कन्दील जला दे"[vii]

दिव्य दृष्टि (सद्गुरु) वालों का कहना है कि भ्रम में पडकर लोग जीवन का ही उद्देश्य भूल रहे है।समाजरुपी अंधेरे नगरी में ज्ञान का प्रकाश दिखाने वाले सद्गुरु हमें ढूंढना चाहिए। हमारा उद्देश्य ज्ञान का प्रकाश मिलना है। इसके लिए किसी मंदिर-मस्जिद में जाने की जरूरी नहीं है। हमें स्वयं में ज्ञान का प्रकाश स्त्रोत है उसे जगाना चाहिए।

"मकसद जो समझ में आ जाता लोगों को इबादत का 'बेदिल'
रही न जरूरत दुनियाँ को फिर इतने इबादतखानों की:[viii]

मनुष्य इस दुनिया में क्यों आया है,इसका उद्देश्य भूल गया है।उसे जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिए मनुष्य जीवन मिला है। हमें ईश्वर की प्राप्ति हो जाएगी तब हमें पूजा और पूजास्थल की जरूरत नहीं होगी। यह खुद ही है इसलिए यह प्राप्ति करना चाहिए। इसलिए हमें ईश्वर रूपी पवित्र ज्ञान की जरूरी है इसलिए सद्गुरु की आवश्यकता है। सद्गुरु से ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। इनका वर्णन करते हुए बेदिल कहते है -

काम का बनना बिगड़ना जब इसी के हाथ है
किसलिए चिंता करें हम नफा या नुकसान की
आप मुस्काये तो कलियां खिल उठी गुलजार में
ये करामात हमने देखी आपकी मुस्कान की[ix]

आज समाज को सद्गुरु के उपदेश की आवश्यकता है जिसके माध्यम से हमें ईश्वर के बारे में जानकारी मिलेगी। लेकीन लोग अपने आपको बुद्धिमान समझ रहे है। ईश्वर प्राप्ति के बजाए लोग अपनी मस्ती में मस्त रह रहे हैं। इसके बारे में ग़ज़लकार कहते हैं—

"इस दुनिया के मयखाने में मस्त हैं अपने हाल में सब
किस से दिल की बात करें हम कोई यहाँ हुशियार भी हो।" [x]

दुनियावी लोग स्वयं को विद्वान समझकर चल रहे हैं। अपनों से दूसरों को कम समझ रहे है। इसलिए मनुष्य को अपने-आप चिंतित दिख रहे हैं। सभी अपनी ही समस्या से त्रस्त है। आज मनुष्य को आनंद और खुशी की जरूरत है। इसका उपाय कवि बेदिल बताते है-

"हम सब एक ही रब के बंदे लड़ने में क्यों उम्र गुज़ारें
मिलजुल कर हम जीवन नैया भवसागर से पार उतारें।" [xi]

हम सभी मनुष्य ईश्वर के अंश हैं। इसलिए आपस में लड़ने के बजाय मिलजुल कर जीवन की नौका को भवसागर पार करना चाहिए। ईश्वर ने सारी सृष्टि का निर्माण करवाया है। फिर भी इसके बारे में मनुष्य अनजान है, जिंदगीभर ईश्वर की पहचान न करने के बजाए मायावी दुनिया में फंस रहा है।

"आईना साज से पूछो ये तमाशा क्या है
अक्स का नाम ही जलवा है तो जलवा क्या है"[xii]

जिसतरह दर्पण बनानेवालो को दर्पण किसे कहते है, ठिक उसीप्रकार ईश्वर ने मनुष्य की निर्मिती की है। उसी तरह हमें निर्मित किए ईश्वर की प्राप्ति करने के लिए प्रयास करना चाहिए।

"गिरना उठना, उठकर चलना मंज़िल की तरफ बढ़ते रहना
दरअसल हमारा जीवन ही इक सई ओ अमल का झरना है।"[xiii]

गिरना उठना और उठकर चलना मंज़िल की तरफ बढ़ते रहना दरअसल हमारा सच्चा जीवन है। इसके प्राप्ति के लिए प्रयास और कर्म करना महत्वपूर्ण है। ईश्वर प्राप्ति के लिए मनुष्य को निरंतर प्रयास करना चाहिए और इसके लिए कर्म करने की आवश्यकता है। इसके लिए जीवन में "एकत्व" (Oneness) और "इंसानियत" होना चाहिए, वे कहते है -

"अपने इस कारवां में सभी लोग हैं, जिनमें हिंदू भी, सिख भी, मुसलमां भी है
लाख तूफ़ान आये तो कुछ गम नहीं हम न छोड़ेंगे अपनी डगर दोस्तों" [xiv]

मानवता एंव एकता के लिए इस कारवां एवं समागम में आना चाहिए। जहाँ हिंदू, सिख, मुसलमान आदि सभी जाति और धर्म को लेकर चलता है। सभी का एक ही परमात्मा रूप है जिसे मुक्ति पर्व माना जाता है। आज यह मानवता धर्म जरूरी है -

"फंस के जाति धर्म में भटके हुए हैं आदमी
फिर से मानव धर्म पर है आस्था आस्था लानी मुझे" [xv]

बेदिल सरहदी कहते है जाति-धर्म में लिप्त मनुष्य को मानवीयता का एहसास जरूरी है। मानवता धर्म जगाने वाले ईश्वर का दर्शन करने वाला ये सद्गुरु मसीहा है जिसका मिशन मनुष्य को मनुष्यता लाने का है। हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि सब धर्म के लोग एक ही संप्रदाय से जुडे है। जहां कोई दीवार खडी नहीं है।

"हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई होने हैं सब एक यहाँ
आओ देखो इस महफ़िल में मज़हब की दीवार नहीं" [xvi]

इस निरंकारी मिशन में किसी जाति धर्म की दीवार नहीं है। आज दुनिया को छल-कपट और भ्रम में डाल दिया है, जिसे सही ज्ञान नहीं मिला। जब इसका ज्ञान हो गया तो सारे भ्रम दूर हो गए। इसलिए वे कहते हैं -

"भरमा दिया था दहर के मक्र ओ फ़रेब ने
जब आगही हुई मेरे सारे भ्रम गये "[xvii]

परमात्मा की प्राप्ति होने के बाद सारे भ्रम जाते है। सभी जगह एक परमात्मा का रूप दिखने लगा है जब ब्रह्मज्ञान होने से जीवन में आती है - ब्रह्मज्ञान होने के बाद अवस्था बदल जाती है -

"ये कौन छू गया है इन्हें आके प्यार से
हर चीज लग रही है बहुत खुशगवार आज" [xviii]

ईश्वर का ज्ञान होने से सारा विश्व अपना लगता है। जैसै जीवन में आनंद की अवस्था आती है।अपने पराये का भेद मिट जाता है। ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होने से हमें अपने आप का अस्तित्व होता है

"मारफत की मय से भरने आये हैं पैमाना हम
और जायें भी कहां ए साकी ए मयखाना हम " [xix]

जिसप्रकार शराब पीने से आदमी अपने आप में खो जाता है। जिसको किसकी सुद नहीं रहती। ठिक उसीप्रकार ब्रह्मज्ञान से सारा विश्व में एक ही परमात्मा में व्याप्त है । इसी एकत्व भावना की आज दुनिया को सबसे अधिक ज़रूरत है।

"यकरंगी ही रहने दे सौ रंग न पैदा कर,
आईने में तू अपनी सूरत को न देखाकर।"[xx]

दुनिया के विभिन्न धर्म संप्रदाय के रंग के बजाए मानवता का एक रंग होना जरुरी है। एकेश्वरवाद (तौहीद) के बारे में बेदिल कहते हैं कि एक ईश्वर के सब संतान है इसीसे मनुष्य के जीवन खुशियों का माहौल हो जाएगा।

"हर किसी के हाथ जब तौहीद का पैमाना था,
ज़िंदगी का नाम तब खुशियों का इक मयखाना था।"[xxi]

सभी मनुष्य को एकता के सूत्र में बांधने से नफरत या वैर आ जाएगा। ज्ञान प्राप्त होने पर मनुष्य को हर चीज़ में ईश्वर का अंश महसूस होता है।

"तेरी तसवीर को फूलों सा सजाकर देखूँ,
मेहरबा तुझको मैं भगवान बनाकर देखूँ।"[xxii]

ब्रह्मज्ञान प्राप्त होने से मनुष्य को ईश्वर का रुप ही समझने से भगवान बन जाता है। मनुष्य कुछ भी बने, लेकिन सबसे पहले उसका 'इंसान' बनना आवश्यक है।

"कभी बुरा नहीं सोचा किसी का ऐ 'बेदिल',

रहे हयात में इंसानियत से काम लिया।"[xxiii]

सदुरु के इशारे मात्र से अज्ञानता का पर्दा हट जाता है और ईश्वर के दर्शन सुलभ हो जाता हैं। सदगुरु हमें सच्चे जीवन पथ या मार्ग पर ले जाएगा यही मानवीयता वाला स्वर्ग होगा।

"करके इशारा आपने मुझको खुदा दिखा दिया,
अब तक पड़ा था आँख पे पर्दा जो हटा दिया।"[xxiv]

सदुरु ने ब्रह्मज्ञान का ईशारा दिखाकर माया का पर्दा हटाकर परमात्मा स्वरूप दिखाया है। ज्ञान प्राप्त होने के बाद ईश्वर केवल मंदिर या मस्जिद में ही नहीं, बल्कि मूर्तियों (बुत) और कण-कण में नज़र आने लगता है।

"तुम्हारी एक नज़र से हो गया है जाने क्या हमको,
बुतों में भी नज़र आती है अब शान-ए-खुदा हमको।"[xxv]

आज समाज में हम जिसे पालनहार समझते हैं, वही लोग हमें डुबा रहे हैं। जिससे हम यह व्यवस्था चलाने पर विश्वास रखते है। वही हमें हाशिए पर रख रहे है। भले ही सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक व्यवस्था हो।

"दावा था ना खुदाई का जिनको वही तो थे,
किश्ती मेरी डूबी के किनारे हुए हैं लोग"[xxvi]

इस व्यवस्था के विरोध में जीवन में सही ईश्वर का ज्ञान होना ज़रूरी है, जिससे बदलाव आ सकता है। यह सत्संग, सेवा और सुमिरन द्वारा ही मिल सकता है।

"ए काश कोई ला दे मुझे मारफत का जाम,
ये जेहन की थकान है नहीं जिस्म की थकन"[xxvii]

ज्ञान हमें शरीर के लिए नहीं, आत्मा के लिए ज़रूरी है। मनुष्य की मुक्ति के लिए आत्मज्ञान होना मनुष्य जन्म का उद्देश्य है।

"वो दोस्त हो कि दुश्मन कीजे यकीन किस का,
इस दौर में तो सब कुछ मुमकिन है हर बशर से"[xxviii]

दुनिया में हमारा कौन भले की कामना कर रहा है या बुराई की, इसकी पहचान होना ज़रूरी है। सही अर्थ में मनुष्य की वास्तविक पहचान कराना ज़रूरी है। मनुष्य को इस जीवन के आकर क्या काम करना है इसकी समझ होना चाहिए। मानवता का यही सफर होना चाहिए।

"है वही चलने की धून मुझको दिले मुजतर अभी,
आये हैं जिस बज्म से होश ओ खिरद खोकर अभी"[xxix]

चौरासी लाख योनियों के बाद बहुत मुश्किल से मनुष्य जन्म मिलता है। इस जीवन में आए हैं तो हमें भगवंत प्राप्ति की व्याकुलता होनी चाहिए कि जीवन में शुभावस्था हो। इसके लिए ग्रंथो का अभ्यास और विवेक होना ज़रूरी है। इसके लिए उनका ईश्वर स्मरण ज़रूरी है।

"गुफ्तगू करता हूँ जब भी जाम से,
इब्तदा करता हूँ तेरे नाम से"[xxx]

जब ईश्वर को देख लेंगे के इसका ही नाम लेना चाहिए, इससे वार्तालाप होना चाहिए। यह सब ईश्वर की प्राप्ति या ज्ञान होने से जीवन मुक्ति संभव है।

"तू है लौ किसी दिये की तेरी ज़ात आरफ़ाना
तू लिखा हुआ गुलों पर कोई शबनमी फ़साना"[xxxi]

ईश्वर का ज्ञान होने से मनुष्य में बदलाव नज़र आता है। जैसे फूलों की महक खुशबू में है ठिक उसीतरह मनुष्य की महक या उद्देश्य ईश्वर प्राप्ति है। मृत्यु के बारे में हमने हमेशा बात सुनी है। जीवन बार-बार नहीं मिलेगा इसके कायम-दायम अविनाशी परमपिता परमात्मा की पहचान होना ज़रूरी है। परमात्मा ज्ञान होने से मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है। इसके ज्ञानामृत मिलना जरुरी है।

"कोई मुझको पिला गया 'बेदिल'
जैसे मन्तर पढ़ा हुआ पानी"[xxxii]

हिंदू धर्म और अन्य परम्पराओं में एक पवित्र और शक्तिशाली जल होता है,ऐसे मानते है। जब ज्ञान होने से जीवन में बदलाव होता है, जैसे अमृत पीने से आदमी अमर हो जाता है, ऐसा कहते हैं। यही ठिकाना है आप को जीवनमुक्ति या जीवन-मरण फिर मुक्ति हो।

"वही ठिकाना है ऐन मुमकिन वही पे अपना बहल सके जी
चलो चलें मयकदे में 'बेदिल' किया मिले खुशगवार शायद" "[xxxiii]

हमें मृतक के बाद जिस ठिकाणे पर जाना है। जहाँ हमें खुशी मिलेगी। 'बेदिल' कहते हैं इस के लिए सद्गुरु की कृपा होना ज़रूरी है।

"मैं हूँ क्या और क्या मेरी औकात
ये हजूर आप का बडप्पन है। "[xxxiv]

मेरी पात्रता नहीं है कि तप त्याग और हवन करके ईश्वर को हासिल कर सके लेकिन आपकी विशालता के कारण यह मुमकिन है। अंत में 'बेदिल' सरहदी कहते हैं।

"मेरी हर सांस रहन है बेदिल
वक्त कमबख्त एक महाजन है" [xxxv]

सद्गुरु की कृपा के कारण ईश्वर का ज्ञान हुआ है लेकिन मेरा दुर्भाग्य है इस समय के रहबर को पहचान नहीं पा रहा हूँ।

निष्कर्ष:

बेदिल सरहदी का 'धूप खिला है' गज़ल संग्रह में बहुत ही 'साफ-सुथरा और पाकीज़ा' (पवित्र) कलाम है, जो जीवन के उच्च मूल्यों को दर्शाता है। भाषा: इसमें उर्दू के साथ-साथ हिंदी गीतों और कविताओं की खूबसूरती का भी मिश्रण है। हिंदी पाठकों की सुविधा के लिए कठिन उर्दू शब्दों के अर्थ भी दिए गए हैं। इसका उद्देश्य पाठकों को जीवन के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करना है। प्रेमपरक ग़ज़लों से हटकर यदि हमें सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक सांस्कृतिक, व्यंग्यात्मक, आध्यात्मिक एवं कुछ यथार्थवादी ग़ज़लों का अध्ययन मिलता है। कवि ने व्यक्तिगत अनुभव को बहुआयामी आध्यात्मिक चेतना से जोड़कर इसको अभिव्यक्ति किया है। बेदिल ने अपनी ग़ज़लों में देवताओं के साथ मानव और मानवीय मूल्यों को प्रधानता देते हैं। इश्क से जीवन तक: जहाँ उर्दू-फारसी ग़ज़ल 'इश्क-ए-हक़ीक़ी' (ईश्वरीय प्रेम) और 'इश्क-ए-मिज़ाजी' (लौकिक प्रेम) तक सीमित थी, वहीं आज की ग़ज़ल जीवन के यथार्थवादी दृष्टिकोण से जोड़कर ईश्वरीय अनुभव को अभिव्यक्ति करने का प्रयास किया है। हिंदी-उर्दू का मेल से उनके भाषाई बदलाव के कारण इनकी उर्दू ग़ज़ल हिंदी के अत्यंत समीप आ गई है।।

संदर्भ ग्रंथसूचि

१. हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास डा ॅ.रोहिताश्व अस्थाना, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.1967, प्राक्कथन.पृ.सं.09
२. 'धूप खिली है',बेदिल सरहदी, सन्त निरंकारी मंडल, दिल्ली-9, पृ..सं.8
३. वही.पृ..सं.8
४. वही.पृ..सं.9
५. वही.पृ..सं.11
६. वही.पृ..सं.12
७. वही.पृ..सं.15
८. वही.पृ..सं.16
९. वही.पृ..सं.28-29
१०. वही.पृ..सं.30
११. वही.पृ..सं.31
१२. वही.पृ..सं.36
१३. वही.पृ..सं.37

१४. वही.पृ..सं.40
१५. वही.पृ..सं. 56
१६. वही.पृ..सं. 62
१७. वही.पृ..सं. 63
१८. वही.पृ..सं. 66
१९. वही.पृ..सं. 67
२०. वही.पृ..सं. 68
२१. वही.पृ..सं. 75
२२. वही.पृ..सं. 77
२३. वही.पृ..सं. 82
२४. वही.पृ..सं. 94
२५. वही.पृ..सं.105
२६. वही.पृ..सं.108
२७. वही.पृ..सं.110
२८. वही.पृ..सं.114
२९. वही.पृ..सं.117
३०. वही.पृ..सं.118
३१. वही.पृ..सं.122
३२. वही.पृ..सं.128
३३. वही.पृ..सं.134
३४. वही.पृ..सं.136
३५. वही.पृ..सं.136

*****

गुलज़ार के गीतों में आम आदमी

प्रो.डॉ. नाजिम इसाक शेख
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
श्री. विजसिंह यादव महाविद्यालय,
पेठ-वडगाव,
जि. कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
ध्वनि :6860851877
ई-मेल-nazimshaikh1969@gmail.com

शोध आलेख का सारांश:-

गुलज़ार ने केवल आम आदमी की बात नहीं की बल्कि उससे अपना रिश्ता बरकरार रखा। आम आदमी की छोटी-छोटी जरूरतों को गुलज़ार ने अपनी कविताओं का विषय बनाया है। गुलज़ार के गीत कल्पना की उड़ान नहीं बल्कि समाज की यथार्थवादी संवेदना से बने हैं। उनके गीतों में सामाजिक यथार्थ होने के कारण उनका हर गीत श्रोताओं को एक नया विचार अलग प्रकार के शब्द और निराशा से बाहर निकलकर आशावादी स्वर प्रदान करता है। गुलज़ार के गीतों में जीवन की छोटी-छोटी सुविधाओं के लिए संघर्ष-रत मनुष्य का सीधा-सटीक चित्रण हुआ है। उनके गीतों का अक्स ही भारतीय आम मनुष्य की सीधी-साधी जीवन-शैली है। सहज भाव से लिखे गुलज़ार के गीतों में आम आदमी की संवेदना झलकती है। उनके गीतों में मानवीयता की झलक देखने मिलती है। उनका हर गीत मानवतावाद की कसौटी पर खरा उतरता है। गुलज़ार के गीतों में आम आदमी की जीने की जद्दोजहद है तो दूसरी ओर अपने प्रेम को पाने के लिए की गई कोशिश है। वे एक ऐसे संवेदनशील गीतकार रहे जिन के गीतो में मनुष्य की बुनियादी समस्याओं का वास्तववादी चित्रण मिलता है।

प्रस्तावना:-

गुलज़ार मूलतः उर्दू और पंजाबी के कवि हैं, लेकिन बचपन से ही ही भाषा से लगाव के कारण उन्होंने उत्तरी भारत की अनेक भाषाओं में अपनी कविताएं एवं गीत लिखे। गुलज़ार का पूरा जीवन संघर्षमय रहा, अपने जीवन के शुरू के दिनों में उन्हें एक पेट्रोल पम्प पर काम करना पड़ा, वहाँ से जब वे मुंबई आए तब उन्हें एक गॉरेज में काम करना पड़ा। वे हिंदी फिल्मी दुनिया में भी संघर्ष के साथ कार्यरत रहे। फिल्मी अभिनेत्री राखी के साथ शादी तो की लेकिन वह बहुत दिनों तक टिक नहीं पाई। बेटी मेघना के जन्म के पश्चात दोनों ने एक-दूसरे से अलग रहने का फैसला किया लेकिन तलाक नहीं लिया। बेटी मेघना भी आज बतौर फिल्म निर्देशक का काम कर रही है। गुलज़ार जैसे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति दुनिया में बहुत कम दिखाई देते हैं। सफेद कुर्ता और पायजामा, हमेशा चेहरे पर मुस्कुराहट, बोलने में अत्यंत मृदभाषी, उर्दू और हिंदी के साफ उच्चारण। गुलज़ार को चाहे जितना सुनों ऐसा लगने लगता है कि और सुनते रहें। गुलज़ार की इस अदा से न केवल फिल्मी दुनिया बल्कि आम भारतीय आदमी भी उनसे प्रभावित हुए बगैर नहीं रहता।

विषय विवेचन:-

गुलज़ार को भारतीय सभी भाषाओं से लगाव है। उनके द्वारा किए गए बंगाली भाषा के प्रमुख साहित्यकार रविंद्रनाथ ठाकुर और शरत बाबू की रचनाओं के उर्दू अनुवाद बड़े लोकप्रिय हुए तो मराठी के प्रसिद्ध कवि कुसुमाग्रज (वि.वा. शिरवाडकर) जी की कविताओं का भी हिंदी-उर्दू अनुवाद बड़ा ही सराहा गया। अर्थात गुलज़ार की अपनी भाषा भले ही उर्दू-पंजाबी रही हो, लेकिन उन्होंने भारतीय अनेक भाषाओं का अध्ययन किया है तथा उन भाषाओं के बडे साहित्यकारों की कृतियों का अनुवाद भी किया है। फिल्मी दुनिया में आने के पश्चात भी वे वहाँ के बड़े निर्देशकों का, संगीतकारों का, गीतकारों का बडा सम्मान करते रहे। ऋषिकेश मुखर्जी, बिमल राय, सचिनदेव बर्मन, शैलेन्द्र, कवि प्रदीप और मीनाकुमारी का वे दिल की गहराईयों से सम्मान करते हैं। इन सब के प्रति उनकी गहरी आस्था है। गुलज़ार आज फिल्मी दुनिया में और भारतीय मीडिया में एक लोकप्रिय शख़्सियत की हैसियत से पहचाने जाते हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में और गीतों में भारतीय आम आदमी को अपनी नज़रों से ओझल होने नहीं दिया। भारतीय आम आदमी की समस्याओं का चित्रण उनकी अनेक कविताओं में तथा गीतों में दिखाई देता है। एक जुलाह पर लिखी कविता में वे कहते हैं -

"मुझको भी तरकीब सिखा कोई, यार जुलाहे!
अकसर तुझको देखा है कि ताना बुनते

जब कोई धागा टूट गया या खत्म हुआ
फिर से बांध के
और सिरा कोई जोड के उसमें
आगे बुनने लगते हो
तेरे इस ताने में लेकिन
इक भी गांठ गिरह बुनतर की
देख नहीं सकता है कोई
मैंने तो एक बार बुना था एक ही रिश्ता
लेकिन उसकी सारी गिरहें
साफ नजर आती हैं, मेरे यार जुलाहे।"[1]

गुलज़ार ने केवल आम आदमी की बात नहीं की बल्कि उससे अपना रिश्ता बरकरार रखा। आम आदमी की छोटी-छोटी जरूरतों को गुलज़ार ने अपनी कविताओं का विषय बनाया है। स्पष्ट है गुलज़ार के व्यक्तित्व में हमें अपनेपन की मिठी सुगं। महकती है। गुलज़ार ही के शब्दों में उनके व्यक्तित्व को कहना हो तो हम कह सकते हैं-
"आओ सारे पहन लें आइने, सारे देखेंगे अपना ही चेहरा।"

गुलज़ार की शायरी अपने समय की बेहतरीन शायरी है। गुलज़ार ने अपने जीवन में बहुत से उतार-चढ़ाव देखे हैं। उनका पूरा जीवन संघर्ष में बीता है, उनके गीतों में जो संवाद आए हैं वह कहीं और के नहीं हैं वे सभी संवाद और प्रतिवाद समाज से लिए हुए हैं। गुलज़ार के गीत कल्पना की उड़ान नहीं बल्कि समाज की यथार्थवादी संवेदना से बने हैं। उनके गीतों में सामाजिक यथार्थ होने के कारण उनका हर गीत श्रोताओं को एक नया विचार अलग प्रकार के शब्द और निराशा से बाहर निकलकर आशावादी स्वर प्रदान करता है। जिन्दगी से नाराज़ न होकर ज़िन्दगी से लड़ने का संदेशा उनके अनेक गीतों में मिलता है-

"तुझ से नाराज नहीं जिन्दगी हैरां हूँ मैं
तेरे मासूम सवालों से परेशान हूँ मैं
हां परेशान हूँ मैं
जीने के लिए सोचा ही नहीं, दर्द संभालने होंगे
मुस्कुराऊँ कभी तो लगता है,
जैसे होठों पे कर्ज रखा है,
तुझ से नाराज नहीं जिन्दगी हैरान हूँ मैं
तेरे मासूम सवालों से परेशान हूँ मैं।"[2]

गुलज़ार के गीतों में जीवन की छोटी-छोटी सुविधाओं के लिए संघर्ष-रत मनुष्य का सीधा-सटीक चित्रण हुआ है। उनके गीतों का अक्स ही भारतीय आम मनुष्य की सीधी-साधी जीवन-शैली है। गुलज़ार ने जब आगे चलकः खुद फिल्म-निर्देशन किया तब भी उन्होंने हिंदी फिल्मों में उस समय चलनेवाले 'ॲक्शन फिल्मों' को नहीं चुना बल्कि जिन्दगी से लड़नेवाले सीधे-साधे आम आदमी को ही अपने फिल्मों का नायक बनाया। उनकी ही पटकथा और निर्देशन में बनी 'आँधी' फिल्म के एक गीत में वे कहते हैं -

"तेरे बिना जिन्दगी से कोई शिकवा तो नहीं
शिकवा नहीं, शिकवा नहीं, शिकवा नहीं,
तेरे बिना जिन्दगी तो लेकिन, जिन्दगी तो नहीं,
जिन्दगी नहीं, जिन्दगी नहीं, जिन्दगी नहीं,
काश होता हो, तेरे कदमों से, चुनके मंजिल चले,
और कहीं, दूर कहीं,
तुम अगर साथ हो, मंजिलों की कमी तो नहीं,
तेरे बिना जिन्दगी से कोई, शिकवा तो नहीं"[3]

जब गुलज़ार इस प्रकार के शब्द लिखते हैं तो महसूस होने लगता है कि कहीं यह संवेदना हमारी अपनी तो संवेदना नहीं है। गुलज़ार के रूप में किसी आम व्यक्ति की संवेदना को पहचानने वाला मनोवैज्ञानिक बोल रहा है ऐसा लगने लगता है। गुलज़ार

के गीतों में ज़िन्दगी के उन लमहात का जिक्र हुआ है जहाँ व्यक्ति अपने आप को भूलकर अपने से ज्यादा अपने साथी की फिक्र करने लगता है। उनके प्रेम-गीतों में केवल प्रेम की उडान नहीं है बल्कि प्रेम की बारिकियों का चित्रण मिलता हैगुलज़ार ने जो फिल्में बनाई वह अकसर आम आदमी के 'घर' से सम्बन्धित हैं। इस घर में रहनेवाले पत्ति-पत्नी के प्रेम का उनकी छोटी-छोटी संवेदनाओं का बखूबी चित्रण उनके गीतों में दिखाई देता है-

"आपकी आँखों में कुछ, महके हुए से राज हैं,
आपसे भी खुबसूरत, आपके अंदाज हैं।
आपकी बातों में फिर कोई, शरारत तो नहीं,
बेवजह तारीफ करना, आपकी आदत तो नहीं।
आपकी बदमाशियों के, ये नये अंदाज हैं,
आपकी आंखों से कुछ, महके हुए से राज हैं।"[4]

गुलज़ार के गीत में उनके अपने जीवन को हैरान करनेवाला सफर दिखाई देता है। उनके गीत मानों उनके जीवन का एक हिस्सा ही हैं। उनके गीतों में बदलते हुए समय को भी देखा जा सकता है। जब गुलज़ार ने फिल्मों में गीत लिखना शुरू किया तब हिंदी फिल्मों में साहिर, मजरूह, शकील बदांयूनी, हसरत जयपुरी, शैलेंद्र जैसे मंझे हुए गीतकार अपने गीतों से हिंदी फिल्मी दुनिया को अजरामर कर रहे थे, ऐसे समय में अपने वजूद को बरकरार रखते हुए एक से बढ़कर एक लोकप्रिय गीत लिखना यह उस समय का कमाल ही था। इन सभी बड़े गीतकारों के बीच रहकर गुलज़ार ने अपनी अलग प्रकार की शैली को विकसित किया। इसी कारण तब से लेकर आज तक गुलज़ार अतीत और वर्तमान में भी अपना सिक्का जमाए हुए हैं। फिल्म ख़ामोशी के सभी गीत गुलज़ार की अलग पहचान सिद्ध करते हैं-

"वो शाम कुछ अजीब थी, ये शाम भी अजीब है
वो कल भी पास पास थी, वो आज भी करीब है,
झुकी हुई निगाह में, कहीं मेरा खयाल था,
दबी-दबी हँसी में इक, हसीन सा सवाल था,
मैं सोचता था, मेरा नाम गुनगुना रही है वो
न जाने क्यूँ लगा मुझे, कि मुस्कुरा रही है वो,
वो शाम कुछ अजीब थी, ये शाम भी अजीब है।"[5]

सहज भाव से लिखे गुलज़ार के गीतों में आम आदमी की संवेदना झलकती है। उनके गीतों में मानवीयता की झलक देखने मिलती है। उनका हर गीत मानवतावाद की कसौटी पर खरा उतरता है। हिंदी फिल्मी गीतकारों में दो प्रकार के गीतकार दिखाई देते हैं। एक को गीतकार हैं जिन्होंने उर्दू भाषा के अत्यंत परिनिष्ठित शब्दों का प्रयोग किया तो दूसरे प्रकार के वो गीतकार हैं जिन्होंने अवाम की साधारण भाषा का प्रयोग अपने गीतों में किया। गुलज़ार दूसरे प्रकार के गीतकारों में रहे जिन्होंने उत्तरी भारत या मुंबई में बोली जानेवाली आम भाषा का प्रयोग अपने गीतों में किया -

"हुजूर इस कदम भी न इतरा के चलिए
खुले आम आंचल न लहरा के चलिए,
बहुत खुबसूरत है हर बात लेकिन,
अगर दिल भी होता तो क्या बात होती,
लिखी जाती फिर वास्तान-ए-मुहब्बत,
एक अफसाने जैसे मुलाकात होती,
हुजूर इस कदर भी न इतरा के चलिए।" [6]

गुलज़ार ने उर्दू भाषा के आम शब्दों का प्रयोग कर अपने गीतों को भारतीय आम आदमी तक पहुँचाया। सन 1660-1670 के दशक के गुलज़ार के गीत आज भी श्रोताओं के मुख पर दिखाई देते हैं, इसका कारण उनकी साधारण भाषा है। उनकी सोच में सामाजिक द्वंद्व है, वो गीतों को सीधे आम आदमी से जोड़ते हैं। उपर्युक्त गीत में 'अगर दिल भी होता तो क्या बात होती' पंक्ति के माध्यम से आम नायक की संवेदना को सीधे-साधे शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है। गुलज़ार ने आम आदमी के दुःखों

को शिद्दत से महसूस किया है। उनके प्रेम-गीत भी आम नायक के मन की बात को ही कहते हैं, इसी कारण सुननेवाला उसे अपने आप अपनी भावनाओं के साथ जोड़ता है-

"मैंने तेरे लिए ही, सात रंग के सपने चुने,
सपने सुरीले सपने,
कुछ हंस के, कुछ गम के,
तेरे आखों के, साए चुराये,
रसीली यादों में,
मैंने तेरे लिए ही, सात रंग के सपने चुने।"[7]

गुलज़ार के गीतों में आम आदमी की जीने की जद्दोजहद है तो दूसरी ओर अपने प्रेम को पाने के लिए की गई कोशिश है। उनके गीतों में कल्पना की उड़ान कहीं नहीं है। सीधी साधी संवादात्मक शैली में लिखे उनके गीत हम सारों से बात करते हैं। ये गीत निरंतर गुफ्तगू करते प्रतीत होते हैं। यह गीत अपने आप में आत्मकेंद्रित नहीं हैं। सीधी-सरल जबान में समाज के रंग और हमरंग हो उठते हैं। यह गीत अपने ज़िन्दगी की तलाश किताबों में नहीं करते, आम आदमी की वेदना में करते हैं-हमारे समाज ने नारी को केवल देह तक सीमित रखा है, उसे उससे उपर उठाकर कभी नहीं देखा गया नारी भी मानवीय है, वह हमारी जीवन-साथी है इसे दिखाने का प्रयास गुलज़ार के कई गीतों में हुआ है। स्त्री-पात्रों के कई रूप उनके गीतों में दिखाई देते हैं। फिल्म 'रूदाली' की नाइका समाज से घबराकर अपने-आप से ही कहती है-

"दिल हूम-हूम करे, घबराए,
घन धम-धम करे, गरजाए,
एक बूंद कभी पानी की,
मेरे अंखियों से बरसाये,
जिस तन को छुआ तूने, उस तन को छुपाऊँ,
जिस मन को लागे नैना, वो किसको दिखाऊँ,
वो मोरी चंद्रमा, तेरी चांदनी अंग जलाए,
उंची तोरी अटरी, मैं ने पंख लिए कटवाए।"[8]

इस प्रकार गुलज़ार के गीतों में नारी की अंतरिक संवेदना को अभिव्यक्त किया गया है। गुलज़ार नारी के रिश्तों के गूढ़ यथार्थ को बडे सहज भाव से अपने गीतों में लाते हैं, जैसे मानों वे अपने ही हाल कोबर्यों कर रहे हो। नारी जीवन की सहन, आंतरिक, दिलकश अनुभूतियों को गुलज़ार ने अत्यंत सुंदर शब्दों में पिरोया है-

"हजार राहें मुड़ के देखी,
कहीं से कोई सदा न आई,
बड़ी वफा से निभाई तुमने,
हमारी थोड़ी सी बेवफाई,---
जहाँ से तुम मोड़ मुड़ गए थे,
वो मोड़ अभी वही खड़े हैं,
बड़ी वफा से निभाई तुमने"[9]

कहा जा सकता है कि गुलज़ार हिंदी फिल्मों के उन पुराने और नए गीतकारों के बीच की कड़ी रहे जिन के गीतों में पुराने और नए गीतों का मेल दिखाई देता है। वे एक ऐसे संवेदनशील गीतकार रहे जिन के गीतो में मनुष्य की बुनियादी समस्याओं का वास्तववादी चित्रण मिलता है। गुलज़ार के गीतों के शब्द संगीत की तरह मधुर एवं कोमल रहे। उनके गीतों को सुननेवाला श्रोता भावविभोर हो जाता है। अनेक संगीतकारों को यह कहते हुए सुना है कि गुलज़ार के गीतों को संगीतबद्ध करते समय विशेष मेहनत नहीं करनी पड़ती, उनके गीतों के शब्द खुद अपने-आप में ही संगीत का ऐहसास दिलाते हैं। गुलज़ार के शब्दों में वह जादू है जिस से आम श्रोता उन गीतों से इतना तादात्म्य प्रस्थापित करता है कि वह अपने सुख-दुःख को भूलकर उन गीतों में ही खो जाता है। उनके गीतों में जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है वह उर्दू के शब्द है, उनमें अदब (साहित्यिकता) तो है ही लेकिन दुरूहता नहीं है। शब्द बोझिल नहीं हैं, आम श्रोता इन शब्दों को अपने अंतरंग से महसूस कर लेता है।

"नाम गुम हो जाएगा, चेहरा ये बदल जाएगा
मेरी आवाज़ ही पहचान है, गर याद रहे
जो गुज़र गई कल की बात थी
उम्र तो नहीं, एक रात थी
रात का सिला अगर फिर मिले कहीं
मेरी आवाज़ ही पहचान है।"[10]

गुलज़ार की आवाज को हर दम याद किया जाएगा। पिछले पांच दशकों से उनके गीतों ने लोगों के मन को मोह लिया है और आगे भी न जाने कितने दिन शायद यह आवाज याद की जाती रहेगी।

निष्कर्षत:-

गुलज़ार का हर गीत एक साहित्यिक सुंदर कविता है। उनके गीतों में साहित्य के सभी तथ्य मिलते हैं। छोटी-छोटी ज़िन्दगी की समस्याओं को गुलज़ार ने अपने गीतों में पिरोया है। उन के गीतों को सुनकर हर-दम यह एहसास होने लगता है कि यह शब्द हमारे आस-पास के शब्द हैं, यह संवेदना किसी और की नहीं यह संवेदना मेरी अपनी संवेदना है। खुशी और दुःख को गुलज़ार ने उतनी ही सहजता से अभिव्यक्त किया है। कहा जा सकता है कि हिन्दी गजल में समाज के प्रति प्रतिबद्धता दिखाई देती है। यह गजलकार समाज की संवेदनाओं के प्रति ईमानदार हैं, उन्हें भारतीय आम समाज की गहरी समज है। सामाजिक परिवर्तन के लिए उन्होंने इन समस्याओं को ईमानदारी से अंकित किया है। उन्होंने केवल समाज के दोषों को नहीं दिखाया बल्कि सामाजिक परिवर्तन के लिए सामूहिक रूप से विरोध की आवश्यकता को सूचित किया है। व्यष्टि और समष्टि की सही और बुनियादी समस्याओं को उन्होंने अपने ढंग से व्यक्त किया है। गुलज़ार जी में असीम आत्मविश्वास है, वे प्रकाश के पुजारी हैं, आशावादी स्वर उनमें निहित है। जिजीविषा वृत्ति के दर्शन उनकी गजलों में होते हैं। जीने के लिए संघर्ष का संदेश वे देते हैं। अपनी गजलों के विषय सामाजिक विषमता के परिणाम, शोषण के सही कारणों का विश्लेषण, व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह और उन्हें यथार्थ ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए ईमानदार शब्द योजना इन कारणों से साठोत्तरी हिन्दी गजल आधुनिक हिंदी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. फिल्म - यार जुलाहे
2. फिल्म – मासूम
3. फिल्म – आंधी
4. फिल्म –घर
5. फिल्म –खामोशी
6. फिल्म –मासूम
7. फिल्म –आनंद
8. फिल्म –रुदाली
9. फिल्म –थोड़ी सी बेवफाई
10. फिल्म –किनारा

*****

आरिफ महात कृत 'तूफानों में जलते दिये' गजल संग्रह में भाव और विचारों का निरूपण

डॉ. गीता दोड्डमणी
सहायक प्राध्यापक
शिवाजी विश्वविद्यालय,कोल्हापुर
हिन्दी विभाग
मो.नं. 9975947550
ईमेल geetadodmani80@gmail.com

सारांश :

'गजल' शब्द अरबी भाषा का है। इस बात से सभी हिन्दी प्रेमी परिचित है। लेकिन गजल 'काव्य-स्वरूप' की दृष्टि से देखा जाय तो इसका विकास ईरान में हुआ है। 'गजल' शब्द के अर्थ और परिभाषा को लेकर विविध मतमतांतर सामने आते हैं। ये विविध मत प्राप्त होना ही विषय की विशालता को प्रस्तुत करता है। कुछ विद्वान गजल का संबंध फारसी शब्द 'गजाला' से मानते हैं। 'गजाला' का अर्थ है मृगनयनी। गजल का कोशगत अर्थ है 'कातना', बुनना आदि। गजल में मानवीय भावों को एक विशिष्ट शब्दावली में बुना जाता हैं। गजल में अक्सर हिन्दी के साथ अधिक मात्रा में उर्दू, फारसी के शब्द देखने को मिलते हैं। गजलकार आरिफ़जी ने प्रस्तुत गजल संग्रह 'तूफानों में जलते दिये' में अपने मन के भाव, विचार, समाज के ज्वलंत घटनाएँ, राजनीति, प्रेम, विरह, विषमता आदि विविध बातों को स्पष्ट किया है। गजल का एक अर्थ यह भी बताया जाता है, स्त्रियों से प्रेमभरी बाते करना किन्तु आज गजल का स्वरूप काफी बदल गया है। प्रेम के साथ-साथ समाज के विभिन्न रूप गजल के माध्यम से सामने आती हुई देखने को मिलती हैं। परिवर्तन सृष्टि का नियम है इसी के अनुसार साहित्य में भी समय की मांग के अनुसार बदलाव होता रहता है। तूफानों में जलते दिये इस गजल संग्रह में जीवन की भीषणता, अनबन, विरह, सियासत, चुनाव, सच्चाई, अकेलापन, हकीकत आदि अनेक विषयों को एक साथ एक गुलदस्ते के रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने की कोशिश की है।

बीज शब्द : तूफान, दिये, गजल, चुनाव, बेवफाई, प्रेम, रिश्ते, भीषणता, भयावह, बेआबरू, तड़प, सत्ता, भूलभुलैया, महफिल, वजूद, उलझन आदि।

प्रस्तावना:

हिन्दी साहित्य विधाओं में एक काव्य-विधा 'गजल' भी है। गजल उर्दू काव्य का सबसे लोकप्रिय रूप है। ये फारसी की एक लोकप्रिय विधा के रूप में भी जानी जाती है। कुछ लोग आज भी हिन्दी गजल के नाम से अचरज में पड़ जाते हैं। लेकिन गौरव की बात यह है की भारतेन्दु हरीशचंन्द्र और उनके पूर्ववर्ती कतिपय कवियों से लेकर आज तक हिन्दी गजल की एक लंबी कड़ी और सुसंपन्न परंपरा बनी रही है। उर्दू में गजल छंद की लोकप्रियता अत्यधिक है उसी से प्रभावित होकर हिन्दी कवियों ने इसे आग्रहपूर्वक अपनाया है। हिन्दी गजल के लिए उर्दू-फारसी गजल ने भावभूमि तैयार की है ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा।

विख्यात साहित्यकार जयशंकर प्रसाद को तो सभी जानते हैं किन्तु उन्हें गजलकार के रूप में बहुत कम लोग जानते हैं। प्रयोगवदी कवियों ने भी प्रयास किया हुआ दिखाई देता है किन्तु दुष्यंतकुमार के बाद हिन्दी कविता में गजल युग निरंतर रहा है। 'गजल' अरबी भाषा का स्त्री लिंगी शब्द है, जिसका अर्थ बताया जाता है प्रेमिका से बाते करना। किन्तु आज 'गजल' केवल प्रेम तक सीमित नहीं रही, इसमें समाज, राजनीति, धर्म, शासन और सर्वहारा वर्ग की समस्याएँ, विसंगतियाँ आदि का यथार्थ प्रतिबिंब देखने को मिलता है। गजलकार अपनी विचार अभिव्यक्ति हेतु अभिधा को छोड़कर व्यंजना और लक्षणा को अपनाते हैं और शब्द-सौष्ठव का विशेष ध्यान रखते हैं। गजलकार आरिफ़ युवा कवि हैं। साहित्य की इस परंपरा से अनभिज्ञ नहीं हैं। उर्दू उनके नस-नस में बसी हुई है। समाज हितचिंतक है। समाज को लेकर एक अजीब सी कश्मकश उनके मन में उथल-पुतल कर रही हैं। इस मनोदशा में उनके विचारों की अभिव्यक्ति हेतु 'तूफानों में जलते दिये' इस गजल संग्रह का सृजन हुआ होगा। इन गजलों से उनके विचारों के विविध आयाम प्रस्तुत हुए हैं ऐसा कहना अनुचित नहीं लगता।

गजल का अर्थ:

मानक हिन्दी शब्दकोश के अनुसार- गजल शब्द का अर्थ बताया है-"स्त्री लिंगी फारसी-उर्दू तथा हिन्दी में एक प्रकार का पध्य"[1]

परिभाषा :

- सुधी समीक्षक एवं साहित्यकार श्री गोपाल कृष्ण कौल लिखते हैं कि- "हिन्दी गजल एक प्रकार की गीतात्मक कविता है, फिर भी इसमें गीत की तरह पूरी कविता में एक ही विषय वस्तु नहीं होती है। एक गजल के अलग-अलग शेर में अलग-अलग बात कहीं जा सकती है।"[2]
- पं. रामेश्वर शुक्ल अंचल कहते हैं- "गजल में गंभीरता और जीवन दर्शन तथा सतही उथलेपन की समान गुंजाइश है।"[3]
- जहीर कुरैशी के शब्दों में "हिन्दी प्रकृति की गजल आम आदमी की जनवादी (भिड़वादी नहीं) अभिव्यक्ति है जो सबसे पहले अपने पाठक की तलाश करती है।"[4]

'तूफानों में जलते दिये' गजल में भाव और विचारों का निरूपण :

गजल का हर शेर स्वयमपूर्ण होता है। इसके दो बराबर के टुकड़े होते हैं, जिनको मिसरा कहते हैं। इसी प्रकार के लगभग पाँच से सत्रह शेरों के संग्रह को गजल कहते है। आरिफ़ जी के गजल संग्रह में गजल से जुड़ी लगभग सभी नियमों का पालन हुआ दिखाई देता है जैसे, हर शेर के अंत में बार-बार आनेवाली एक ही शब्द जिन्हें 'रफीद' कहते हैं और 'रफीद' के पहले आनेवाले एक ही आवाज वाले शब्दों को काफिया कहते हैं। एक उदाहरण-

"तेरे मेरे रिश्ते की हकीकत क्या है, मालूम नहीं
तुझ से बिछड़कर दिल उदास क्यों है, मालूम नहीं"[5]

'गजल' केवल प्रेम निरूपण का माध्यम नहीं बल्कि समाज का दर्पण बन गयी है। गजलों में भक्ति रस का भी निरूपण हुआ है। बहुत से सूफी कवियों ने गजलों में भक्ति का वर्णन देखने को मिलता है। इतना ही नहीं देश-प्रेम और पारिवारिक प्रेम आदि भी अछूता नहीं रहा है। इस तरह के विविध उदाहरणों को उजागर करने वाले शेर आरिफ़ जी ने इस गजल संग्रह में प्रस्तुत किए हैं। आरिफ़ जी के गजल मीर, जोफ, गालिब, से गुजरते गुलजार, जावेद अख्तर की परंपरा को निभाती चली है ऐसा वक्तव्य डॉ. सुनिलकुमार लवटे जी ने इस पुस्तक की भूमिका में लिखी हैं। आरिफ़ जी का यह गजल संग्रह अपने-आप में अद्भुत है। वर्तमान युग में शेरो शायरी के माध्यम से भी सामाजिकता, राजनीति, समस्याओं, विषमताओं, विसंगतियों आदि का चित्रण किया जा रहा है। प्रत्येक रचनाकार साहित्य सृजन करते समय कुछ उद्देश्य पूर्ति हेतु कार्य करता है। समाज के प्रति उसका दायित्व होता है। गजलकार आरिफ़ जी ने अपने दायित्व के प्रति सजगता दिखाकर अपनी सृजन कार्य के माध्यम से समाज के विविध पहलुओं को उजागर करने की कोशिश की है। अपने अनुभवों को पाठकों के साथ साझा करने की कोशिश की है। उनके कुछ अनुभव सामाजिक यथार्थ को निरूपित करते हैं। उनकी चिंता इन पंक्तियों में दिखाई देती है. जैसे-

"हो रही है बेआबरू अपनी ही बच्चियाँ सरेआम
उनकी आँखों में लावा सुलगते देख, ताज्जुब न कर।"[5]

रामायण, महाभारत से लेकर आज तक नारी का अपमान होता आया है और आज भी हालात बदले नहीं है। सरे आम लड़कियों की इज्जत पर हात डालते कुछ लोग जरा सा भी कतराते नहीं। लड़कियों को बेआबरू कर देते हैं जिसकी चिंता आरिफ़ जी ने बयान किया है। उनके अंदर सुलगता दर्द शब्द बनकर कागज पर उतरे हैं।

गजलकार आरिफ़ ने जीवन के यथार्थ को, जीवन की भीषणता को, भयावहता को प्रस्तुत करने की कोशिश की है। उनकी चिंता, घुटन, कश्मकश, हकीकत स्वर बनकर उमड़ना चाहती है। उनकी खामोशी के पीछे आग की लपटे झुलस रही है। हर चेहरे के पीछे दबी मुस्कान दिखाई देती है। आजाद होकर भी जिंदा लाश की तरह जीना पड़ रहा है। अनेक लोग उन्हें बेजुबान समझने की भूल कर रहे हैं। आरिफ़ लिखते हैं-

"बेकरार हैं बाहर आने अंदर कैद बेहिसाब जिंदा कहानियाँ
मेरी खामोशी देख वे समझते बेजुबान हूँ मैं।"[6]

आरिफ़ की बातों में तीव्रता है, पीड़ा है, जो समाज के जन-जन के मन को छूने की ताकत रखती है। इनकी गजले व्यक्ति और समाज से प्रत्यक्ष जुड़ती हैं और उसी दिशा में आगे बढ़ती हुई नजर आती है। इनकी गजलों में सामाजिक विसंगति की अभिव्यक्ति प्राप्त होती है-

"कठघरे में हैं वो सच जो आईना दिखाता है
खुशामदियों की इस दौर में कदर बन गयी है
घुल गया है शक आबोहवा में कुछ इस कदर 'आरिफ़'

देखते ही देखते दिलों के बीच दरार बन गयी है"[7]

जीवन की बागडौर संभालते-संभालते इन्सान थक जाता है। मनुष्य को कभी-कभी हर मोड पर अनेक रूपों में संघर्षों का सामना करना पड़ता है फिर भी जीने की उम्मीद न छोड़ने की सलाह गजलकार दे रहा है। कभी कबार झूठी अफवाहें फैलाई जाती हैं। दंगे, फ़सादों को भड़काया जाता है और ये सारा खेल सियासत की आड़ में होता है। शक दीवार बनकर खड़ी हो जाती है।जीने की होड में इन्सान भीड़ में भी अकेला हो जाता है जैसे कोई अछूत हो-

"जिंदगी सारी गुजार दी जीने की जद्दोजहद में
यूं तो हूँ इन्सान लेकिन अछूत हूँ इन्सानों के बीच"[8]

मजहबों में फिसता गजलकार आगे लिखते हैं-

"हिमायती बने रहना चाहता हूँ इंसानियत का
लेकिन हर मोड पर बट रहा हूँ मजहबों के बीच"[9]

समाज के विविध रूपों का नकाब उतारते हुए कवि अपनी बातों को बेबाकी से प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने विविध पहलुओं का चित्रण किया है। प्रेम, विरह, अनबन, चुनाव, सच्चाई, बेवफाई, अकेलापन, खोई हुई इन्सानियत आदि सभी का जिक्र इन गजलों में दिखाई देता है। प्रत्येक शेर में छुपा अर्थ अलग है, विषय अलग है। समाज को नयी दिशा प्रदान करने की कोशिश है। हार मानना कठिन नहीं किन्तु लड़ने की ताकत रखना आवश्यक है क्योंकि लड़नेवाला जीत जाता है। कोशिश करना महत्वपूर्ण है की सीख देते हुए आरिफ़ लिखते हैं-

"हादसा हुआ है तो खुद सम्हलो आगे बढ़ो
इन्सानियत कब से इस शहर से लापता है"[10]

कवि नया है किन्तु फिर भी बिना झिझक कुछ ठोस रूप में लिखने की प्रामाणिकता दिखाते हैं। चुनाव के समय नेता हर द्वार, गली-मोहोल्ले चक्कर लगाता नजर आता है। वोट माँगता है, लोगों को प्रलोभन दिखाता है, वादे करता है, आशाओं के पुल बांधता है पर चुनाव खत्म होते ही कही गुम हो जाता है पाँच सालों के लिए। पाँच साल बाद फिर मुँह दिखाने आ जाता है, कवि कहते हैं-

"बन के दास तेरे दर पर मिलने ये आ गए
तेरी याद में पाँच साल बाद मुँह दिखने ये आ गए"

----------***--------

"शंख,ध्वनि बजाओ, जयनाद की करो गर्जना
कसमों-वादों की बारिश बरसाने ये आ गए"[11]

चुनाव के दौरान का हू-ब-हू चित्रण इन पंक्तियों से प्राप्त होता है। राजनीति पर साहस के साथ कलम चलाई है। जनता और जिम्मेदार नागरिक को सजग करने के भाव प्रकट किए हैं। अपने अनुभवों को व्यापक रूप में वाणी देने की कोशिश की है। वे कहते हैं-

"चिंगारी कब ज्वाला बन जाए, किसको खबर आरिफ़
पत्थर पर खुद को रगड़ दो इसकी पैरवी करने के लिए"[12]

गजलकार आरिफ़ ने समाज की अनेक बातों को सामने रखते हुए कुछ प्रेम की अनुभूति को भी पाठकों के सामने रखी है। प्रेम प्रत्येक जीव का मधुर और कोमल अहसास है। प्रेम में संयोग-वियोग पक्ष दोनों बराबर चलते रहते हैं। विरह में तड़पने वालों की कमी नहीं हैं जग में, प्रेम की सागर में डूबे प्रेमी तैरना ही भूल बैठते हैं ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा। युवा कवि आरिफ़ ने कुछ ये अनुभूति भी समाज सम्मुख रखी हैं। वे कहते हैं-

"इश्क के सफर में अक्सर सिरफिरे ही दौड़ा करते हैं
अंजाम की पर्वाह करनेवाले इस राह के मुसाफिर नहीं बनते
इश्क के दरिया में डुबनेवालों का सुना है बड़ा नाम होता है आरिफ़
लेकिन याद रहे खुद को मिटाए बिना कभी कोई आशिक नहीं बनते"[13]

प्रेम की अनुभूति बड़ी निराली होती है जिसे भूलना चाहते हैं प्रेमी वही उसका हमसाया बनकर साथ चल देता है। इसलिए आरिफ़ कहते हैं-

"लाख कोशिश की तुम्हें भूल जाने की हमने
बन के हमसाया तू मुझमें ही छिपा है"[14]

अधूरे प्रेम की दास्ता, दर्द को सुनाते हुए गजलकार लिखते हैं-

"दिल के घावों को यूँ ना खोल के देखा कर आरिफ़
कल तक थी जो अपनी आज वो पराई हो गयी"[15]

बावजूद इन सबके युवा गजलकार आरिफ़ आशावादी हैं –

"मेरे ख्वाबों की हसीन तस्वीर तू है
मेरे जिंदगी की जरूरत तू है
पार कर जाए, हसते हुए आग का संमंदर
इस जुनून की असली वजह तू है"[16]

निष्कर्ष :

ये गजल संग्रह अपने आप में अद्भुत है। इसमें जीवन के विविध पहलुओं का चित्रण प्राप्त होता है। गजल के आंतरिक पक्ष को प्रामाणिकता देने की कोशिश की गयी है। जीवन की प्रेम, बेवफाई, विरह, सच्चाई, भीषणता, सामाजिकता, राजनीति, विसंगतियाँ आदि अनेक भाव प्रस्तुत हुए हैं। गजलों को कहीं भी शीर्षक नहीं दिया है। जीवन के हर रंग से जुड़े शायर ने प्रेम-प्रणय से परे जाकर लिखने की कोशिश की है। कवि अपने आप को बौना नहीं समजते इसी में उनकी ऊंचाई दिखाई देती है। उनकी कोशिश को सफलता मिली है ऐसा कहना उचित ही होगा।

संदर्भ :

1. डॉ. शिवप्रसाद भारद्वाज शास्त्री; अशोक मानक हिन्दी शब्दकोश;(नई दिल्ली, अशोक प्रकाशन सं.2003) पृ.247
2.डॉ. आस्थाना रोहितश्व; हिन्दी गजल उद्भव और विकास;(नई दिल्ली सामयिक प्रकाशन प्र.सं.1987) पृ.141
3. वही पृ.142
4. वही पृ. 142
5. डॉ. महात आरिफ़; तूफानों में जलते दिये;(वाराणसी; सारंग प्रकाशन प्र.सं.2017) पृ.74)
6. वही; पृ.16
7. वही; पृ.17
8. वही; पृ.18
9. वही; पृ.18
10. वही; पृ. 42
11. वही; पृ. 48
12. वही; पृ. 62
13. वही; पृ. 19
14. वही; पृ.26
15. वही; पृ.29
16. वही; पृ. 79

*****

'तरकश' के आईने में जावेद अख़्तर

डॉ. अनंत केदारे
प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, सात्रल,
तहसील राहाता, जिला अहिल्यानगर (महाराष्ट्र)
मो. 9921772483
ई-मेल: ankedare@gmail.com

सारांश:

ग़ज़ल अरबी-फ़ारसी से उर्दू और उर्दू से हिंदी में विकसित हुई काव्य-विधा है। प्रारंभ में यह प्रेमकेंद्रित थी पर समय के साथ सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय संवेदनाओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। आज ग़ज़ल बहुभाषी, लोकप्रिय और सशक्त काव्य-परंपरा है। जावेद अख़्तर उर्दू और हिंदी ग़ज़ल के पायदान पर खड़े है। उन्होंने ग़ज़ल को हिंदुस्तानी जामा पहनाया। उन्होंने हिंदुस्तानी हिंदी में गजलें लिखकर ग़ज़ल विधा को नया मुकाम दिया। 'तरकश' के आईने में जावेद अख़्तर का रूप एक कवि और ग़ज़लकार के रूप में निखरकर आता है। उनकी शायरी प्रेम से आगे बढ़कर जीवन, संघर्ष, आत्मसम्मान और सामाजिक यथार्थ को व्यक्त करती है। 'तरकश' में आधुनिक मनुष्य की संवेदनाएँ सशक्त रूप में उभरती हैं। माध्यम से जावेद अख़्तर ने हिंदी ग़ज़ल को नई संवेदना, आधुनिक दृष्टि और व्यापक सामाजिक सरोकार प्रदान किए। यह संग्रह आत्मकथात्मक होते हुए भी समकालीन समाज का सशक्त दस्तावेज़ है जिसमें बचपन का अकेलापन, भूख, संघर्ष, स्मृतियाँ, प्रेम, विभाजन की पीड़ा और शहरी जीवन की विडंबनाएँ गहराई से व्यक्त हुई हैं। जावेद अख़्तर शिष्टाचार और यथार्थ के द्वंद्व को ईमानदारी से सामने रखते हैं और प्रतीकों के सहारे जीवन की कड़वी सच्चाइयों को व्यक्त करते हैं। उनकी ग़ज़लों में जीवन-संघर्ष, अन्याय, असमानता और उम्मीद के स्वर मिलते हैं। उनकी भाषा सहज, शैली संयमित और विचार प्रगतिशील हैं। 'तरकश' आधुनिक मनुष्य की पीड़ा, आत्मसम्मान और प्रतिरोध चेतना का जीवंत दस्तावेज़ है जो जावेद अख़्तर को विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण रचनाकार सिद्ध करता है।

बीज शब्द: ग़ज़ल परंपरा, अरबी-फ़ारसी प्रभाव, उर्दू-हिंदी, प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति, सामाजिक यथार्थ, जावेद अख़्तर, तरकश, आधुनिक मानवीय संवेदना आदि।

प्रस्तावना:

'ग़ज़ल' शब्द अरबी भाषा का है। फ़ारसी में इसका अर्थ होता है- औरत या प्रेमिका का ज़िक्र करना या प्रेम से जुड़ी बातें कहना। ग़ज़ल अरबी-फारसी से उर्दू में और उर्दू से हिंदी में आई है। ग़ज़ल का संबंध प्रेम, भावनाओं और इश्क़ की बातों से माना गया है। डॉ. अब्दुर्रशीद ए. शेख ने ग़ज़ल शब्द का अर्थ देते हुए कहा है कि "ग़ज़ल शब्द की उत्पत्ति अरबी शब्द 'मुगाझेलात' या 'तगझ्झु' शब्द से हुई है जिसका फ़ारसी शाब्दिक अर्थ होता है 'सुख़न अज जनान गुफ्तन' या 'अज माशूक गुफ्तन' अर्थात स्त्री के संवाद और माशूक़ के बीच बातचीत।"[1] समय के साथ ग़ज़ल को फ़ारसी और उर्दू साहित्य में खास पहचान मिली। पहले ग़ज़ल में अधिकतर आशिक़ की भावनाएँ व्यक्त की जाती थीं। वर्तमान में ग़ज़ल के मायने बदल गए हैं। ग़ज़ल में समाज, राजनीति या धर्म की बातें सीधे नहीं कही जातीं बल्कि इशारों और प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त की जाती हैं।

उर्दू-हिंदी काव्य परंपरा में शायर, ग़ज़लगो और ग़ज़लगोई तीनों शब्द ग़ज़ल-सृजन की प्रक्रिया और उसके रचनाकार से गहरे जुड़े हुए हैं। शायर अर्थात सुख़नवर जो शब्दों के माध्यम से भावनाओं, अनुभवों और विचारों को कलात्मक रूप देता है। अत: ग़ज़ल एक संवेदनशील और लबरेज विधा है। "ग़ज़ल वह लफ़्ज़ है जो शहर का बैलेंस, मीठा एहसास करा सकता है। यह फूलों-सा नाज़ुक एहसास जगा सकती है, तो नश्तर-सा दिल में छुपकर चुप भी रह सकती है।"[2] शायर केवल तुकबंदी करने वाला नहीं बल्कि समाज, समय और मनुष्य की संवेदनाओं का सजग साक्षी होता है। ग़ज़लगो विशेष रूप से वह शायर है जो ग़ज़ल विधा में रचना करता है। ग़ज़लगो को ग़ज़ल की परंपरागत शर्तों जैसे मतला, मक़्ता, क़ाफ़िया, रदीफ़, बहर और अर्थ-गहनता का ज्ञान होना आवश्यक है। ग़ज़लगोई ग़ज़ल लिखने की कला और उसे सीखने की संपूर्ण प्रक्रिया को कहा जाता है। "ग़ज़ल-एकसमान रदीफ़ (समांत) तथा भिन्न कवाफी (क़ाफ़िया) का बहुवचन (तुकांत) से सुसज्जित एक ही वज़्न (मात्रा क्रम) अथवा बहर (छंद) में लिखे गए अशार (शेर का बहुवचन) के समूह को कहते हैं, जिसमें शायर किसी चिंतन, विचार अथवा भावना को प्रकट करता है।"[3] इसमें शिल्प-बोध, भाषा-सौंदर्य, भाव-संयम और प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का विकास शामिल होता है। शायर, ग़ज़लगो और ग़ज़लगोई मिलकर ग़ज़ल की रचनात्मक परंपरा को समृद्ध और जीवंत बनाए रखते हैं।

भारत में अरबी, फ़ारसी, उर्दू, हिंदी, गुजराती, मराठी, मैथिली, भोजपुरी, नेपाली आदि प्रमुख भाषाओं में ग़ज़ल लिखी गई है। हिंदी भाषा की ग़ज़ल पर हिंदी, संस्कृत, उर्दू और फ़ारसी का प्रभाव रहा है। लगभग 1940 के आसपास साहित्यिक हिंदी में ग़ज़ल लिखने का आरंभ हुआ। "हिंदी तथा उर्दू को ग़ज़ल विधा फ़ारसी की देन है परंतु हिंदी में ग़ज़ल प्रथम सोपान में प्रचलित नहीं हुई। हिंदी तक पुनः पहुँचने से पूर्व ग़ज़ल ने उर्दू के साथ लंबा सफ़र तय किया। इसलिए यह कहना भी उचित है कि हिंदी को ग़ज़ल विधा उर्दू से तथा उर्दू को फ़ारसी से प्राप्त हुई है।"[4] हिंदी भाषा की ग़ज़ल पर हिंदी, संस्कृत, उर्दू और फ़ारसी का प्रभाव रहा है। भारतेंदु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की ग़ज़लें उल्लेखनीय मानी जाती हैं। "उर्दू से हिंदी और अब हिंदी से आगे हिंदुस्तानी की अन्य भाषाओं में ग़ज़ल का सफ़र, भाषा का सफर बन गया है।"[5] ग़ज़ल केवल भाषा की दृष्टि से ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से भी एक लंबी यात्रा तय कर चुकी है। "ग़ज़ल काव्य की वह विधा है जिसने भारत में हज़ार वर्षों का लंबा सफ़र तय किया है और यह सफ़र पूरी आन, बान और इंसानियत के साथ आज भी जारी है।"[6] ग़ज़ल अपने माध्यम से भावनाओं को व्यक्त करने का अत्यंत संवेदनशील साधन है।

पहले ग़ज़ल सिर्फ़ प्रेम तक सीमित थी लेकिन आज ग़ज़ल का दायरा बहुत बढ़ गया है। अब इसमें जीवन, समाज, दुःख-सुख, संघर्ष और मानवीय संवेदनाओं से जुड़े कई विषय शामिल हो गए हैं। "ग़ज़ल वह पद्य रचना है जिसमें अरूज़ अनुसार बह और वज़्न का ध्यान रखते हुए, रदीफ़, क़ाफ़िया को निभाते हुए कुछ अश्आर हों जो कहन के लिहाज़ से स्वतंत्र हों व जिसका भाव पक्ष मानवीय संवेदना और जीवन दर्शन के किसी एक या अनेक पक्षों को इंगितों में प्रकट करता हो। इंगितों से आशय यह है कि नियमों को निभाते हुए जो बात कही जाये वह बिल्कुल स्पष्ट न होकर रूपकों, प्रतीकों के एक झीने पर्दे से ढँकी हो।"[7] ग़ज़ल कविता का वह रूप है जिसमें नियमों के अनुसार तुक और लय का ध्यान रखते हुए शेर लिखे जाते हैं और जीवन की भावनाओं को सीधे न कहकर संकेतों और प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है।

भारत में दिल्ली ग़ज़ल का केंद्र थी। जब दिल्ली पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा तब वहाँ के शायरों ने इस दर्द को अपनी क़लम से बयान किया। अभावग्रस्त जीवन से घबराकर शायरों ने रामपुर और लखनऊ का रुख़ किया। लखनऊ के नवाबों ने उन्हें सर आँखों पर बिठाया और जीवन की रंगीनियाँ प्रस्तुत कीं। ग़ज़ल का केंद्र बदलकर लखनऊ बन गया। "ग़ज़ल के लखनऊ स्कूल का इतिहास अपनी कमियों को समय के गुण-गौरव से ढँक देता है। जब दिल्ली पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा, तब वहाँ के शायरों ने इस दर्द को अपनी क़लम से बयान किया। इसी दर्द-शायरी के कारण दिल्ली की शायरी अपनी श्रेष्ठता को प्राप्त करने लगी।"[8] प्रारम्भ में लखनऊ और दिल्ली के शेरों के बीच काफ़ी अनबन रही लेकिन लखनऊ के नवाबों ने दिल्ली के शेरों का बड़े गर्मजोशी के साथ स्वागत किया। वह सारी ऐश्वर्यपूर्ण चीज़ें जिन्हें दिल्ली के शायर कभी देख तक नहीं पाए थे लखनऊ में उन्हें सहज ही मिलने लगीं। *विशेष बात यह है कि दिल्ली के शायर लखनऊ पहुँचते ही नवाबी रंग में रंग गए।* दिल्ली की शायरी और लखनऊ की शायरी में अंतर साफ़-साफ़ देखा जा सकता था। "जब मुस्लिम, तहजीब और हिंदुस्तानी संस्कृतियाँ आपस में मिलीं तो उनके सांस्कृतिक समुद्र-मंथन से एक नई शायरी और एक नया संगीत पैदा हुआ।"[9] जल्द ही उजड़े हुए और भटके हुए दिल्ली के शायर लखनऊ में बस गए। वे नवाबों की शान-ओ-शौकत में डूब गए और उसी वातावरण में रच-बस गए। परिणामस्वरूप ग़ज़ल को माशूका, प्याला, शराब आदि के नए प्रतीक और नया रंग-रूप मिला और शायरी उसी रस में डूबती चली गई। मुस्लिम, तहजीब और हिंदुस्तानी संस्कृतियों के मिश्रण से नई शायरी और संगीत पैदा हुआ। सोलहवीं सदी के अंतिम दशक से लेकर अठारहवीं सदी के शुरुआती दशक तक उर्दू ग़ज़ल की रोशनी दक्षिणी हिंदुस्तान में विशेषकर गुजरात और दक्कन में देखने को मिलती है। दिलचस्प बात यह है कि शुरू में यह शायरी सबसे ज्यादा गजरी और दक्षिणी में सरगर्म रही।

अठारहवीं सदी में ग़ज़ल दिल्ली वापस आई और 'मीर' जैसे महान शायर का आगमन हुआ। उन्नीसवीं सदी में मिर्ज़ा ग़ालिब का उद्भव हुआ जिनकी शायरी फ़ारसी प्रभावित होने के बावजूद अत्यंत लोकप्रिय हुई। उन्नीसवीं सदी के अंत में पश्चिमी विचारों और यथार्थवाद के प्रभाव से उर्दू साहित्य में प्रगतिशील प्रवृत्तियाँ आईं। उनमें फ़ैज़ अहमद फ़ैज़, असरार-उल-हक़ मजाज़, मीराजी, जाँ निसार अख़्तर, अहमद नदीम क़ासमी, अली सरदार जाफ़री और मख़दूम मोहिउद्दीन आदि ने ग़ज़ल को नई बुलंदियों तक पहुँचाया।

'तरकश' के आईने में जावेद अख़्तर:

जावेद अख़्तर उर्दू और हिंदी ग़ज़ल के पायदान पर खड़े है। उन्होंने हिंदुस्तानी हिंदी में गजलें कहकर ग़ज़ल विधा को नया मुकाम दिया। साहित्यिक दृष्टि से उनकी ग़ज़लें स्वतंत्र और प्रगतिशील विचारधारा रखती है। उनकी शायरी में जीवन को समझने की गहरी सोच और समाज की सच्चाई ज़्यादा दिखाई देती है। उनकी ग़ज़लों में पछतावा या खुद पर तरस नहीं है। अपने जीवन को

स्वीकार करने की ताक़त और आगे बढ़ने की इच्छा मिलती है। है। "जावेद अख़्तर आत्मनिर्मित सफल व्यक्ति की एक क्लासिक मिसाल है।"[10] इसी वजह से वे जिंदादिल शायर साबित होते हैं। उनकी रचनाओं में आज के इंसान की परेशानियाँ साफ़ झलकती हैं। भीड़ में अकेलापन, आर्थिक विषमता, सही-गलत की उलझन और समाज में होने वाला अन्याय आदि उनके ग़ज़लों की विशेषताएँ हैं।

जावेद अख़्तर का जन्म 17 जनवरी 1945 को, स्वतंत्रता-पूर्व काल में, ग्वालियर (मध्य प्रदेश) में हुआ था। वे प्रसिद्ध शायर जाँ निसार अख़्तर के पुत्र हैं। उन्होंने हिंदुस्तानी, हिंदी और उर्दू भाषा-परंपरा को अपनाते हुए हिंदी भाषा को ऐसी सशक्त भूमिका प्रदान की जिसके माध्यम से हिंदी देश और दुनिया के कोने-कोने तक पहुँची और व्यापक स्तर पर स्वीकार की गई। वे एक साहित्यिक परिवार से ताल्लुक रखते हैं जिसमें शायरी और लेखन की परंपरा पीढ़ियों से चली आ रही है। उनके पिता जाँ निसार अख़्तर प्रगतिशील कवि और माता सफ़िया अख़्तर प्रतिष्ठित लेखिका थीं। वे मशहूर शायर मजाज़ के भांजे और मुज़्तर ख़ैराबादी के पोते भी हैं। "जावेद की वालिदा कस्बा रुदौली जिला बाराबंकी (अवध) की एक उच्च शिक्षा प्राप्त महिला थी। वालीद निसार अख़्तर कसबा खैराबाद जिला सीतापुर (अवध) के एक मशहूर शिक्षा प्रेमी खानदान से ताल्लुक रखते थे।"[11] उनका बचपन कठिनाइयों और अस्थिरता में बीता। छोटी उम्र में माँ का निधन हो गया और पिता की दूसरी शादी के बाद उन्हें कई शहरों में रहकर संघर्षपूर्ण जीवन जीना पड़ा। इन अनुभवों ने उनकी शायरी और गीतों को गहराई और यथार्थता दी।

'तरकश' के आईने में जावेद अख़्तर का मूल्यांकन करते हुए इसे उनकी आत्मकथा मानी जा सकती है। आत्मकथा-सा प्रामाणिक कवि कविता में होता है। युवावस्था में रोज़गार की तलाश उन्हें मुंबई ले आई जहाँ जीवन संघर्षपूर्ण था। कमाल स्टूडियो में समय बिताने और मित्र जगदीश के साथ अंधेरी की महाकाली गुफाओं में रहने जैसे अनुभवों ने उनकी संवेदनशीलता और रचनात्मकता को और मजबूत किया। उसकी मौत ने उन्हें सदमे में डाल दिया। "मैं अक्सर सोचता हूँ मुझ में कौन से लाल टँके हैं और जगदीश में ऐसी क्या खराबी थी। यह भी तो हो सकता था कि तीन दिन बाद जगदीश के किसी दोस्त ने उसे बांद्रा बुला लिया होता और मैं पीछे उन गुफाओं में रह जाता।"[12] जावेद अख़्तर की शायरी और गीतकारिता जीवन, संघर्ष, रिश्तों और समाज की वास्तविकताओं को प्रकट करती है। उनकी रचनाएँ मनोरंजन के साथ-साथ सोचने और समझने पर मजबूर करती हैं। वे केवल ग़ज़लकार और गीतकार ही नहीं बल्कि सामाजिक रूप से जागरूक और संवेदनशील विचारक भी हैं।

'तरकश' जावेद अख़्तर की आत्मकथा है। इसमें आधुनिक जीवन की समस्याएँ, समाज की असमानताएँ, स्मृतियाँ, प्रेम, अकेलापन और इंसान के संघर्ष को संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यह संग्रह कवि के निजी अनुभवों और समाज के साझा यथार्थ दोनों को संतुलित रूप में सामने लाता है। जावेद अख़्तर ने इस काव्य संग्रह को अपनी पत्नी शबाना आज़मी को समर्पित किया है। 'तरकश' में उनके बचपन के अनुभव, उनका अकेलापन, सामाजिक सच्चाइयाँ, स्मृतियाँ, पीड़ा, उम्मीद और मानवीय भावनाएँ गहराई से दिखाई देती हैं। हिंदी ग़ज़ल को नई संवेदना, आधुनिक दृष्टि और व्यापक पाठक-वर्ग तक पहुँचाने में जावेद अख़्तर का विशिष्ट योगदान रहा है। "तरकश गमे जाँना और गमे दौराँ (प्रियतम का दु:ख और संसार का दु:ख) के तीरों से भरा है। बचपन की मीठी या कड़वी यादें हर अदीब या शायर के लिए स्थाई साबित हुए हैं।"[13] 'तरकश' जावेद अख़्तर की नज़्मों और ग़ज़लों का एक महत्वपूर्ण हिंदी संग्रह है जिसे राजकमल प्रकाशन द्वारा वर्ष 1995 में प्रकाशित किया गया था। इस कृति के अब तक कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं जो इसकी लोकप्रियता और साहित्यिक महत्ता को सिद्ध करते हैं।

एक यह दिन जब जागी रातें दीवारों को तकती हैं
एक वह दिन जब शामों की भी पलकें बोझिल रहती थीं।[14]

जिंदगी के मायने सबके लिए एक-से नहीं होते। हरेक के दु:ख-दर्द के पैमाने अलग-अलग होते हैं। सबका बचपन खुशियों में नहीं गुजरता। कुछेक के नसीब में माँ-बाप, घर-परिवार का प्यार नहीं होता है। बचपन से जुड़ी कविताओं में अकेलापन, भूख, संघर्ष और अभाव की स्पष्ट झलक मिलती है। "कहा जाता है कि तनहाई फनकार का मुक़द्दर होती है। मेरा ख़याल है कि एक परफ़ॉर्मिंग आर्टिस्ट (अभिनेता, नर्तक या संगीतकार) इतना तनहा नहीं होता क्योंकि उसकी कला के प्रदर्शन में दूसरों की भागीदारी भी शामिल रहती है।"[15] जावेद अख़्तर के लिए बचपन खुशी और खेल का समय नहीं था बल्कि जीवन के संघर्षों को समझने की पहली सीख था। वे अपने अकेलेपन, कमी और भूख के अनुभवों को बिना सजावट और बनावटी शब्दों के सच्चाई के साथ स्वीकार करते हैं। उन्होंने अपने बचपन को मासूम खुशी का समय नहीं बल्कि जीवन की कठिनाइयों को समझने की पहली सीख के रूप में दिखाया है। वे बताते हैं कि बचपन में भी वे अकेले थे।

हम तो बचपन में भी अकेले थे
सिर्फ दिल की गली में खेले थे
ख़ुदकुशी क्या दुखों का हल बनती
मौत के अपने सौ झमेले थे।[16]

अतीत व्यक्ति को जीने नहीं देता। वह ऐसा जहर है जिसे पीना ही पड़ता है। उससे निजद पाना नामुमकिन खाई। उसे जितना भूलने की कोशिश की जाती है वह उतना ही उभरकर सामने आता है। एक कामयाब जिंदगी को पाने के लिए उसने क्या-क्या खोया है इसे वे याद करते हैं। उनकी यादों में नानी का घर, बचपन और पुरानी शामें आज भी जीवित हैं। ये यादें उनके लिए स्मृति के प्रतीक हैं, जो वर्तमान की खालीपन को और महसूस कराते हैं। अतीत उनके लिए कभी सहारा बनता है और कभी दु:ख का कारण भी।

एक यह घर, जिस घर में मेरा साज़ो-सामान रहता है
एक वह घर, जिस घर में मेरी बूढ़ी नानी रहती थी।[17]

ये यादें वर्तमान की खालीपन को और अधिक महसूस कराती हैं। अतीत कभी सहारा बनता है कभी दु:ख देता है। व्यक्ति कितना भी कामयाब क्यों हो जाए अतीत से उसका दामन कभी नहीं छूटता जो वर्तमान में दमन कारण बन जाता है। "बदकार दुनिया से मन मुताबिक दाम वसूल करने के बाद लेखक को चैन मिलना चाहिए था। मगर ऐसा होता नहीं। विजयी व्यक्तिवाद फिर भी असंतुष्ट रहता है। एक सुख में जीवन गुजारते हुए शायर अपने लड़कपन की मेहरूमियों और तकलीफों को भी मोहब्बत से याद करता है।"[18] उनके जीवन के खालीपन की जड़ें उनके बचपन में दिखाई देती हैं। उनके दिल और दिमाग खाली होने की एक वजह यह भी है कि बचपन में उन्होंने फाँके झेले थे।

जहनो-दिल आज भूखे मरते हैं
उन दिनों हमने फाँकें झेले थे तरकश।[19]

कभी-कभी शायर उन पर हवी हो जाता है और वे इस कशमकश में पड़ जाते हैं कि यथार्थ या कल्पना में से किसे चुना जाए। क्या परपरा का निर्वहन किया जाए या हकीकत कि दास्तान लिखी जाए। पाठकों के मनोरंजन के लिखा जाए या अभिव्यक्ति के लिए लिखा जाए। उनके सामने यह प्रश्न है कि वह शिष्टाचार निभाए या यथार्थ लिखे। यह रचनात्मक ईमानदारी की सबसे बड़ी चुनौती है, जिसे जावेद अख़्तर पूरी स्पष्टता से सामने रखता है। कविता लिखने में उन्हें दुविधा होती है। क्या शिष्टाचार निभाया जाए या जो हालात हैं वह लिखा जाए। उन्होंने जनाज़े देखे हैं तो उन्हें कैसे खुशियाँ लिखें और जब गर्म हवा उठती हो तो उसे बरसात कैसे लिखा जाए।

ग़म नहीं लिखूँ, क्या मैं ग़म को जश्न लिखूँ, क्या मातम को
जो देखे हैं मैंने जनाज़े, क्या उनको बारात लिखूँ
कैसे लिखूँ मैं चाँद की क़िस्से, कैसे लिखूँ मैं फूल की बात
रेत उठाए गर्म हवा तो कैसे मैं बरसात लिखूँ।[20]

जावेद अख़्तर जीवन को वास्तविक रूप में देखते हैं। वे भावनाओं में बहने की बजाय अपने अनुभवों से मिली सीख के आधार पर बातें कहते हैं। वे आम लोगों के जीवन को स्वीकार करने और उनकी मजबूरी को ठीक से दर्शाते हैं है। वे सीख भी देते हैं कि कविता कैसी लिखनी चाहिए इसका मशवरा भी देते हैं। वे कहते हैं कि सिर्फ देखने की क्षमता होना ही काफी नहीं है। अपनी बात कहने और महसूस कराने के लिए शब्दों में कौशल होना चाहिए। अगर हमारे सपनों की फसल तैयार है तो अब दर्द और कठिनाईयों को व्यक्त करने का समय भी आ गया है।

अगर पलक पर है मोती तो यह नहीं काफ़ी
हुनर भी चाहिए अल्फ़ाज़ में फिर होने का
जो फ़सल ख़्वाब की तैयार है तो यह जानो
कि वक़्त आ गया है फिर दर्द बोने का।[21]

जावेद अख़्तर की ग़ज़लों में जीवन की सच्चाइयाँ, संघर्ष, हताशा और उम्मीद दिखाई देती हैं। वे समाज में मौजूद अन्याय और असमानताओं पर सवाल उठाते हैं और लेखकों व शायरों को सही समय पर बोलने की प्रेरणा देते हैं। वे पुरानी ग़ज़ल की परंपरा को नया रूप देते हैं। उनकी शायरी में नए विचार, ताज़ा बिंब और सशक्त भाषा का इस्तेमाल मिलता है। उनकी शायरी में

ख़्वाब या कल्पना कम और गंभीर सोच ज़्यादा होती है। इसके कारण पाठक उनकी ग़ज़लों को पढ़कर गहराई से सोचने पर मजबूर हो जाते हैं। यही उन्हें समकालीन कवियों से अलग और खास बनाता है। दु:ख और परेशानियों से भरी जिंदगी में भटकते लोगों की कहानी, धीरे-धीरे जीतती और हारती दुनिया और थोड़े समय के लिए राहत माँगना ये सब इंसान की कमजोरियों और सहनशीलता को दिखाते हैं।

दु:ख के जंगल से फिरते हैं कब से मारे-मारे लोग
जो होता है, सह लेते हैं, कैसे हैं बेचारे लोग
जीवन-जीवन हमने जग में खेल यही होते देखा
धीरे-धीरे जीती दुनिया, धीरे-धीरे हारे लोग।[22]

जावेद अख़्तर की ग़ज़लें आज के मनुष्य की सोच, संवेदना और आत्मसम्मान की सशक्त अभिव्यक्ति बन जाती हैं। तरकश वे पारंपरिक ग़ज़ल की सीमाओं से आगे बढ़ते हुए जीवन-दर्शन, मानवीय संवेदनाएँ और सामाजिक चेतना को अपनी कविताओं में व्यक्त करते हैं। उनका अंदाज सरल, सजीव और गहरी सोच से परिपूर्ण है। "ताजगी, गहराई और विविधता, भावनाओं की ईमानदारी और जिंदगी में नए भाव की तलाश उनकी शायरी की विशेषताएं हैं।"[23] वर्तमान का खोखलापन उन्हें अतीत में लौटने के लिए बाध्य करता है। सारे दिनों के बदले अपने लिए सुकून के चार पल माँगते हैं।

मेरे कुछ पल मुझको दे दो, बाक़ी सारे दिन ले लो
तुम जैसा-जैसा रहते हो, सब वैसा-वैसा ही होगा।[24]

जावेद अख़्तर कहीं-कहीं जीवन की विडंबनाओं पर हल्के लेकिन गहरे व्यंग्य के साथ बात करते हैं। वे यह स्वीकार करते हैं कि उनकी बर्बादी की एक वजह यह भी रही कि उन्होंने अपनी ज़िंदगी को गंभीरता से नहीं लिया और उससे ऐसे खेलते रहे जैसे वह किसी और की ज़िंदगी हो। साथ ही वे शोषण और हिंसा के विरोध में अपनी स्पष्ट चेतना प्रकट करते हैं। यह आत्मस्वीकार दिखाता है कि आधुनिक मनुष्य कई बार अपने ही जीवन को गंभीरता से नहीं लेता और उससे दूरी बना लेता है। वह अपने कर्मों और भूलों को समझने की कोशिश करता है जिससे जीवन के सही अर्थ का बोध होता है।

अपनी वजह-ए-बर्बादी सुनिए तो मज़े की है
ज़िंदगी से यूँ खेले जैसे दूसरे की है।[25]

'तरकश' में कई स्थानों पर दमन और कठिन परिस्थितियों के बीच भी आशा और परिवर्तन की संभावना दिखाई देती है। जावेद अख़्तर उन लोगों की भीतर की ताकत को सामने लाते हैं जिन्हें व्यवस्था ने दबा दिया है। इस संग्रह में शोषण और अत्याचार के खिलाफ़ खुला शोर नहीं बल्कि एक शांत, संयमित और मजबूत विरोध भाव मौजूद है जो मनुष्य को हार न मानने की प्रेरणा देता है। उनका कहना है कि जो लोग उन्हें जिंदा जलाने की कोशिश कर रहे हैं। वे यह नहीं समझते कि अन्याय की जंजीरें धीरे-धीरे कमजोर हो रही हैं और खून से खड़ी की गई दीवारें गल रही हैं। "मकसद को पाने के बाद अकेलापन का एहसास एक विश्वव्यापी अनुभव है खास तौर पर पश्चिम में यह तनहाई कभी-कभी जाँ लेवा साबित होती है।"[26] इसके बावजूद वे निराश नहीं होते। उन्हें आज भी यह उम्मीद है कि एक दिन मनुष्य फिर से जीवन की क़द्र करना सीखेगा।

जो मुझको ज़िंदा जला रहे हैं, वे बेख़बर हैं
कि मेरी ज़ंजीर धीरे-धीरे पिघल रही है
मैं क़त्ल तो हो गया तुम्हारी गली में
लेकिन मेरे लहू से तुम्हारी दीवार गल रही है।[27]

'तरकश' में उनकी गंभीर सोच और संवेदनशील भावनाओं का स्पष्ट और आकर्षक अंदाज़ मिलता है। जावेद अख़्तर की शायरी शहर की ज़िंदगी और शहरी सभ्यता में जीने वाले एक शायर के अनुभवों को बयां करती है। उन्होंने जीवन को अपने पूरे अनुभव और आँखों से देखा है। "मलंग दरवेशों-सा अंदाज और खैराबाद के सूफी संतों के संगीत की गूंज सुनाई दे, हालांकि खुद शायर को स्कूल से कोई दिलचस्पी नहीं।"[28] तरकश उनका अंदाज निराला है। किसी संत-सा फक्कड़पन उनकी गजलों में है। जिसे पाने खोने का कोई खौफ नहीं है।

घर से चला तो दिल के सिवा पास कुछ न था
क्या मुझे खो गया है, मुझे क्या मलाल है।[29]

'तरकश' यह प्रमाण है कि जावेद अख़्तर अपनी ज़िंदगी को पूरी तरह समझते हैं और उसे अपनी शायरी में व्यक्त करने की क्षमता रखते हैं। उन्होंने सुख-दु:ख, कठिनाइयाँ और जीवन के छोटे-बड़े पल महसूस किए हैं। जावेद अख़्तर के सपने और उम्मीदें भी बहुत मजबूत हैं। वे कहते हैं कि जब सब खुला था तो पूरा आसमान उसके पास था लेकिन समेटने पर उसके हाथ में एक भी छोटी चीज़ नहीं आई। घर से निकलते समय उसके पास सिर्फ़ दिल था। अब उसके मन में फिर कोई नया ख्वाब देखने या इच्छा रखने का सवाल ही नहीं उठता।

जो कर समेटे तो एक शाख़ भी नहीं पाई
खुले थे पर तो मेरा आसमान था सारा।[30]

जावेद अख़्तर का जीवन दर्शन यह है कि अगर चिराग़ में तेल कम था तो हवा पर नाराज़ होने की कोई बात नहीं। यानी छोटी-छोटी असफलताओं या कमियों के लिए बाहरी परिस्थितियों को दोषी नहीं ठहराना चाहिए। समय, यादें और अलगाव मिलकर उनकी कविता और जीवन का संसार बनाते हैं। बचपन का खोया हुआ खिलौना, दीवारों को ताकती जागी रातें और नानी का घर जैसी यादें उनकी संवेदनाओं को और गहरा करती हैं।

उन चिराग़ों में तेल ही कम था
क्यों गिला फिर हमें हवा से रहे।[31]

'तरकश' आधुनिक शहरों में रहने वाले एक संवेदनशील व्यक्ति के जीवन, भावनाओं और अनुभवों को पूरी सच्चाई के साथ प्रस्तुत करता है। इसमें जीवन को न तो सजाकर दिखाया गया है और न ही केवल शिकायत की गई है बल्कि यथार्थ को ईमानदारी से स्वीकार किया गया है। इस संग्रह की शायरी में बेबसी के साथ-साथ आत्मसम्मान भी साफ़ दिखाई देता है। भूख, बेघर होना, भीड़ में अकेलापन, पहचान और गुमनामी जैसे विषय प्रतीकों के माध्यम से प्रभावशाली ढंग से सामने आते हैं। यहाँ आधुनिक मनुष्य की पीड़ा, संघर्ष और नैतिक प्रश्नों से जूझता हुआ मन स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। ये कविताएँ भले ही व्यक्तिगत अनुभवों से उपजी हों लेकिन उनका संबंध पूरे समाज से जुड़ जाता है। इस कारण 'तरकश' एक साथ आत्मकथात्मक भी है और सामाजिक भी।

ग़ैरों को कब फ़ुर्सत है दु:ख देने की
जब होता है कोई हमदम, होता है
ज़ख़्म तो हमने इन आँखों से देखे हैं
लोगों से सुनते हैं, मरहम होता है।[32]

'तरकश' का एक महत्वपूर्ण पक्ष इसमें शामिल संस्मरणात्मक गद्य रचनाएँ हैं। इन लेखों में जावेद अख़्तर एक सशक्त और प्रभावी गद्यकार के रूप में उभरते हैं। बचपन की यादें, लखनऊ और अलीगढ़ का जीवन, आर्थिक कठिनाइयाँ और बंबई में संघर्ष के दिन बहुत ही सरल और सहज भाषा में वर्णित हैं। इन्हें पढ़ते हुए ऐसा महसूस होता है मानो लेखक स्वयं सामने बैठकर अपनी कहानी सुना रहा हो। संग्रह में लोगों के सामूहिक दु:ख का भी एहसास है। यह जाँ कर कुछ हद तक तसल्ली मिलती है कि दु:ख और बर्बादी सिर्फ किसी एक व्यक्ति के हिस्से में नहीं आई। कड़वाहट इसलिए महसूस होती है क्योंकि जो बीत गया, उसकी याद सबको है। विभाजन और सीमाओं का दर्द कवि ने 'ढाका, रावलपिंडी और दिल्ली के चाँद' के प्रतीकों में गहराई से दर्शाया है। जावेद अख़्तर अपने व्यक्तिगत दु:ख को समाज की बड़ी तस्वीर के साथ जोड़कर बताते हैं।

ये तसल्ली है कि नाशाद सब
मैं अकेला ही नहीं, बर्बाद सब।[33]

जावेद अख़्तर की रचनाएँ मनुष्य को अपने भीतर झाँकने, समाज पर सोचने और संवेदनशील बनने की प्रेरणा देती हैं। वे धर्मनिरपेक्षता और प्रगतिशील मूल्यों के कट्टर समर्थक हैं। उनकी वैचारिक दृढ़ता उन्हें एक ज़िम्मेदार और प्रभावशाली कवि बनाती है। उनका मानना है कि जब समाज कठिन दौर से गुजरता है तब लेखक की ज़िम्मेदारी और भी बढ़ जाती है। ऐसे समय में लेखक को चुप नहीं रहना चाहिए बल्कि सच बोलने का साहस दिखाना चाहिए। वे कहीं कहीं हमें सन्नाटे में डाल देते हैं और सोचने के लिए मजबूर कर देते हैं। सीधे सीधे शब्दों में सच्ची बात कहने का उनका हुनर सरहनीय है।

गली में शोर था, मातम था और होता क्या
मैं घर में था, मगर इस गुल में कोई सोता क्या।[34]

प्रेम जीवन का शाश्वत और अद्भुत पक्ष है। प्यार करना हर व्यक्ति का धर्म है। प्यार की तलाश जीवन का उद्देश्य है। यह तलाश जिंदगीभर जारी रहती है। 'तरकश' में प्रेम की नर्मी और दूरियों का दर्द दिखाई देता है। कवि बताता है कि कत्थई आँखों वाली लड़की रोज़ किसी न किसी बात पर उससे रूठ जाती है। पास होने के बावजूद उनके बीच दूरी बनी रहती है, और दोनों स्वीकार करते हैं कि वे एक-दूसरे को अब तक पूरी तरह भुला नहीं पाए हैं।

कत्थई आँखों वाली एक लड़की
एक ही बात पर बिगड़ती है
तुम मुझे क्यों नहीं मिले पहले
रोज़ यह कहकर मुझसे लड़ती है।[35]

प्यार में प्रेमी रेल की दो पटरियों की तरह होते हैं जो कई मिलों तक साथ साथ तो चलते हैं लेकिन एक दूसरे से कभी मिल नहीं पते हैं। जीवन की यही विडंबना हैं। प्रेम कल्पना या आदर्शों पर नहीं बल्कि असली जीवन पर आधारित है जिसमें दूरी, अधूरा होना और यादें सबसे ज्यादा महसूस होती हैं।

पास आकर भी फ़ासले क्यों हैं
राज़ क्या है, समझ में यह आया
उसको भी याद है कोई अब तक
मैं भी तुमको भुला नहीं पाया।[36]

जावेद अख़्तर ने विभाजन की पीड़ा को केवल इतिहास के रूप में नहीं बल्कि अपने जीवन के अनुभव के रूप में महसूस किया है। उन्होंने इस दर्द को अपनी कविताओं में प्रतीकों और बिंबों के सहारे व्यक्त किया है। विभाजन के संदर्भ में 'चाँद' टूटी हुई साझा संस्कृति और इतिहास का प्रतीक बन जाता है। ढाका, रावलपिंडी और दिल्ली केवल स्थान नहीं हैं बल्कि बँटे हुए लोगों के दु:ख और पीड़ा के संकेत हैं। इन प्रतीकों के माध्यम से जावेद अख़्तर यह दिखाते हैं कि इतिहास की हिंसा ने इंसानी भावनाओं को कितनी गहराई से तोड़ा है। यही भाव उनके काव्य का केंद्रीय आशय है जहाँ वे स्वयं पर भी व्यंग्य करते हैं और अपनी गलतियों को ईमानदारी से स्वीकार करते हैं।

आओ अब हम इसके भी टुकड़े कर लें
ढाका, रावलपिंडी और दिल्ली का चाँद।[37]

जावेद अख़्तर एक उमदा शायर हैं। उनकी 'तरकश' में कई तीर हैं जो कवि को लहूलुहान करते हैं। उनकी स्थिति शरपंजर पर लेटनेवाले भीष्म पितामह जैसी है। 'जिंदगी से बढ़कर सजा नहीं और क्या जुर्म है यह पता ही नहीं' की स्थिति में आज का आधुनिक मनुष्य है। 'तरकश' जावेद अख़्तर के जीवनानुभावों का संग्रह होने के बावजूद आम मनुष्य की पीड़ा उसमें ध्वनित होती है। उसके दु:ख को उकेरकर उसकी पीड़ा पर भाष्य करता है। उनकी भाषा सहज, साफ़ और असरदार है। वे शब्दों की सजावट से ज़्यादा अपने विचारों को महत्व देते हैं। उनकी रचनाएँ दिखने में सरल होती हैं लेकिन उनके अर्थ बहुत गहरे होते हैं। वे मनुष्य, समाज और लोकतंत्र में विश्वास रखते हैं और समानता की बात करते हैं। उनकी कविता में स्त्री और पुरुष को बराबरी का दर्जा मिलता है। वे अंधविश्वास, डर और कट्टर सोच का खुलकर विरोध करते हैं। जावेद अख़्तर के लिए प्रेम केवल भावना नहीं बल्कि आत्मसम्मान और सच्चाई से जुड़ा हुआ है। वे कविता को केवल सुंदर शब्दों का खेल नहीं मानते बल्कि समाज से संवाद करने और सच कहने का सशक्त माध्यम मानते हैं।

निष्कर्ष:

'तरकश' जावेद अख़्तर का एक प्रभावशाली काव्य-संग्रह है जिसमें उनके जीवन के अनुभव, समाज के प्रति चिंता और गहरी मानवीय संवेदनाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। उनकी भाषा सरल, सहज और बोलचाल की है जिससे जावेद अख़्तर ता सीधे पाठक से जुड़ जाती है। इसमें उर्दू-हिंदी की मिली-जुली संस्कृति अर्थात गंगा-जमुनी तहज़ीब, साफ़ झलकती है। जावेद अख़्तर ने चाँद, दीवार, ज़ंजीर, हवा, बीज और फसल जैसे साधारण प्रतीकों और बिंबों के माध्यम से गहरे अर्थ व्यक्त किए हैं। उनकी काव्य-दृष्टि मानवतावादी और लोकतांत्रिक है। 'तरकश' की गज़लें व्यक्तिगत अनुभवों से निकलकर सामाजिक यथार्थ तक पहुँचती हैं। यह संग्रह आधुनिक मनुष्य के दु:ख, संघर्ष, जीने की इच्छा और नैतिक चेतना को सशक्त रूप में प्रस्तुत करते हैं। आज के समय में जब समाज और साहित्य पर दबाव बढ़ा है जावेद अख़्तर की रचनाएँ सोचने और महसूस करने की सीख देती हैं। जावेद अख़्तर न केवल अपने समय के महान गीतकार और शायर हैं बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी प्रेरणा बने रहेंगे।

संदर्भ :

1. केसरी, वीनस, 'ग़ज़ल की बाबत' अंजुमन प्रकाशन, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, छठा संस्करण, 2023, पृ. 47
2. अर्श, आकाश, और फरहत एहसास, 'बातें ग़ज़ल की' रेख़ता बुक्स प्रकाशन, नोएडा, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, 2022, पृ. 15
3. केसरी, वीनस, 'ग़ज़ल की बाबत' अंजुमन प्रकाशन, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, छठा संस्करण, 2023, पृ. 41
4. अर्श, आकाश, और फरहत एहसास, 'बातें ग़ज़ल की' रेख़ता बुक्स प्रकाशन, नोएडा, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, 2022, पृ. 18
5. वही, पृ. 37-38
6. वही, पृ. 15
7. केसरी, वीनस, 'ग़ज़ल की बाबत' अंजुमन प्रकाशन, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, छठा संस्करण, 2023, पृ. 49
8. अर्श, आकाश, और फरहत एहसास, 'बातें ग़ज़ल की' रेख़ता बुक्स प्रकाशन, नोएडा, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, 2022, पृ. 33
9. वही, पृ. 14
10. अख़्तर, जावेद, 'तरकश', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौंवाँ संस्करण, 2007, पृ. 29
11. वही, पृ. 23
12. वही, पृ. 18
13. वही, पृ. 30
14. वही, पृ. 137
15. वही, पृ. 32
16. वही, पृ. 61
17. वही, पृ. 138
18. वही, पृ. 33
19. वही, पृ. 61
20. वही, पृ. 145
21. वही, पृ. 155
22. वही, पृ. 153
23. वही, पृ. 30
24. वही, पृ. 154
25. वही, पृ. 70
26. वही, पृ. 33
27. वही, पृ. 79
28. वही, पृ. 34
29. वही, पृ. 101
30. वही, पृ. 99
31. वही, पृ. 112
32. वही, पृ. 107
33. वही, पृ. 97
34. वही, पृ. 84
35. वही, पृ. 161
36. वही, पृ. 162
37. वही, पृ. 69

ज्ञानप्रकाश विवेक की गजलों में आर्थिक परिदृश्य

प्रो. डॉ. अनिल बाबुलाल सूर्यवंशी
उपप्राचार्य एवं हिंदी विभागाध्यक्ष
महात्मा गांधी शिक्षण मंडल का
दादासाहेब डॉ. सुरेश जी. पाटील महाविद्यालय,
चोपडा, जि. जलगाँव
इमेल – absurya30@gmail.com
मो. नं. - 9960204532

हिंदी की अधिकांश गजलकारों की गजलों में हमें आर्थिक परिदृश्य दृष्टिगत होता हैं| इन गजलकरों ने अपनी गजलों के माध्यम से भारतीय अर्थ-व्यवस्था की वर्तमान यथार्थ स्थिति को अभिव्यक्त किया है| आर्थिक अभाव, आर्थिक विषमता के परिणामस्वरूप निर्माण होने वाली विविध समस्याओं पर उन्होंने रोशनी डाली है| साथ ही साथ इन समस्याओं के लिए जिम्मेदार राजनेताओं की खोखली नीतियों पर भी जमकर प्रहार किया है|

ज्ञानप्रकाश विवेक की गजलों में भी भारतवर्ष की आर्थिक समस्याओं पर चिंतन और चिंता दृष्टिगोचर होती है| यह सारी बातें उन्हें विचलित एवं व्यथित करती हैं| अत: उन्होनें अपनी चिंता और व्यथा को पूरी प्रामाणिकता के साथ अपनी गजलों में अभिव्यक्त किया है|

रोटी की समस्या -

'रोटी' आम आदमी की सबसे महत्वपूर्ण समस्या है| रोटी पाने का संघर्ष उसके जीवन में निरंतर चलता रहता है| दो वक्त की रोटी के लिए उसकी जद्दोजहद चलती रहती है| रोटी की समस्या को हल करना सरकार की जिम्मेदारी होती है| किंतु वर्तमान राजनेता इसका स्थायी समाधान नहीं करना चाहते| वे केवल आश्वासन देते हैं| आर्थिक अभाव में जीना आम आदमी की नियति बन चुकी है|

डॉ. मधु खराटे इस संदर्भ में विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं, "हमारे देश की सबसे प्रमुख एवं महत्वपूर्ण समस्या रोटी है| आज भी लाखों ही नहीं, करोडों लोग भूख की समस्या से ग्रस्त-त्रस्त हैं| अभावग्रस्त व्यक्ति केवल रोटी मिल जाने से संतुष्ट हो जाते हैं| वैसे भी उनकी महत्त्वकांक्षा रोटी से अधिक नहीं है| आम आदमी की भूख के प्रति गजलकार चिंतित हैं|"[1]

कितना भी संकट क्यों न हो व्यक्ति अपने परिवार के लिए जी तोड मेहनत करता है| वह खुद भूखा रहता है, किंतु पत्नी और बच्चों के खुशहाल जीवन के लिए बचत करता है| पैसे बचा-बचाकर वह परिवार का पेट भरता है| इसकी मार्मिक अभिव्यक्ति ज्ञानप्रकाश विवेक की गजल में हुई है –

"आप दिनभर रहा हो भूख से व्याकुल लेकिन
अपने बच्चों के लिए पैसे बचाये उसने"[2]

यदि मनुष्य की पेट की आग शांत नहीं होती है, तो वह वाममार्ग की ओर बढता है| भूख मनुष्य को चोर बना देती है| इस संदर्भ में ज्ञानप्रकाश लिखते हैं –

"यकीनन वो कई दिन का था भुखा
मेरी रोटी उठाकर जो गया था"[3]

X X X

"वो तो मैं आप था कल रात जिसे सपने में
एक रोटी को चुराते हुए देखा मैंने"[4]

इस तरह हम देखते है कि ज्ञानप्रकाश विवेक ने अपनी गजलों में 'रोटी' की समस्या का चित्रण अत्यंत मार्मिकता से किया है|

कपडें की समस्या -

रोटी की तरह कपडें की समस्या भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है| आम आदमी के पास बदन ढकने के लिए ठीक से वस्त्र भी नहीं हैं| फटे-पुराने कपडे पहनने के लिए विवश है| आम आदमी आर्थिक अभाव के कारण ठंड में अपनी सुरक्षा बडी मुश्किल से कर पाता है| उसके पास ओढने-बिछाने के लिए आवश्यक साधनों का अभाव होता है| ठंड के प्रकोप को सहने के लिए फटा-पुराना

कम्बल काफी नहीं है| लेकिन वह कर भी क्या सकता है| ऐसी स्थिति में उसे उसी से काम चलाना पडता है| ज्ञानप्रकाश विवेक लिखते हैं –

"निभाई हैं फटे कम्बल से रिश्तेदारियाँ हमने
गुजारी है बडी दिक्कत से यारो सर्दियाँ हमने"[5]

वस्त्रों के अभाव में सामान्य व्यक्ति अपने पास जो कुछ भी वस्त्र हैं, उन्हें संभालकर-बचाकर रखना चाहता है| वे वस्त्र गंदे न हो जाए इसकी वह चिंता व्यक्त करता है| इसीलिए वह कहता है –

"खुदा के वास्ते इस पे न डालिए कीचड
बची हुई है यही शर्ट आखरी मेरी"[6]

इस तरह हम देखते हैं कि आम आदमी के जीवन में वस्त्रों की समस्या किस तरह व्याप्त है| उचित वस्त्रों के अभाव में वह हर मौसम में जीवनयापन करने के लिए विवश है| ठंड हो या गर्मी उसे मुसीबतों का सामना करना पडता है| उसकी इन्हीं मुसीबतों का चित्रण ज्ञानप्रकाश विवेक की गजलों में हुआ है|

मकान की समस्या -

रोटी और कपडों की तरह आम आदमी की तीसरी महत्त्वपूर्ण समस्या है – मकान| जिस तरह वह अर्थाभाव की वजह से रोटी और कपडों के लिए तरसता रहता है, ठीक उसी तरह वह मकान की समस्या को लेकर भी परेशान है| सिर छुपाने के लिए उसके पास छत भी नहीं है| वह खुले में, फुटपाथ पर या झुग्गी झोपडियों में रहने के लिए विवश है| गर्मी, ठंड, बरसात में अपने टूटे-फूटे झोपडे में वह जीवनयापन कर रहा है|

डॉ. मधु खराटे इस संदर्भ में लिखते है – "मानव-जीवन में महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है – मकान| परंतु गरीबों को यह सुविधा भी उपलब्ध नहीं है| वे पक्के मकानों की चाह नहीं करते, सिर छुपाने के लिए एक आसरा चाहते हैं| लाखों लोग बेघर हैं जो रेल्वे प्लेटफॉर्म, पुल के नीचे, बडे पाइपों, दुकानों के बाहर रैन बसेरा करते हैं| फुटपाथों पर रहते हैं| झुग्गी झोपडियाँ ही इनका प्रमुख निवासस्थान है|"[7]

ज्ञानप्रकाश विवेक ने आम आदमी की समस्या पर अपनी गझलों में विस्तार से प्रकाश डाला है| जिस मनुष्य का घर कमजोर हो, जिसकी छत जगह-जगह से टपकती हो वह कैसे निश्चिंत होकर सो सकता है| ऐसी हालत में उसे रात जाग कर ही व्यतित करनी होती है| बारिश के मौसम में वह रातभर जागने के लिए विवश हो जाता है –

"घर हो कच्चा और बारिश की झडी चारों पहर
ऐसे मौसम में भला चुपचाप सोता है कोई"[8]

दरिद्रता और गरीबी के कारण सामान्य व्यक्ति सर्दी के मौसम में हमेशा चिंतित रहता है| उसकी चिंता यह है कि ठंड की रातों में वह कैसे रहेगा| उसके पास ओढने-बिछाने का उचित प्रबंध नहीं है| अत: वह कापियों पर ही पेन्सिल से घर बनाता रहता है| उसकी इस अवस्था का चित्रण करते हुए गजलकार लिखता है –

"ये वो बेघर है आदमी है जिसने सिखा था कभी
पेंसिल से कापियों पर घर बनाकर देखना"[9]

ज्ञानप्रकाश विवेक को इस बात का दुख है कि आजादी के इतने वर्षों बाद भी आम आदमी के आवास की समस्या का उचित समाधान नहीं हो का है| आज भी लोग फुटपाथ, झोपडीयो, रेल्वे लाइन के पास, ओवर ब्रिज के नीचे, बडे-बडे पाइपों में रहने के लिए विवश हैं|

आर्थिक विषमता की समस्या -

सामाजिक विषमता की तरह भारत की दूसरी महत्त्वपूर्ण समस्या है – आर्थिक विषमता| दिन-प्रतिदिन समाज में आर्थिक विषमता बढती जा रही है| गरीब और गरीब तथा अमीर और अमीर होता जा रहा है| एक ओर धनवानों के कुत्ते कार में घूम रहे हैं| कुत्तों को खाने में अच्छे-अच्छे पदार्थ मिल रहे हैं, ठंड में ओढने की व्यवस्था की जा रही है| तो दूसरी ओर आम आदमी भोजन के लिए तरस रहा है| उसकी जीवनावश्यक जरुरते पूरी नहीं हो पा रही है|

हिंदी गजलों में भी आर्थिक विषमता का चित्रण अत्यंत मार्मिकता से हुआ है| हिंदी गजलकारों ने सर्वहारा वर्ग की विविध समस्याओं का बेबाक चित्रण किया है| साथ ही साथ पूँजीपतियों की शोषण की प्रवृत्ति पर जमकर प्रहार किया है| समाज में बढती इस प्रवृत्ति का पर्दाफाश किया है|

हिंदी के अन्य गजलकारों की तरह ज्ञानप्रकाश विवेक ने भी अपनी गजलों में आर्थिक विषमता के परिणामस्वरूप निर्माण हुई आम आदमी की जिंदगी की विवशताओं पर प्रकाश डालने की कोशिश की है| वे भी इन परिस्थितियों को देखकर व्यथित होते हैं| उन्हें लगता है कि यह आर्थिक अभाव दूर होना चाहिए और आम आदमी का जीवन खुशहाल बनना चाहिए|

ज्ञानप्रकाश विवेक ने अपनी गजलों में आर्थिक विषमता के कई चित्र प्रस्तुत किये हैं| ज्ञानप्रकाश का रेल-यात्रा से बडा करीब का रिश्ता रहा है| वे बहादूरगढ से दिल्ली की यात्रा रोजाना करते हैं| इस 'अप एंड डाउन' पर उन्होनें 'नई दिल्ली एक्सप्रेस' नामक उपन्यास भी लिखा है| उनकी मान्यता है कि यह विषमता रेल-यात्रा में भी दिखाई देती है| आम आदमी खडे-खडे यात्रा करता है| उसे कोई जगह न मिलने पर वह पायदान पर बैठकर यात्रा करता है| दूसरी तरफ धनवान लोग ए.सी. में बैठकर-सोकर यात्रा करते हैं| इस पर प्रकाश डालते हुए वे लिखते हैं –

"हमने पायदान पे तय कर ली सारी यात्रा
बर्थ पर लेटा हुआ शायद कोई धनवान है"[10]

दरिद्रता का आलम यह है कि आम आदमी अपनी भूख को मिटाने के लिए पदार्थों की महक से काम चला लेता है| एक ओर खाने के लिए तरह-तरह के पकवान हैं, तो दूसरी तरफ उन पदार्थों की कुशबू से आम आदमी अपनी भूख मिटाने के लिए विवश है| इस पर मार्मिक व्यंग्य करते हुए गजलकार लिखता है -

"टैंट के अंदर से जो पकवान की खुशबू उठी
टैंट के बाहर कोई भूखा उसे खाता रहा"[11]

निष्कर्ष -

इस प्रकार ज्ञानप्रकाश विवेक ने समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता पर जमकर प्रहार किया है| आर्थिक विषमता के परिणामस्वरूप आम आदमी का जीवन कितना दयनीय बन चूका है इसका जीवंत एवं यथार्थ चित्रण उनकी गजलों में परिलक्षित होता है| सामान्य आदमी की विवशताओं पर उन्होंने प्रकाश डालने की कोशिश की है| साथ ही साथ पुंजीपतियों की शोषण-प्रवृत्ति का घोर विरोध उनकी गजलों में दृष्टिगोचर होता है|

संदर्भ सूची –

1. दुष्यंततोत्तर हिंदी गजल – डॉ. मधु खराटे, पृ. 67
2. घाट हजारों इस दरिया के – ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ. 23
3. घाट हजारों इस दरिया के – ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ. 18
4. इस मुश्किल वक्त में – ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ. 59
5. गुफ्तगू आवाम से है – ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ. 39
6. गुफ्तगू आवाम से है – ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ. 14
7. गजलकार ज्ञानप्रकाश विवेक - डॉ. मधु खराटे, पृ. 81
8. धूप के हस्ताक्षर - ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ. 73
9. इस मुश्किल वक्त में – ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ. 29
10. इस मुश्किल वक्त में – ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ. 70
11. इस मुश्किल वक्त में – ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ. 68

*****

समकालीन हिंदी ग़ज़लों में पर्यावरणीय विमर्श : प्रकृति, प्रदूषण और मानव सरोकार

प्रा. सुधाकर कल्लाप्पा इंडी
सहाय्यक प्राध्यापक (हिंदी)
श्रीमती आक्काताई रामगोंडा पाटील कन्या महाविद्यालय, इचलकरंजी
मो. नं. : 7411398411
ई-मेल : sudhakarindi@gmail.com

शोध आलेख सारांश (Abstract)

प्रस्तुत शोध-आलेख में समकालीन हिंदी ग़ज़लों में अभिव्यक्त पर्यावरणीय चेतना और उससे जुड़े सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकारों का विश्लेषण किया गया है। औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, उपभोक्तावादी संस्कृति, बढ़ती जनसंख्या तथा प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन के कारण पर्यावरणीय असंतुलन आज वैश्विक संकट का रूप ले चुका है। समकालीन हिंदी ग़ज़लकारों ने इस संकट को केवल प्रकृति तक सीमित न रखकर मानव जीवन, संस्कृति और सभ्यता के व्यापक संदर्भ में प्रस्तुत किया है। ग़ज़लों में नदी-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण, वनों की कटाई, शहरीकरण की विद्रूपता तथा जैव-विविधता के विनाश को सशक्त प्रतीकों, बिंबों और मार्मिक संवेदनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि समकालीन हिंदी ग़ज़ल पर्यावरण संरक्षण हेतु जन-जागरण का प्रभावी साहित्यिक माध्यम बनकर उभरी है।

बीज शब्द (Keywords) : समकालीन हिंदी ग़ज़ल, पर्यावरणीय विमर्श, प्रदूषण, शहरीकरण, प्रकृति-संरक्षण, सामाजिक दायित्व

प्रस्तावना

मनुष्य और प्रकृति का संबंध सभ्यता के आरंभ से ही घनिष्ठ, सहजीवी और परस्पर आश्रित रहा है। मानव जीवन का अस्तित्व प्रकृति पर आधारित है और भारतीय संस्कृति ने सदैव प्रकृति को जीवनदायिनी शक्ति के रूप में स्वीकार किया है। वेदों में, विशेषतः अथर्ववेद में, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश को पूजनीय तत्व मानते हुए उनके संरक्षण का संदेश दिया गया है। वृक्ष-पूजा, नदियों की आराधना और वन-संरक्षण की परंपरा भारतीय पर्यावरणीय दृष्टि का प्रमाण है। किंतु आधुनिक युग में भौतिकतावादी विकास की अंधी दौड़ ने इस संतुलन को भंग कर दिया है। औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, प्लास्टिक का अत्यधिक प्रयोग और प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन ने पर्यावरणीय संकट को जन्म दिया है। इसके परिणामस्वरूप बाढ़, सूखा, जलवायु परिवर्तन, वायु-जल प्रदूषण और जैव-विविधता का क्षरण मानव जीवन के लिए गंभीर चुनौती बन गए हैं। ऐसी स्थिति में साहित्य, विशेषतः हिंदी ग़ज़ल, समाज को सचेत करने का सशक्त माध्यम बनकर उभरती है।

समकालीन हिंदी ग़ज़ल और पर्यावरणीय चेतना

समकालीन हिंदी ग़ज़ल ने अपने पारंपरिक प्रेम-केन्द्रित स्वरूप से आगे बढ़कर सामाजिक, राजनीतिक और पर्यावरणीय यथार्थ को अभिव्यक्त किया है। आज की ग़ज़ल केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि वैचारिक हस्तक्षेप और सामाजिक उत्तरदायित्व का माध्यम बन चुकी है। गज़लकारों ने प्रकृति-विनाश, प्रदूषण और मानवीय स्वार्थ को तीखे प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। डॉ. बृजेश सिंह, चंद्रसेन विराट, जहीर कुरैशी, गोपालदास नीरज जैसे गजलकारों के गज़लें प्रकृति की आवश्यकता और मानवीय थकान को प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त करती हैं। हिंदी ग़ज़लों में पर्यावरण-चेतना न केवल साहित्यिक संवेदना का विस्तार है, बल्कि समाज को जागरूक करने और पर्यावरण संरक्षण की दिशा में सोच विकसित करने का सशक्त माध्यम भी है। इस प्रकार समकालीन हिंदी ग़ज़ल पर्यावरण-चेतना के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

नदी-प्रदूषण और प्राकृतिक प्रवाह का संकट-

नदियाँ भारतीय सभ्यता और संस्कृति की आधारशिला रही हैं। किंतु आधुनिक विकास की प्रक्रिया में नदियों का स्वाभाविक प्रवाह बाधित हो रहा है। बाँधों का निर्माण, जल का अत्यधिक दोहन, औद्योगिक अपशिष्ट और शहरी गंदगी नदियों को प्रदूषित कर रहे हैं। ज़हीर कुरेशी उन्मुक्त बहती नदियों की पीड़ा को इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं—

नदी बनकर जो चलती है हिमालय से, / समंदर तक उसे रुकना नहीं आता।[1]
वो नदी है उसे बहने में मज़ा आता है, / उसको भाता नहीं ठहरा हुआ पानी होना।[2]

यह शेर नदी को जीवंत सत्ता के रूप में प्रस्तुत करता है और पूँजी-केंद्रित विकास-दृष्टि की आलोचना करता है। नदी केवल जल-स्रोत नहीं, बल्कि जीवन और कृषि की आत्मा है।

जनसंख्या-विस्फोट और नदी संकट -

डॉ. बृजेश सिंह बढ़ती जनसंख्या को पर्यावरण-प्रदूषण का प्रमुख कारण मानते हैं। उनके अनुसार जनसंख्या-विस्फोट के कारण नदियों पर अत्यधिक दबाव पड़ रहा है। पेयजल की बढ़ती माँग, कृषि और उद्योगों में जल का अति-उपयोग तथा बालू का अनियंत्रित दोहन नदियों के अस्तित्व को संकट में डाल रहा है।

"आबादी का कहर न नदियों पे बरपाना है, / जीवन के अस्तित्व का न तर्पण कराना है ॥
उन्हीं नदियों को लील रही सभ्यताएँ जहाँ, / पली-बढ़ी जिस अमृतमय जल से लहलहाना है ॥
नगरीय सभ्यता का कैसा विकासक्रम है, / जो ठाना है कि संस्कृति-सभ्यता को मिटाना है ॥
नदियों को बचाने हम संकल्पित हों सभी, / निज मानव जीवन को सार्थक बनाना है ॥
नदियाँ ही संस्कृति की जनक होतीं 'बृजेश', / संस्कृति को बचाने नदियों को बचाना है ॥"[3]

इन पंक्तियों में कवि नदियों को संस्कृति और सभ्यता की जननी के रूप में प्रस्तुत करते हैं और उनके संरक्षण की अनिवार्यता पर बल देते हैं।

वायु-प्रदूषण और औद्योगिक सभ्यता-

औद्योगिकीकरण और नगरीकरण के कारण वायु-प्रदूषण भयावह रूप धारण कर चुका है। कारखानों और वाहनों से निकलने वाला जहरीला धुआँ मानव स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा बन गया है। ज़हीर कुरेशी आधुनिक जीवन की यांत्रिकता और प्रदूषित वातावरण को इस प्रकार चित्रित करते हैं—

"भागदौड़ की एक कहानी चलती है दिनभर, / तारकोल की सड़क धूप में जलती है दिनभर।
हवा शहर की इसीलिए बीमार हो रही है, / मिल की चीमनी काला जहर उगलती है दिनभर।"[4]

इन शेरों के माध्यम से ग़ज़लकार आधुनिक जीवन की यांत्रिकता, प्रदूषित वातावरण और मानवीय विवशता को प्रभावशाली प्रतीकों के सहारे प्रस्तुत करता है। इस प्रकार ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लें पर्यावरण-चेतना को सामाजिक यथार्थ से जोड़ते हुए पाठक को प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व का बोध कराती हैं। यहाँ आधुनिक सभ्यता की थकान, प्रदूषण और मानवीय विवशता सजीव रूप में उभरती है।

विकास बनाम पर्यावरण-संतुलन-

गिरीराज शरण अग्रवाल का मानना है कि देश की प्रगति के लिए औद्योगिकीकरण और शहरीकरण आवश्यक हैं, किंतु इनसे भी अधिक अनिवार्य पर्यावरण-सुरक्षा है। यदि विकास की प्रक्रिया में पर्यावरण-संतुलन की उपेक्षा की गई, तो इसके दुष्परिणाम न केवल प्रकृति पर, बल्कि समस्त जीव-जगत के अस्तित्व पर गंभीर संकट उत्पन्न कर सकते हैं। पर्यावरण के निरंतर क्षरण को देखकर कवि की संवेदना व्यथित हो उठती है और वे मनुष्य की अविवेकी विकास-दृष्टि पर गहरी चिंता व्यक्त करते हैं—

"शहरीकरण तो ठीक है, लेकिन यह ध्यान रख।
पुरवा हवा हो, बाग हो, घटा हो ॥"[5]

यह संतुलित विकास-दृष्टि का स्पष्ट संकेत है। कवि यह चेतावनी देते हैं कि यदि विकास पर्यावरण-विरोधी होगा, तो उसके दुष्परिणाम समस्त जीव-जगत को भुगतने पड़ेंगे।

वनों की कटाई और मानवीय संवेदना का ह्रास-

समकालीन हिंदी ग़ज़लों में पर्यावरण और वृक्ष-बोध अत्यंत सशक्त रूप में अभिव्यक्त हुआ है। ग़ज़लकारों ने वृक्षों की कटाई, जंगलों के विनाश और प्रकृति के प्रति मानवीय उदासीनता को गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। डॉ. कुँअर बेचैन की ग़ज़लों में वृक्ष मानवीय पीड़ा के प्रतीक के रूप में उभरते हैं—

"आज के इंसान ने भी ये कैसे-कैसे काम किए,
काट दिए बाहर के जंगल मन में जंगल भेज दिए।"[6]
"सिर्फ़ फूलों को 'कुँवर' देखते रहे तो तुम,
अब ज़रा सूखते पत्तों की पसलियाँ देखो।"[7]

यह शेर आधुनिक मनुष्य की दृष्टि पर प्रश्नचिह्न लगाता है, जो केवल सौंदर्य और लाभ देखता है, किंतु विनाश को अनदेखा करता है।

हरे-भरे वनों की अंधाधुंध कटाई और शहरीकरण की प्रवृत्ति ने मनुष्य को प्रकृति से दूर कर दिया है। विकास के नाम पर वृक्षों की बलि चढ़ाकर अपनाए गए शहरी परिवेश ने न केवल पर्यावरण को क्षति पहुँचाई है, बल्कि मानव जीवन की सहजता और संवेदनशीलता को भी नष्ट कर दिया है। ग़ज़लकार ज़हीर कुरेशी इस विडंबनापूर्ण स्थिति को अपनी ग़ज़ल में मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त करते हैं—

"काटते-काटते वन गया, ज़िंदगी से हरापन गया।
सोच में भी प्रदूषण बढ़ा, इसलिए शुद्ध चिंतन गया।
मंज़िलों पर बनी मंज़िलें, गाँव शैली का आँगन गया।
हर समय दौड़ते-भागते, शहरी लोगों का जीवन गया।"[8]

इन पंक्तियों में गजलकार वनों के विनाश के साथ जीवन की हरियाली, शुद्ध चिंतन और ग्रामीण संस्कृति के क्षरण को रेखांकित करता है। बहुमंज़िला इमारतों के बीच सिमटता मानव जीवन और निरंतर भागदौड़ भरी दिनचर्या आधुनिक शहरी सभ्यता की अमानवीयता को उजागर करती है। इस प्रकार ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लें शहरीकरण और पर्यावरण-विनाश के दुष्परिणामों को प्रभावशाली प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत करती हुई पर्यावरण-चेतना को सुदृढ़ करती हैं।

प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और जैव-विविधता का संकट-

प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन से उत्पन्न पर्यावरणीय संकट को ग़ज़लकार ने चिड़िया और घास जैसे सहज प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से अत्यंत मार्मिक रूप में अभिव्यक्त किया है। पर्यावरण-विनाश के कारण प्रकृति का संतुलन किस प्रकार टूट रहा है, इसका सशक्त संकेत इन पंक्तियों में मिलता है-

"कुछ इस तरह से घास के जंगल हुए सपाट, / अब घोंसले बनाने को भी तिनके नहीं रहे।"[9]

इन पंक्तियों में घास के जंगलों का समतल हो जाना केवल भूमि-क्षरण का संकेत नहीं है, बल्कि जैव-विविधता के विनाश और जीव-जगत के विस्थापन का प्रतीक भी है। चिड़िया के लिए घोंसला बनाने हेतु तिनकों का अभाव मानव की असंवेदनशील विकास-नीति की ओर संकेत करता है। इस प्रकार ग़ज़लकार सरल बिंबों के माध्यम से पर्यावरण-प्रदूषण की भयावह स्थिति को प्रभावी ढंग से रेखांकित करता है।यह शेर पर्यावरण-विनाश के कारण जीव-जंतुओं के विस्थापन की मार्मिक अभिव्यक्ति है।

महानगरीय विद्रूपता-

आज़ादी के बाद महानगरों का तीव्र विकास हुआ, किंतु इसके साथ पर्यावरणीय और नैतिक विसंगतियाँ भी बढ़ीं। चंद्रसेन 'विराट' महानगरों की इस विद्रूपता को व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत करते हैं—

"जलता जंगल महानगर, सूखा दल-दल महानगर।
खुलती बोतल महानगर, / बिकता आँचल महानगर ॥"[10]

इन पंक्तियों में 'जलता जंगल' और 'सूखा दल-दल' जैसे बिंब महानगरों में फैलते प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण की ओर संकेत करते हैं, वहीं 'खुलती बोतल' और 'बिकता आँचल' नैतिक और सामाजिक पतन को भी रेखांकित करते हैं। इस प्रकार चंद्रसेन 'विराट' की ग़ज़लें पर्यावरणीय संकट को सामाजिक यथार्थ से जोड़ते हुए समकालीन महानगरीय जीवन की विडंबनाओं को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करती हैं।

निष्कर्ष-

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समकालीन हिंदी ग़ज़लों में पर्यावरणीय विमर्श एक सशक्त वैचारिक और सामाजिक प्रवृत्ति के रूप में उभरकर सामने आई है। ग़ज़लकारों ने नदी-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण, वन-विनाश, शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के दुष्परिणामों को संवेदनशीलता और प्रतीकात्मकता के साथ अभिव्यक्त किया है। समकालीन हिंदी ग़ज़ल न केवल पर्यावरणीय संकट का यथार्थ चित्रण करती है, बल्कि मानव को आत्मचिंतन और प्रकृति-संरक्षण की दिशा में प्रेरित भी करती है। इस प्रकार समकालीन हिंदी ग़ज़ल पर्यावरणीय जन-जागरण का प्रभावी साहित्यिक माध्यम सिद्ध होती है।

संदर्भ:

[1]. जहीर कुरैशी: महत्त्व और मूल्यांकन, सं. डॉ. विनय मिश्र, पृ. 266
[2]. जहीर कुरैशी की चुनिंदा ग़जलें, सं. डॉ. मधु खराटे, पृ. 87
[3] विकास संस्कृति, संपा. संदीप सिंह, त्रैमासिक पत्रिका, जन-फर-मार्च, 2012 अंक- 21, पृ. 36
[4]. एक टुकड़ा धूप, जहीर कुरैशी, पृ. 28
[5]. मौसम बदल गया कितना, गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ. 40
[6]. डॉ. कुँवर बेचैन, 'आँधियों में पेड़', प्रगीत प्रकाशन, गाजियाबाद, प्र. सं. 1987, पृ. 11
[7]. डॉ. कुँवर बेचैन, 'आँधियों में पेड़', प्रगीत प्रकाशन, गाजियाबाद, प्र. सं. 1987, पृ. 61
[8]. भीड़ में सबसे अलग, जहीर कुरैशी, पृ. 57
[9]. भीड़ में सबसे अलग, जहीर कुरैशी, पृ. 31
[10]. धार के विपरीत, चंद्रसेन विराट, पृ. 12

*****

भारतीय सिनेमा की समीक्षा भी एक साहित्यिक सृजन है...

प्रोफेसर (डॉ.) सुरेश कानडे
हिंदी विभागाध्यक्ष एवं शोध निर्देशक
एस.एम.आर के - बी के - ए.के.
महिला महाविद्यालय नाशिक

शोध सार:

आजकल ऐसी फ़िल्में खूब लोकप्रिय हो रहीं है जो लोगों का मनोरंजन ही नहीं करती बल्कि उनके जीवन से जुड़ी समस्याओं को दर्शाती हैं | उन समस्याओं को जिस तरह रोचक और मनोरंजक बनाकर प्रस्तुत किया जाता है और जिस तरह उसके समाधान किये जाते हैं, उसका वास्तविक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं होता है | यद्यपि 'मुन्नाभाई भाई एम.बी.बी.एस.', 'लगे रहो मुना भाई' जैसी फिल्मों में 'मुन्ना' नामक पात्र गांधीगिरी करके सारी समस्याएं हल कर देता है और फिल्म हिट हो जाती है ,लेकिन वास्तविक जीवन में ऐसा कभी नहीं हो सकता है |इस प्रकार की फिल्में दर्शकों को यथार्थवादी न बनाकर पलायनवादी बनाती हैं |यही कारण है कि ऐसी फ़िल्में एक व्यावसायिक उत्पाद की तरह होती हैं |इसलिए एक समीक्षक व रचनाकार को साहित्य सृजन के समय गहराई से सोचना और यथार्थ को समझना आवश्यक है, तभी एक अच्छे साहित्य का सृजन हो पायेगा | जो पाठक व समाज के लिए मार्गदर्शक सिध्द होगा |

बीज शब्द: सिनेमा, फिल्म, समाज, सृजन वर्तमान समय

भारतीय उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सिनेमा और अन्य मिडिया का पठन -पाठन,अध्ययन और अनुसन्धान का विषय बना है | सिनेमा से सम्बन्धित लेखन परिणामों की दृष्टि से समृध्द हो रहा है | भारतीय सिनेमा पहले आम जनता के हल्के - फुल्के मनोरंजन का माध्यम माना जाता था, आज वह साहित्य और कलाओं के क्षेत्र में भी गंभीर चर्चा और विश्लेषण का विषय बन गया है | यही कारण है कि, पिछले कुछ वर्षों में भारतीय सिनेमा पर अनेक अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं | साथ ही हिंदी साहित्य की अनेक पत्रिकाओं में विशेषांक भी प्रकाशित हुए हैं | वर्तमान समय में स्थानीय या क्षेत्रीय स्तर की एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक एवं राजनीतिक गतिविधियों के साथ-साथ भूमंडलीय स्तर पर भी भारतीय सिनेमा अपनी छाप छोड़ रहा है |यद्यपि भारतीय सिनेमा प्रारम्भ से ही अंतरराष्ट्रीय विषयों को दर्शाता रहा है लेकिन भूमण्डलीकरण के दौर में यथार्थ से प्रेरित और प्रचलित हो रहा है |

भारतीय सिनेमा और साहित्य का सिनेमा के प्रारम्भ से ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है | वर्तमान समय में यह सम्बन्ध और भी बढ़ गया है | यथार्थ यह है कि सिनेमा अनेक सामजिक,आर्थिक,राजनीतिक,सांस्कृतिक तथा तकनीकी कारणों से जितनी शीघ्रगति से भूमंडलीय यथार्थ से जुड़कर उसका अंग बन गया है | देखा जाय तो साहित्य अभी नहीं बन पाया है |अत: साहित्य के अधेयताओं के लिए भी भूमण्डलीकरण और भारतीय सिनेमा के सम्बन्ध को समझना आवश्यक है | भारतीय सिनेमा और भूमण्डलीकरण के सम्बन्ध को समझने या स्पष्ट करने के लिए भारतीय सिनेमा और साहित्य के विभिन्न रूपों में जुड़े फिल्मकारों, निर्देशकों,लेखकों,समीक्षकों आदि के विचार प्राप्त करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों और प्रतिक्रियाओं का आधार लेना पड़ेगा | जैसे .....

1. भारतीय सिनेमा साहित्य सृजन में अपनी भूमिका कैसे निभा रहा है ? और साहित्य सृजन के लिए कैसे सहायक है ?
2. भारतीय सिनेमा और मण्डलीकरण का क्या सम्बन्ध है ? क्या यह सम्बन्ध केवल पूंजीवादी व्यवस्था व बाजार से जुड़ने के लिए महत्वपूर्ण है ?
3. भारतीय सिनेमा बॉलीवूड या उसका एक भाग भूमण्डलीकरण की विचारधारा से जुड़ने के कारण भारतीय समाज,राजनितिक व सांस्कृतिक परिवेश को किस प्रकार प्रभावित करेगा ?
4. भारतीय सिनेमा वर्तमान काल में भाषाई परिवर्तन क्यों और किसलिए हो रहा है ? जो साहित्य सृजन के लिए कितना उपयोगी सिध्द होगा ?
5. भारतीय सिनेमा में प्रदर्शित विषय समाज व साहित्य को किस प्रकार प्रभावित कर रहे हैं और उस प्रभाव का भविष्य कैसा होगा ?

"भारतीय सिनेमा का प्रत्येक दर्शक उसका समीक्षक व प्रचारक होता है | प्रत्येक फिल्म के बारे में उसकी अपनी एक राय होती है |जिसे वह अपने आस-पास के लोगों में व्यक्त करता है |भिन्न राय रखने वालों से बहस करता है |दर्शकों के बौध्दिक स्तर,ज्ञान, अनुभव,जागुरुकता,रुचि,सौन्दर्यबोध,पक्षधरता और अभिव्यक्ति की क्षमता की विभिन्नता के अनुसार उनकी राय

अलग-अलग रूपों में सामने आती है |"१ पत्र – पत्रिकाओं में सिनेमा के बारे में जो लेखन किया जाता है उसमें प्राय: हल्के - फुल्के अगम्भीर भाव प्रस्तुत किये जाते हैं |पाठको द्वारा भी उन्हें अगम्भीर ही लिया जाता है |लेकिन कभी-कभी इस प्रकार के लेखों से अफवाहें भी फैलती हैं |जिसके परिणाम स्वरूप फिल्म लोकप्रिय भी बन जाती है | साथ हि ऐसे उदाहरण भी कम नहीं हैं जिनसे पता चलता है कि फिल्म समीक्षा या साहित्य सृजन निहायत ही एक जिम्मेदारी वाला काम है तथा सिनेमा सम्बन्धी लेखन गंभीर अध्ययन और अनुसन्धान का विषय है | शायद यही कारण है कि पिछले कुछ वर्षों में भारतीय सिनेमा के बारे में अनेक अच्छी पुस्तके एवं विशेषांक प्रकाशित हुए हैं |

सिनेमा और साहित्य एक दुसरे को प्रभावित करते हैं |साहित्यिक कृतियों पर आधारित हर देश में फ़िल्में बनती आ रही हैं और बनती रहेंगी | बहुत से साहित्यकार भारतीय सिनेमा में कथाकार,पटकथा लेखक,गीतकार, अभिनेता,निर्माता,निर्देशक तक के विभिन्न रूपों में सक्रीय रहे हैं |उन्होंने अपनी कला से सबको प्रभावित किया है |दूसरी और सिनेमा भी साहित्य को प्रभावित करता रहा है | "कथा साहित्य और नाटक में दृश्य विधान,पूर्वदीप्ति,स्वप्न और फंटैसी जैसे अनेक तकनीकी युक्तियाँ सिनेमा से आई हैं |" २ भारतीय सिनेमा को यह श्रेय भी दिया जा सकता है कि छन्दबध्द गेय कविता को उसी ने ज़िंदा रखा है |इतना ही नहीं सभी देशों की सभी भाषाओं के साहित्य को देशी – विदेशी सिनेमा ने कुछ ना कुछ अवश्य दिया है |लेकिन पूंजीवादी, भूमण्डलीकरण और बाजारवाद ने पिछले कुछ दशकों में भारतीय और विश्व सिनेमा को बुरी तरह से प्रभावित किया है |साहित्य और सिनेमा के बीच की दूरियां निरंतर बढती नजर आ रहीं है |साहित्यिक कृतियों पर आधारित फिल्मों का निर्माण धीरे-धीरे कम होने लगा है |फ़िल्मी दुनिया में साहित्यकारों की सक्रियता घटी है |जैसे:- हिंदी सिनेमा के साहित्यकार (गीतकार) शैलेन्द्र,प्रदीप,भरत व्यास, नरेंद्र शर्मा,नीरज, साहिर लुधियानवी,मजरूह सुल्तानपुरी,हसरत जयपुरी,कैफ़ी आजमी,शकील बदायुनी, आनंदबक्षी, जैसे महान गीतकारों अब जरूरत नहीं है ऐसा जान पड़ता है |कारण यह है कि अब सिनेमा या साहित्य की कलात्मकता की जगह व्यावसायिकता को अधिक महत्व दिया जा रहा है | "बाजार में स्पर्धा के कारण महंगी टेक्नोलॉजी के माध्यम से आज सिनेमा तैयार किया जा रहा है |जबकि साहित्य भी उसी तरह का लिखा जा रहा है |सिनेमा से सम्बन्धित बहुराष्ट्रीय कम्पनियां बाजारवाद की शर्तों पर काम करने लगी हैं |लेकिन सिनेमा की समीक्षा में विशेष रूप से साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली फिल्म समीक्षाओं तथा सिनेमा पर लिखे जानेवाले समीक्षात्मक लेखों में आम तौर पर सिनेमा का विवेचन विश्लेषण ही किया जाता है |" ३ शायद यही कारण है कि ऐसा लेखन जो वस्तुत: एक प्रकार का साहित्यिक लेखन ही है |परन्तु वह अपना सार्थक सम्बन्ध नहीं बना पाता है |उसे साहित्येत्तर लेखन ही समझा जाना चाहिए |जबकि होना यह चाहिए कि साहित्यिक पत्रिकाओं में सिनेमा पर लिखने वाले लेखकों को भी साहित्य से जोड़कर देखना चाहिए |

सिनेमा और साहित्य का वास्तविक सम्बन्ध उस यथार्थ के जरिये जुड़ता है जो दोनों का विषय हो |दोनों में यथार्थ की अभिव्यक्ति होती है | माध्यम की भिन्नता के कारण वह अभिव्यक्ति भिन्न प्रकार की होती है |लेकिन दोनों में अभिव्यक्त होने वाला यथार्थ का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो साहित्य बहुत कुछ सिखा जाता है और सृजन के लिए प्रेरणा भी देता है |यदि हम किसी फिल्म को देखते हैं तो उस समय हमारा मुख्य उद्देश्य मनोरंजन होता है तथा उससे हमें कोई न कोई सन्देश प्राप्त होता है |वह संदेश स्वयं में एक यथार्थ होता है |जिसके कारण हम प्रभावित होते हैं | "वर्तमान में साहित्यिक समीक्षा के लिए सात्यिक कृति का पाठ और समीक्षक का अपना ज्ञान तथा अनुभव ही पर्याप्त नहीं है सूचना और संचार के विभिन्न साधनों और तकनीकों से परिचित होना भी आवश्यक है |" ४ आज के साहित्यिक समीक्षक के लिए मुद्रित माध्यम हि पर्याप्त नहीं है बल्कि दृश्य-श्रव्य माध्यम भी आवश्यक हैं | जो केवल सूचना और मनोरंजन के माध्यम नहीं बल्कि ज्ञान और यथार्थ बोध के साधन भी हैं |

दुनिया भर में समाज के अतीत को लेकर बहुत सारे प्रश्न साहित्य के क्षेत्र में उठाये जा सकते हैं जैसे – क्या आज का साहित्यकार वर्तमान भूमंडलीय यथार्थ की सृजनात्मक अभिव्यक्ति सिनेमा की सहायता के बिना कर सकता है ? आज के साहित्यकार के लिए देशी-विदेशी साहित्य पढ़ना जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक है फिल्मों को देखना और उसमें अभिव्यक्त हो रहे यथार्थ समझना |यह देखना भी आवश्यक है यथार्थ कितना और किस रूप में साहित्यिक लेखन में आ रहा है |वह किस प्रकार भिन्न है या नहीं, है तो किन कारणों से भिन्न है |सिनेमा की समीक्षा का यही काम है और यह काम गम्भीरता से किया जाय तो फिल्म समीक्षा और सिनेमा सम्बन्धित लेखन एक महत्वपूर्ण साहित्यिक सृजन ही होगा |यद्यपि रचनाकार और समीक्षक की भिन्न-भिन्न भूमिकाओं की ओर संकेत करना भी आवश्यक है |रचनाकार कब,कहाँ, किन चीजों से और कितना प्रभावित होता है | इसके बारे में रचनाकार स्वयं सचेत नहीं होता |उन्हें देखना, समझना,उनकी व्याख्या और विश्लेष्ण करना समीक्षक का काम है |समीक्षक का काम यह भी है कि वह सिनेमा सम्बन्धी लेखन करते समय यह देखे कि वर्तमान सिनेमा कैसे

बनता है ? कैसे बिकता है ? व्यावसायिक मुद्दों के अलावा वह किन वैचारिकता,राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उद्देश्यों की पूर्ती करता है तथा उसकी यह समूची प्रक्रिया साहित्य सृजन को कैसे प्रभावित करती है |

भाषा की दृष्टि से भी भारतीय सिनेमा में निरंतर परिवर्तन आ रहे हैं |फिल्म में भाषा का प्रयोग अनेक कारणों से प्रभावित होता है | सिनेमाई तकनीक में होने वाले परिवर्तन,फिल्मकारों और फिल्म दर्शकों की चेतना में होने वाले परिवर्तन और अभिरुचि तथा सामाजिक यथार्थ में होने वाले परिवर्तन सिनेमाई भाषा को प्रभावित करते हैं |५ इसको हम अलग-अलग दौर की फिल्मों और एक ही दौर की अलग-अलग फिल्मों के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा आसानी से समझ सकते हैं |वर्तमान समय में जो फ़िल्में मल्टीप्लेक्सों तक सीमित रहती हैं ,उनकी भाषा धीर-धीरे हिंगलिश में बदलती जा रही है |जबकि अब भी व्यापक स्तर पर देखी जानेवाली लोकप्रिय फिल्मों की भाषा का स्वरूप हिंदी – उर्दू का वही मिला-जुला रूप है, जो आरम्भ से ही हिंदी सिनेमा की भाषाई पहचान रहा है |इसका अर्थ यह नहीं कि इन फिल्मों की भाषा अब भी १९६०-७० के दशक की भाषा है |यह भाषा भी समय के अनुसार बदली है , लेकिन उसकी मूल प्रवृत्ति वही है | आज भी 'लगान', 'मुन्नाभाई भाई एम.बी.बी.एस.', 'लगे रहो मुना भाई' 'जब वी मेट', 'थ्री इडीयेट्स', 'तारे जमीं पर'जैसी फ़िल्मों की भाषा हिंदी सिनेमा की परम्परागत भाषा का ही विकास है | यह विकास अब क्षेत्रीय भाषाओं में देखने को मिल रहा है |

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि आजकल ऐसी फ़िल्में खूब लोकप्रिय हो रहीं है जो लोगों का मनोरंजन ही नहीं करती बल्कि उनके जीवन से जुड़ी समस्याओं को दर्शाती हैं | उन समस्याओं को जिस तरह रोचक और मनोरंजक बनाकर प्रस्तुत किया जाता है और जिस तरह उसके समाधान किये जाते हैं, उसका वास्तविक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं होता है | यद्यपि 'मुन्नाभाई भाई एम.बी.बी.एस.', 'लगे रहो मुना भाई' जैसी फिल्मों में 'मुन्ना' नामक पात्र गांधीगिरी करके सारी समस्याएं हल कर देता है और फिल्म हिट हो जाती है ,लेकिन वास्तविक जीवन में ऐसा कभी नहीं हो सकता है |इस प्रकार की फिल्में दर्शकों को यथार्थवादी न बनाकर पलायनवादी बनाती हैं |यही कारण है कि ऐसी फ़िल्में एक व्यावसायिक उत्पाद की तरह होती हैं |इसलिए एक समीक्षक व रचनाकार को साहित्य सृजन के समय गहराई से सोचना और यथार्थ को समझना आवश्यक है, तभी एक अच्छे साहित्य का सृजन हो पायेगा | जो पाठक व समाज के लिए मार्गदर्शक सिध्द होगा|

संदर्भ ग्रन्थ ;

1. भूमंडलीकरण और भारतीय सिनेमा : सम्पादक: रमेश उपाध्याय, पृष्ठ ६५
2. भाषा और भूमंडलीकरण: सम्पादक: रमेश उपाध्याय, पृष्ठ ६६
3. 'बहुवचन' सिनेमा के सौ साल 'विशेषांक' अक्तूबर – दिसम्बर २०१३ पृष्ठ २४९
4. सिनेमा और साहित्य का अंत:सम्बन्ध – डॉ.चन्द्रकांत मिसाल . पृष्ठ १०७
5. भाषा और भूमंडलीकरण: सम्पादक: रमेश उपाध्याय, पृष्ठ ६६

*****

राजस्थानी लोक-गीतों में जन-जीवन की सांस्कृतिक प्रथा-परंपराएँ

डॉ. सुधा जांगिड़
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
वी.एम.वी. महाविद्यालय, नागपुर

शोधालेख सारांश :

राजस्थानी लोकगीत मानवीय जीवन के प्रत्येक पहलू और महत्वपूर्ण प्रसंगों का सुंदर व सजीव चित्रण करते हैं। ये गीत मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक के विभिन्न चरणों, रिश्तों और सामाजिक अनुभवों को अभिव्यक्त करते हैं। बारह माह में आनेवाले भिन्न-भिन्न प्रकार के तीज-त्यौहार के नेक-चार (प्रथा-परंपराओं) का वर्णन दिखाई देता है | जनवरी में आनेवाली संक्रात के भी अनेक रीति-रिवाज़ होते हैं, गीत होते हैं, जैसे- मंदिर का पट खोलना, सास-ससुरजी, जेठ-जीठानी, बुआ सास-ससुर को 'सुती सेज जगाव' (सुबह सोये हुए को जगाना) नंद-नंदोई, नंद को चुनडी (चुनरी) पहनाई जाती है, नंदोई का झोल भरा जाता है | ये घर की बहू के द्वारा कराया जाता है | फ़ाग के महीने में पुरुषों के द्वारा 'डफ' के साथ होली के कुछ दिनों पहले ही 'धमाल' गीत गाए जाते हैं। चौमासा और बारिश के स्वागत में 'पणिहारी' जैसे गीत गाए जाते हैं। ग्रामीण जीवन की दिनचर्या भी संगीत से जुड़ी है- किसान हल जोतते समय 'तेजा' गायन करते हैं ताकि थकान कम हो। वहीं पशुपालन करनेवाले अपने ऊंट के श्रृंगार के समय प्रसिद्ध 'गोरबंद' गीत गाया जाता है। किसी भी शुभ काम में, घर की नींव भरने पर, नई बहू के आने पर, घर के उद्घाटन पर भी 'बधावा' (बधाई) गीत गाते हैं | राजस्थान में लोकगीत जीवन के हर महत्वपूर्ण मोड़, संस्कारों, त्योहारों के अवसर पर गाए जाते हैं। राजस्थान में जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों के लिए विशिष्ट गीत हैं - बच्चे के जन्म पर 'जच्चा' के गीत होते हैं | विवाह गीत लोकगीतों का सबसे बड़ा अवसर होता है। इसमें 'सगाई', 'बन्ना-बन्नी', 'हल्दी', 'जला' (वर की बारात देखने जाते समय), 'मेल', 'पीला चावल', 'मायरा' और 'विदाई' के गीत प्रमुख हैं। जब पति प्रदेश चला जाता है, तो विरह की वेदना व्यक्त करने के लिए 'कुरजां'(पक्षी), 'हिचकी', और 'झोरावा' जैसे गीत गाए जाते हैं | साथ ही भक्ति गीत में लोक देवी-देवताओं की आराधना में 'हरजस' और 'भजन' गाए जाते हैं। कहने का तात्पर्य है कि बच्चे के जन्म से लेकर व्यक्ति की मृत्यु तक के इस लंबे सफ़र में आनेवाले अनेक मोड़ों पर जो भी क्षण आते हैं, उन्हें राजस्थानी लोक गीत राजस्थानी जन-जीवन की सांस्कृतिक झाँकी के रूप राजस्थान के लोक को के लोकगीत पूर्ण करते हुए दिखाई देते हैं |

बीज शब्द : लोकगीत, पोमचा गीत, ओल्यो गीत, बधावा गीत|

राजस्थानी लोक-गीतों में जन-जीवन की सांस्कृतिक प्रथा-परंपराएँ

यह धारणा है कि आदिकाल से आधुनिक काल तक हिंदी साहित्य का स्वरूप परिष्कृत होता गया | संस्कृत साहित्य में भी लौकिक के उपरांत वैदिक संस्कृत का विकास और विस्तार उपरोक्त धारणा को बल भी देता है | पाली से प्राकृत की ओर का बढ़ना भी इसे प्रमाणित करता है | परिष्करण की प्रक्रिया में विकास उस स्थिति तक पहुँच जाता है, जहाँ प्राकृतिक और नैसर्गिक तत्व मुरझा जाते हैं या नष्ट हो जाते हैं | साहित्य की गति भी ऐसी रही है | जिस प्रकार सीमेंट की बड़ी-बड़ी इमारतों में सुविधाजनक घरों में बैठे हुए लोगों को प्रकृति के सहज दृश्यों का आकर्षण बना रहता है, उसी प्रकार साहित्यकारों और पाठकों को लोक गीत, लोक कथाओं, लोक नाट्यों का आकर्षण सदा आपनी ओर खींचता है | लोक साहित्य को रचने वाले कवि, गीतकार लोक के रचे-बसे अनुभव को अपनी रचनाओं में उतारते हैं, जिसमें उस अंचल की सुरभि बसी होती है | वहां की लोक संस्कृति स्पंदित होती है | इसे ही रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में कहे तो "सच्चा कवि वही है जिसे लोक-हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच में मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके | इसमें लोक-हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम में रसदशा है |"[1]

राजस्थान मरूभूमि में बसा होने पर भी वहां की संस्कृति मरूद्यान की तरह सभी भारतवासियों को आकर्षित करती रही है | राजस्थान का लोक साहित्य लोक कथाओं में नज़र आता है | प्रेम और वीरता की लोक कथाओं से, लोक गाथाओं से राजस्थान का लोक साहित्य बहुत समृध्द रहा है | इसी साहित्य में जयपुरी, मेवाती, मालवी आदि लोक भाषाओँ का अपना इतिहास रहा है जिसके माध्यम से लोक कथाओं का विस्तार हुआ | उसी प्रकार राजस्थानी लोकगीत मानवीय जीवन के प्रत्येक पहलू और महत्वपूर्ण प्रसंगों का सुंदर व सजीव चित्रण करते हैं। ये गीत राजस्थानी संस्कृति को मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक के विभिन्न चरणों, रिश्तों और सामाजिक अनुभवों को अभिव्यक्त करते हैं। मानवीय जीवन के हर एक पहलु को व्यक्त करती लेकर गीतों की परम्परा रही है| ननद-भाभी के संवाद के रूप में पोमचा (पीले-लाल रंग की ओढणी) गीत, बेटी के घर जाने पर

'ओल्यो'(स्मृति) गीत गाते हैं, बहु के घर आने पर 'बधावा'(बधाई) गीत, 'बन्ना-बन्नी' गीत आदि अनेक गीत गाये जाते हैं | प्रत्येक शुभ काम में सर्वप्रथम गणेश, विनायक जी का गीत गाया जाता है |

जनवरी में आनेवाले सर्व प्रथम पर्व मकर-संक्रात के भी अनेक रीति-रिवाज़ होते हैं, गीत होते हैं, जैसे- मंदिर का पट खोलना, सास-ससुरजी, जेठ-जेठानी, बुआ सास-ससुर को 'सुती सेज जगाव' (सुबह सोये हुए को जगाना)| नंद-नंदोई, नंद को चुनडी पहनाई जाती है | नंदोई का झोल भरा जाता है | बहू के द्वारा नेक-चार करवाया जाता है | सास-ससुरजी को *'सुती सेज जगाव' का गीत इस प्रकार* है-

'सुख सुताज जी दसरतजी रा |
जोध ओढया जी प्रेम पछेवड़ो जी।
जागो जागो जी दादस दशरा |
जीरा जोध थान जगाव थारी बहुआं |
जी जागो जागो जी दादस दशरा |
जीरा जोध थान जगाव थारी कुल बहु....|.' (मौखिक परंपरा से संकलित)

किसी भी शुभ काम में, घर की नींव भरने पर, नई बहू के आने पर, घर के उद्घाटन पर भी यह 'बधावा' गीत गाते हैं, यह बधावा अनेक प्रकार के होते हैं –

'सायबा चौबरा में ओछा पाया डोलजी |
जा पर सुता रे सासू सुगनी का पूत,
रंग भर दिवलो जोवा दयो |
सायबा ढोला मारुनी बाता लागिया |
थाणे पिवरिया में प्यारों लाग कुण,
रंग भर दिवलो जोवा दयो.....|
सायबा एक प्यारा देवर-जेठसा दुज्यो लाग अ,
दौयोर-जिठाणया रो साथ रंग भर दिवलो जोवा दयो |' (मौखिक परंपरा से संकलित)

इस प्रकार के गीत के भीतर पूरे परिवार के बड़े व्यक्तियों के नाम लेकर गीत को बढ़ाते रहते हैं | बहू के आने से खुशियाँ आती हैं और कुल को आगे बढ़ाने की आस बंधती है| इस बधावा में बहू जब घर में प्रवेश कर लेती है तब यह गीत गाया जाता है-

'बधावो जी राज बधावो, बढाओ म्हार घर आयो |
बधावो बेटा जायां, बधावो बहू घर आयां |
सियाला की रुत आई, छत्रसाला में सेज बिछाई,
चत्तरसाला म सेज बिछाई, मृगनैनी पोढ़णी आई |
चंद्रबदनी पोढ़णी आई, लसकरिये कंठ लगाई |
मन भरीये कंठ लगाई, मोहरां स पस ए भराई|
लडवां स गोद भराई.....थे तो बाटो साजनकी जाई,
थारी घर-घर होगी बड़ाई' (मौखिक परंपरा से संकलित)

राजस्थान में लोकगीत जीवन के हर महत्वपूर्ण मोड़, संस्कार, त्योहार के अवसर पर गाए जाते हैं। कोई भी उत्सव परिवार के साथ-साथ पूरे समाज का उत्सव हो जाता है |

जन्म-संस्कार और पारिवारिक उत्सव-

राजस्थान में जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों के लिए विशिष्ट गीत हैं – जैसे- पुत्र जन्मोत्सव याने बच्चे के जन्म पर 'जच्चा' के गीत होते हैं जैसे - किसी के 'बेटा' होता है तो *'पिलो गाणों'* बच्चे के पहले स्नान व 'जलवा' (कुंवा पूजन) पर बोला जाता है-

'दिल्ली शहर सू सब्बा पोत मंगावो जी |
दो हाथ अकी साग्ज आगेसकी बिसा गाडा मारू जी |
पिलो रंगाओंजी, रंगयो रंगायो सब्बा हुयो ह तियारी जी |

तो जावेकी जाल जो गाडा मारूजी....पीलो रंगाओं जी |
ग्ल्यो ह ग्लायो सायबा हुयो ह तयारी जी |
तो जच्चा क महला म पुह्चावो गाडा मारुजी..... पिलो रंगाओं जी |'
(मौखिक परंपरा से संकलित)

इस गीत में माँ की प्रशंसा और शिशु के स्वास्थ्य व उज्ज्वल भविष्य की कामना होती है। इसी रिवाज में *'सौंठ गीत', 'अजवान गीत', 'बच्चे की नाल गीत', 'चूड़ा गीत', 'घुघरी गीत'* आदि गीत होते हैं, जो अलग-अलग समय पर गाये जाते हैं |

विवाह गीत :

लोकगीतों का सबसे बड़ा अवसर होता है। विवाह गीत लोकगीतों का सबसे बड़ा अवसर होता है। इसमें 'सगाई', 'बन्ना-बन्नी', 'हल्दी', 'जला' (वर की बारात देखने जाते समय), 'मेल', 'पीला चावल', 'मायरा' और 'विदाई' के गीत प्रमुख हैं। जब पति प्रदेश चला जाता है, तो विरह की वेदना व्यक्त करने के लिए 'कुरजां'(पक्षी), 'हिचकी', और 'झोरावा' जैसे गीत गाए जाते हैं | बन्ना के घर में गाये जाने वाले गीत में बन्नी की श्रृंगारिकता को अलग-अलग उपमाओं को व्यक्त करता हुआ यह गीत है –

'मेरी हरी हरी चूड़ियों से बांहे भरी |
दादी देओ ना सुहाग बन्नी कब की खड़ी |
ऐ सुहाग देगा राम जोड़ी हद की बनी |
तेरे माथे में सिन्दूर मांग मोतियां जड़ी |'[2]

राम की तरह सीता को पाने के लिये जैसे धनुष उठाना पड़ा था ठीक उसी प्रकार यहाँ बन्ने को भी कड़े प्रयासों से सीता को पाना होगा और राम की तरह उसे सीता का पूरे जीवन भर साथ देना होगा | इस गीत में इस वचन को दर्शाया गया है –

'आज म्हारे बन्ने ने धनुष उठा लियो |
बाबा संग जाइयो रे बन्ना ताऊ संग जाइयो |
तोड़ धनुष सिया जानकी न ब्याह लाइयो |
आज हमारे बन्ने ने धनुष उठा लियो |'[3]

इस प्रकार के अनेक गीत होते होते हैं विभिन्न रस्मों पर, जिसमें बन्ना-बन्नी को सीख भी मिल जाती है और संस्कार भी कि उसे ससुराल में क्या करना है, कैसे रहना है, कैसे परिवार में बड़ों का मान रखना है आदि का वर्णन लोक गीतों में दिखाई देता है |

सांस्कृतिक पर्व-त्यौहार वाले गीत :

राजस्थानी त्योहारों में गीतों की अपनी अलग पहचान है | गणगौर नामक त्यौहार विशेष है | राजस्थान में कुंआरी कन्या, विवाहिता द्वारा 16 दिन गणगौर की पूजा की जाती है | और 16 दिन बाद गणगौर को विसर्जित कर देते हैं | सभी गणगौर के लोकगीत इसी अवसर पर गाए जाते हैं, जैसे- 'दूब ल्या न' का गीत, 'सबेरा' का गीत, 'पानी प्यान' का गीत, 'रात' का गीत आदि सभी गाये जाते हैं, जैसे –

'बाड़ी वाला बाड़ी खोल,
म्हे आई हाँ दूब न |
दूब ह दूब डे नाही हिंडो घाल दे,
कुण्या जीरी बेटी हो,
कुण्या जीरी भैन हो |'

और

'ऊँचो चंवरो चोंकुटो,
जल यमुनारो नीर मंगावो जी |
जठ सूरजमल साड्या,
बाई रोवा न गोर पूजावो जी |
गोर पूजतां यूँ कब,
साय बाय जोड़ी इबछल राखो जी...|' (मौखिक परंपरा से संकलित)

इस प्रकार के अनेक गीतों को गाया जाता है, जिनमें शिव-पार्वती की जोड़ी के समान गणगौर को पूजनेवालियों की भी जोड़ी बनी रहे, इसी कामना के साथ गणगौर पूजा जाता है | राजस्थान में तीज बहुत ही धूम-धाम से मनाई जाती है| तीज में झूला झूलते समय और श्रावण मास में विशेष गीत गाए जाते हैं।

फ़ाग के महीने में पुरुषों के द्वारा 'डफ' के साथ होली के कुछ दिनों पहले ही 'धमाल' गीत गाए जाते हैं। जैसे-

'फागण आयो रे, म्हाने फागणियो सुहावे,
सखी सहेल्यां भेली होकर, चंग पर थाप लगावे।
म्हारो बीरो सा लाया चूनरी,
म्हारा साहिब लाया है गुलाल,
खेलण चालां चौक में,
म्हारो मनड़ो हरसावे।' (मौखिक परंपरा से संकलित)

फ़ाग के मस्ती भरे इस प्रकार के अनेक गीत होते हैं |

चौमासा और बारिश के स्वागत में 'पणिहारी' जैसे गीत गाए जाते हैं। राजस्थान धार का प्रदेश कहा जाता है, वहां पानी की कमी होने से घर की स्त्रियाँ पानी भरने को कई कोस दूर जाकर पानी भर लाती हैं, उसे ही 'पणिहारी' कहा जाता है | गाँव की अनेक स्त्रियाँ जमा होकर कुंए के पास जाती हैं और आपस में प्रेम भरी बात कर, अपने प्रियतम की भी बात अपनी सखियों को बताती हैं | इन गीतों में पानी के महत्व और वर्षा ऋतु की खुशी का वर्णन होता है। इन गीतों में अक्सर एक विवाहिता नारी के अपने पति के प्रति पातिव्रत्य धर्म की परीक्षा और उसकी अडिगता का चित्रण भी होता है। उनके पति कमाने के लिये विदेश या पूरब की नौकरी के लिये चले जाते हैं |

'काली कल्याण उमाती ए पणिहारी जी ए लो |
ओ मिगा नैनी जी ए लो....|
सात सहेलियाँ रो झूलानों ए पनिहारी जी ए लो....|'[4]

तो वहीं पणिहारी जाते समय घड़े के नीचे और सिर के बीच रखी जाने वाली 'ईदुणी' के गीत गाती हैं | पणिहारी स्त्रियों की ईदुणी भिन्न-भिन्न रंग, कलात्मकता लिये हुए और कीमती रहती है| इस गीत में ईदुणी खो जाती है, उससे खोजने के लिये राजस्थानी स्त्री अपने पति और सखियों से दुख जताते हुए कहती है कि 'म्हारी सवा लाख की लूग गमगी ईदुणी' |

ग्रामीण जीवन की दिनचर्या के गीत :

राजस्थानी ग्रामीण जीवन की दिनचर्या के गीत भी संगीत से जुड़े हैं | किसान हल जोतते समय 'तेजा गायन' करते हैं ताकि थकान कम हो। 'जीरो गीत' में जीरा की खेती करते समय आनेवाली कठिनाइयों को देखते हुए राजस्थानी स्त्री अपने पति को जीरे की खेती करने को मना करती हुई कहती है कि -

'मत बाओ म्हारा परन्या जीरो |
ओ जीरो जीव रो बैरी रे |
मत बाओ म्हारा परन्या जीरो |' (मौखिक परंपरा से संकलित)

तो वहीँ 'चिरमी' एक पारिवारिक और भावनात्मक गीत है। 'चिरमी गीत' में घर की बहू चिरमी के पौधे को देख ससुराल में आने-जानेवाली खुशियों-दुखों को उससे कह-बतलाती हुई अपने पीहर की याद करती है| ससुराल में रह रही एक नवविवाहिता अपने पीहर (मायके) की याद में चिरमी के पौधे को संबोधित करती है और अपने पिता या भाई के आने का इंतज़ार करती है –

'चिरमी बाबोसा री लाडली सा |
चिरमी बाबोसा री लाडली सा |
या तो दौड़ी दौड़ी पीहर जाए,
वारि जाऊं चिरमी ने..|'[5]

तो वहीं 'राजस्थान का जहाज' कहलानेवाले ऊंट के विभिन्न श्रृंगार, सज्जा-धज्जा जो हमें दिखाई देती है, उसे भी तयार करवाया जाता है | घर की स्त्री उसके लिये आकर्षक गोरबंद बनाए रखती है | ताकि वह सभी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सके | ऊंट के श्रृंगार के समय प्रसिद्ध 'गोरबंद' गीत गाया जाता है। 'गोरबंद' ऊंट के गले का एक सुंदर आभूषण होता है। इस गीत में

ऊंट को सजाने के लिए गोरबंद गूंथने की प्रक्रिया भी जारी रहती है | घर के भिन्न-भिन्न काम करती हुए स्त्रियाँ अपने हाथों से गोरबंद बनाती हैं और उसके सौंदर्य का वर्णन करते हुए गाती हैं-

'लड़ली लूमा झूमा ऐ, लड़ली लूमा झूमा ऐ |
म्हारो गोरबंद नखराळो, आलीजा म्हारो गोरबंद नखरालो |
गायां ने चरावती गोरबंद गूंथियो,
भैंस्या ने चरावती मैं पोया पोया राज,
मैं पोया पोया राज, म्हारो गोरबंद नखराळो,
आलीजा म्हारो गोरबंद नखरालो, ओ लड़ली लूमा झूमा ऐ |'[6]

राजस्थानी संस्कृति के भक्ति गीत :

राजस्थान के गाँवों में लोक देवताओं की आराधना में 'हरजस' और 'भजन' गाए जाते हैं। रामदेव जी और जीण माता के गीत गाये जाते हैं। जीण माता के गीत के बोल हैं – 'ऊँच-ऊँच पर्वत जीण माता भवरा की रानी, जात कोयल बोल....' और कानूड़ा लाल घडलो का गीत है -

'कानूड़ा लाल घडलो म्हारो भर दे रे | - २
भर दे, ऊंचा दे, सर पर धर दे रे | - २
कानूड़ा लाल घडलो म्हारो भर दे रे |
तू मत जाणी कान्हा, आई मैं अकेली,
सात सहेलियां म्हारे संग छे रे |
कानूड़ा लाल घडलो म्हारो भर दे रे |'[7]

विरह के गीत :

राजस्थान में पति पैसा कमाने के लिये परदेश जाने पर पत्नी की विरह व्यथा का वर्णन भिन्न-भिन्न गीतों में दिखाई देता है| पत्नी की विरह कथा सुनने वाला कोई नहीं रहता तो वह अपने विरह को कुरजां पक्षी को व्यथा-गीत के रूप में बताती है | विरहिणी महिला कुरजां पक्षी के माध्यम से अपने दूर स्थित पति को प्रेम संदेश भेजती है और अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए गीत गाती है-

'उड़ उड़ रे, उड़ उड़ रे |
उड़ उड़ रे म्हारा काळा रे कागला |
कद म्हारा पीवजी घर आवे – २
खीर खांड रा जीमण जीमऊ - २
सोने में चौंच मंढ़ाऊं कागा,
जद म्हारा पीवजी घर आवे रे आवे |
कद म्हारा पीवजी घर आवे |' (मौखिक परंपरा से संकलित)

राजस्थान में स्त्रियों में अशिक्षा का स्तर अधिक होने से उसे अपने पति को पत्र लिखने के लिये भी 'डाकिया' की ज़रूरत रहती है | डाकिये को मनुहार करती हुई वह कहती है - 'डाकिया रे म्हारो कागज़ लिख दे, एक संदेशों म्हारा सायब न' | और वहीं चाँद व आधी रात होने पर भी उसके पति के इंतजार में बैठी गीत गाती है -

'चाँद चढ्यो गिगनार किरप्या, ढल आई आधी रात पीव जी |,
अब तो घरां पधार, मारुणी थारी बिलखे छे जी बिलखे छे |,
हाथां मेहँदी राचणी कोई, नैणा काजल सारयो जी,
ले दिवलो चढ़गी चौबारे, मरुवन पलंग संवारयो जी,
बैठी मनड़ो गौरी का, आया नहीं भरतार,
मारुणी थारी बिलखे छे जी बिलखे छे |' (मौखिक परंपरा से संकलित)

प्रकृति के अनेक प्रतीकों को लेकर विरह गीत गाये जाते हैं जैसे - चाँद की ज्यों-ज्यों रोशनी बढ़ती जाति है त्यों-त्यों विरह अग्नि बढ़ती जाती है | 'केसरिया बालम' राजस्थान का सबसे प्रसिद्ध लोकगीत है, जो 'मांड' शैली में गाया जाता है

| केसरिया बालम गीत में एक विरहिणी नायिका अपने परदेश गए पति (बालम) के लौटने की प्रतीक्षा कर रही है और उसे ससम्मान अपने देश लौटने का निमंत्रण देती है – 'केसरिया बालम आओ म्हारा देश, पधारो म्हारे देश'| 'हिचकी' यह मुख्य रूप से मेवात और जैसलमेर क्षेत्र में गाया जाता है। जब किसी को हिचकी आती है, तो लोक मान्यता के अनुसार उसे कोई याद कर रहा होता है। यह गीत किसी प्रियजन की याद में आने वाली हिचकी के माध्यम से विरह और प्रेम को दर्शाता है- 'आव हिचकी बैरन आव हिचकी...'

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कहें तो राजस्थान की लोक संस्कृति विस्तारित स्वरूप की है | लोकगीतों की बात करें तो मानव-जीवन के की महत्वपूर्ण घटनाओं के साथ ही दैन्दिन जीवन की छोटी-छोटीबातों को, भाव-भंगिमाओं को गीतों में ढाला गया है | वह चाहे बच्चे का जन्म, विवाह की प्रत्येक रस्म जैसे- बन्ना-बन्नी, हल्दी, मायरा, तोरण, घोड़ी चढ़ना, बिदाई गीत आदि हो | यहाँ तक कि जन-जीवन में घर-निर्माण, कोई भी शुभ काम के अवसर पर भी गीतों की रचना हुई है| कहने का तात्पर्य है कि जन्म से लेकर मृत्यु तक के इस लंबे सफर में आने वाले प्रत्येक मोड़ पर जो भी क्षण आते हैं, उनको गीतों के माध्यम से राजस्थान के लोकगीतों में पिरोया गया है | "राजस्थानी लोकनाट्यों में भवाई, ख्याल आदि में लोक गीतों का प्रयोग संगीत और नृत्य के साथ किया जाता है। 'माच' राजस्थान में 'ख्याल' के रूप में प्रचलित है...'ख्याल माच का ढोला मारूणी, असली माच का सेठ-सेठानी |"[8] लोक नाट्यों लोक गीतों को संगीत और नृत्यके साथ प्रस्तुत किया जाता है, जिसके माध्यम से लोकगाथाओं को लोक नाट्यों के माध्यम से जानने का मौका भी आज की पीढ़ी को मिला है | लोक नाट्यों में शामिल लोक गीतों के साथ लोक नृत्यों और लोक संगीत के माध्यम से राजस्थान की संस्कृति को एक भिन्न पहचान मिली है |

संदर्भ-सूत्र :

1 शर्मा रामविलास, आचार्य रामचनद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २०११, पृ. क्र. 30)
2बन्नीकेगीतhttps://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%AC%E0%A4%A8%E0%A5%80_%E0%A4%95%E0%A5%87_%E0%A4%97%E0%A5%80%E0%A4%A4_/_3_/_%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%9C%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%A5%E0%A4%BE%E0%A4%A8%E0%A5%80)
3 बन्ना के गीत https://kavitakosh.org
4 https://share.google/ROqTwhPglJOHuk9qn
5https://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%9A%E0%A4%BF%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%AE%E0%A5%80_/_%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%9C%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%A5%E0%A4%BE%E0%A4%A8%E0%A5%80
6 https://superhitmarvadisongs.blogspot.com/p/lok-geet.html#google_vignette
7 https://superhitmarvadisongs.blogspot.com/2016/04/kanuda-lal-ghadlo-mharo-bhar-de.html
8 खां जावेद अख्तर, हिंदी रंगमंच की लोकधारा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 98

*****

कुँअर बेचैन की हिंदी गजलों में प्रेम और विरह भाव

डॉ.सागर रघुनाथ कांबळे
श्री शिव –शाहू महाविद्यालय ,सरूड
sagarkam24@gmail.com
दूरभाष- 9545330761

शोध सारांश :

अस्सी के दशक के बाद के हिंदी गजलकारों ने प्रेम,लौकिक प्रेम,विरह से संबधित गजले लिखी है | उर्दू –फारसी के गजलकारों ने संयोग श्रृंगार से अधिक वियोग श्रृंगार का चित्रण किया है | लौकिक प्रेम में नायक और नायिका एक दुसरे को रुठना –मनांना ,सौंदर्य का वर्णन आदि का निरुपण करते है | वही अलौकिक प्रेम में आत्मा कि परमात्मा से मिलन की इच्छा ,भौतिक संसार की नश्वरता के प्रति उदासीनता ,परमसत्ता को जानने कि चाहत आदि का वर्णन करते हैं | उनमें प्रमुख गजलकार कुँअर बेचैन जी है | जिनके गजलों में प्रमुखता से प्रेम और विरह भाव उजागर होता है |

बीज शब्द :गजल, प्रेम, विरह आदि |

भूमिका :

प्रेम मानवीय जीवन का शाश्वत सत्य है | प्रेम गजल का प्रकृत विषय रहा है | गजल विधा लंबे समय तक सौंदर्य और प्रेम के विभिन्न स्थितियो का नाम रही है | इसमे सौंदर्य और प्रेम की कई दशाओं को प्रस्तुत किया जाता है गजल विधा को प्रेम कि अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम माना जाता है | जब से दुनिया बनी है और जब तक रहेगी यह प्रेम और विरह का विषय रहेगा | प्रेम एक ऐसी भावना है जिसका सम्बन्ध स्नेह ,आत्मीयता ,लगाव से होता है |मन कि सबसे कोमल भावना प्रेम है |

अस्सी के दशक के बाद के हिंदी गजलकारों ने लौकिक और अलौकिक दोनों रुपों की गजले लिखी गई | प्रेम के डॉ पक्ष होते है – संयोग और वियोग | हिंदी गजलों में व्यावहारिक जीवन में संयोग ही आनंद ही पुर्नानुभूति कराता,किंतु काव्य में वियोग श्रुंगार का महत्त्व अधिक मांना जाता है |गजलो के लिये प्रेम का अधिक महत्व है | गजलो के माध्यम से आशिक और माशूक का वार्तालाप एव उनके प्रेमाभिव्यक्ति शुरू से ही मिलती है | गजलकारों ने,शायरों ने इश्क ,मोहब्बत्त ,तनहाई ,रूसवाई ,मिलन,जुदाई, हुस्न आदि शब्दों का उपयोग कर गजलों की दुनिया में मशहूर हुये हैं |

जब कोई व्यक्ति किसी के प्रति आसक्त होता है ,तो उसके पास जाने कि अभिलाषा होती है | हृदय जिसके प्रति आकर्षित होता है, तो वह चाहता है कि, उसके पास रहकर कूछ समय बिताए | उसके ख्याल से ही कडी धूप में भी छाया लगने लगती है –

"जब से नजरों में कोई समाया लगा
में भी अपने को पराया लगा
जिंदगी की चिकलती कडी धूप में
जब खयाल आय उनका तो साया लगा |"[1]

एक अन्य शेर –

"तेरे घर से मेरे घर तक खुशबू कि लकीर
खींच दी जिसने उसी का नाम शायद प्यार है |"[2]

प्रेम समर्पण है | प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिये अपना सब कूछ अर्पित करने के लिये तत्पर रहता है | उसे समर्पण में बहुत अधिक आंनंद मिलता है | सौंदर्य और यौवन दोनों का मिश्रण प्रेम को और फलीभूत करता है | कुँअर बेचैन जी के अनुसार –

"जो तु हंसी है तो हर इक अधर पै रहना सीख

अगर है अश्क तो औरों के गम में बहना सीख |"[3]

दरबारी प्रेम से निकलकर जीवन की संवेदना पर लिखी गजल –

"दो दिलों के दर्मियान दिवार –सा अंतर ना फेंक
चहचहाती बुलबुलों पर विषबुझे खंजर न फेंक
हो सके तो चल किसी आरजू के साथ –साथ
मुस्कुराती जिंदगी पर मौत का मंजर न फेंक |"[4]

श्रृंगार वर्णन में प्रिय के सौंदर्य का विशेष महत्व है | काली जुल्फों के लिये अंधेरी रात को उपमान बनाना ये उपमान पहले से चला आ रहा है | नायक अपने गजल में ही नायिका के प्रतिबिंब को देखता है | वह अपनी नायिका को याद करता है | कुँअर बेचैन प्रेमिका को दोनों होंठ को गजल के मिसरे तथा खुले केश को गजल कि दौलत मानते है | प्रेमिका के मस्त आंखे गजल के भाव है –

"बताए हम तुम्हारे होठ क्या है |
ए दो मिसरे ,रुमानी गजल के ,
तुम्हारी सांस कि खुशबू ,को छूकर |
खुले कुंतल किसी धानी गजल के |"[5]

विरह प्रेम की कसौटी है | यह एक तडपन है |प्रिय की याद में मन खोया हुआ है | उसे यह भी ज्ञात नही कि इंतजार की कितनी सीमा है | अंत में उसे आंसू ही सुकून देते है | प्रियतमा की याद में प्रेमी का दिल सुलगता रहता है | आंसू बहते रहते है –

"तेरी यादों में सुलगता रहा दिल चंदन सा
जब प्रिये अश्क लगा ,शहद की बुंदे पी हैं
आती है ,मुझको भिगोती है ,चली जाती है |
उसकी यादे भी समंदर के तरंगों –सी |"[6]

हिंदी गजलों में विरह को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है | विरह कि पवित्रता के अनुसार विराहानुभूति को अभिव्यक्त किया गया हैं | कुँअर बेचैन ने अपनी प्रेमानुभूति को बडी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है | नायक और नायिका कि मिलने की संभावना जहा खत्म हो जाती है वह करूणजनित विरह की श्रेणी में आता है | इसमें प्रेमी –प्रेमिका में से किसी एक की मृत्यू हो जाती है | जिस कारण प्रेमी को जींना मुश्कील हो जाता है | मिलने की आस खत्म हो जाती है | कुँअर बेचैन ने इसकी मार्मिक अभिव्यक्ति की है –

"हम द्वार पर खडे थे पत्रों की प्रतिक्षा में
पर तार हाथ आया प्रीति के निधन का |"[7]

कहा प्रिय के खत का इंतजार हो रहा था उसी समय उनकी मौत की खबर मिली | इससे बडा दुख क्या हो सकता है | कुँअर बेचैन के अनुसार दुख की ऐसी करुण अवस्था में आंसूओं का बह जाना अच्छा होता है |

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते है कि हिंदी गजल में प्रेम के विविध रंग देखने को मिलते है | गजल प्रेम की अभिव्यक्ति का जितना अच्छा माध्यम हो सकती है ,शायद उतना अन्य विधा नही | गजल मूलत:एक ऐसा काव्यरूप है जिसका केंद्रीय विषय प्रेम है | इसलिये गजल को प्रेम कि अभिव्यक्ति का प्रधान माध्यम कहा जाता है |

निष्कर्ष :

गजलकार कुँअर बेचैन जी ने अपनी गजलों में संयोग पक्ष से ज्यादा वियोग पक्ष पर ध्यान दिया है | विरह के व्याकूल हृदय,प्रेमिका की बेवफाई आदि की अभिव्यक्ति हुई हैं | प्रेम को वासना न मानकर मन की समर्पित भावना ही माना है | इस प्रकार

हिंदी गजल साहित्य में प्रेमविषयक गजले अनुपात की दृष्टि से कम होती हुई भी लगबग सभी पक्षो जैसे श्रृंगार,प्रेम ,वियोग सभी पक्षो,प्रेम के सभी पक्षो को अभिव्यक्त किया है |

संदर्भ ग्रंथ :

1.डॉ.बेचैन कुँअर, रस्सिया पानी की , पृ .22
2. डॉ. बेचैन कुँअर, आन्धियो धीरे चलों, पृ.49
3. डॉ. बेचैन कुँअर, आन्धियो धीरे चलों , पृ.47
4. डॉ. बेचैन कुँअर, पत्थर की बांसुरी , पृ.34
5. डॉ. बेचैन कुँअर, कोई आवाज देता है ,पृ.93
6. डॉ. बेचैन कुँअर, रस्सिया पानी की ,पृ .45
7. डॉ. बेचैन कुँअर, पत्थर की बांसुरी ,पृ.39

*****

हिंदी फिल्मी गीत: एक विवेचन

इगडे शीतल कचरू
बलभीम महाविद्यालय, बीड.
ई-मेल: shitaligade@gmail.com
चलभाष- 9689632181

प्रो. डॉ. आबासाहेब हरिभाऊ राठोड
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष तथा शोध-निर्देशक हिंदी विभाग
सौ. के. एस. के. महाविद्यालय, बीड- 43112
ई-मेल: abasahebrathod123@gmail.com
चलभाष: 9422721163

शोधसार:

प्रकृति की हर चीज में संगीत बसा है। बच्चों से लेकर बड़ों तक, पशु से लेकर पक्षियों तक सभी को संगीत पसंद होता है। गीत एवं संगीत भारतीय संस्कृति की पहचान है। चाहे कोई भी कार्यक्रम हो सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शादी-ब्याह, तीज-त्यौहार या अन्य कोई भी अवसर गीत के बिना अधूरा ही होता है। हिंदी फिल्मी गीतों की अगर बात करें तो यह गीत सभी को पसंद है। इनमें जीवन के हर एक पहलू के दर्शन होते हैं। गीत एवं संगीत के कारण हिंदी सिनेमा की दुनिया में एक अलग पहचान बनी है। इन गीतों ने अपने माध्यम से मनोरंजन के साथ प्रगतिशील चेतना को अभिव्यक्त किया है। मानवता को समर्पित इन गीतों में नारी, मजदूर, किसान और गरीबी की व्यथा को फिल्मी गीतों में ढाला है। निराशावादी जीवन में आशा की किरण हिंदी फिल्मी गीत निर्माण करते हैं।

बीज शब्द: हिंदी फिल्मी गीत, नारी, साहित्य, आत्मा, प्रकृति, भारतीय संस्कृति, समाज, देशभक्ति, राष्ट्रप्रेम।

प्रस्तावना:

हिंदी फ़िल्मी गीत भारतीय संगीत का अभिन्न अंग हैं, जहाँ फ़िल्मी गीत कहानी को आगे बढ़ाते और भावनाओं को व्यक्त करते हुए एक अलग साहित्यिक और भावनात्मक स्तर जोड़ती है। इसने समय के साथ अपनी लोकप्रियता और प्रासंगिकता को बनाए रखा है। हिंदी फिल्मों का गीत और संगीत भारतीय संस्कृति की आत्मा है। कई दशकों से ये गीत न केवल फिल्म की कहानी को संवेदनशीलता तथा भावनात्मक गहराई देते रहे हैं, बल्कि यह भारतीय जनमानस के भाव-बंधनों को भी मजबूत करते हैं। हिंदी फिल्मी गीत जीवन की हर स्थिति, प्रेम से लेकर विरह तक, उत्सवों से लेकर वीरता तक की अभिव्यक्ति का माध्यम बने हैं। हिंदी फिल्म गीतों का विकास भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक चेतना की एक सजीव यात्रा है। इन गीतों ने न केवल मनोरंजन के साधन के रूप में, बल्कि जनता की भावनाओं, आकांक्षाओं और संघर्षों के प्रवक्ता के रूप में भी कार्य किया है। यह यात्रा केवल संगीत की नहीं, बल्कि भारतीय जनमानस, समाज और साहित्य की चेतना की भी कहानी है।

शोध आलेख का विश्लेषण:

हिंदी फिल्म गीतों ने जहां आम जनता की संवेदनाओं को स्वर दिया, वहीं साहित्यिक अभिव्यक्ति को लोकप्रिय मंच भी प्रदान किया। हिंदी फिल्मी गीतों के संदर्भ में डॉ. जयश्री वाडेकर लिखती है- "हिंदी फिल्मी गीत भारतीय जनमानस की आत्मा के स्वर हैं। वे केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि समाज की भावनाओं, मूल्यों, संघर्षों और सांस्कृतिक प्रवाह के संवाहक भी है। हिंदी फिल्म उद्योग के विकास के साथ-साथ फिल्मी गीतों ने भी एक लंबी यात्रा तय की है- जिसमें साहित्य, संगीत, समाज और तकनीक- सभी का योगदान रहा है।"[1]

सन् 1931 में बनी पहली हिंदी सवाक फिल्म 'आलम आरा' के साथ गीत संगीत ने फिल्म जगत में प्रवेश किया। उस काल में गीत मुख्यत: शास्त्रीय तथा पारंपारिक संगीत की छाया में थे। फिल्मी गीतकारों ने फिल्मों की पटकथाओं के अनुरूप संगीत की ऐसी रचनाओं का सृजन किया, जो दर्शकों की भावनाओं के साथ सीधे जुड़ी। उस समय के गीतों में गति धीमी थी, बोल बहुत भावपूर्ण और साहित्यिक थे। समय के साथ फिल्मी गीतों में विविधता आई और लोक, शास्त्रीय तथा फोक संगीत के मिश्रण से हिंदी फिल्मों के गीतों ने लोकप्रियता पाई। जैसे-जैसे समय बीता, समय के साथ समाज बदला, फिल्मी गीतों में नई विषय-वस्तु, भाषा-शैली आई। प्रेम, विरह, मातृभक्ति, हास्य आदि विषय को लेकर गीतों का निर्माण किया गया जो कि एक सराहनीय रहा है। सन् 1950 से सन् 1980 के दशक को हिंदी फिल्म संगीत का स्वर्ण युग माना जाता है जिसमें मुकेश, किशोर कुमार, लता मंगेशकर, मोहम्मद रफ़ी जैसे संगीतकारों ने अभूतपूर्व योगदान दिया। इस काल के गीत गहराई, अर्थ और रागात्मकता में विशिष्ट थे। उसके बाद के वर्षों में आधुनिकता के साथ संगीत में भी बदलाव आया और गीत आम मानस के प्रति बाजार के मूल्य आधारित होते गए। जीवन के हर पहलू को हिंदी फिल्मी गीत अभिव्यक्ति देता है, जैसे कि जिंदगी के हर मोड पर अकेला इन्सान कुछ नहीं

कर सकता, उसे किसी के साथ हमसफर की जरूरत पड़ती है। जीवन को सही तरीके से जीने के लिए मनुष्य को समाज की आवश्यकता पड़ती है। समाज में रहते हुए उसे दूसरों से मदद लेनी भी पड़ती है और दूसरों को सहयोग देना भी पड़ता है। भीड़ का नाम समाज नहीं है। समाज अनुशासन पर आधारित है और इसमें लोगों के कुछ निश्चित उद्देश्य भी होते हैं। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लोगों में सामूहिकता की भावना होती है। सामूहिकता की भावना के बल पर ही समाज और देश प्रगति के रास्ते पर अग्रेसर होता है। इसी भावना को व्यक्त करता हुआ एक गीत इस प्रकार है-

"साथी हाथ बढ़ाना...
एक अकेला थक जाएगा
मिलकर बोझ उठाना
हम मेहनत वालों ने जब भी
मिलकर कदम बढ़ाया
सागर ने रस्ता छोड़ा
परबत ने सीस झुकाया
फौलादी हैं सीने अपने,
फौलादी हैं बाहें
हम चाहे तो पैदा कर दें
चट्टानों में राहें।"[2]

प्रस्तुत गीत में यह बताने का प्रयास किया गया है कि मिलकर कार्य करने से कठिन से कठिन काम भी बहुत सरल हो जाता है। भारत में प्राचीन काल में वर्ण व्यवस्था को कार्य के अनुसार चार वर्णों में बांटा गया था। लेकिन कालांतर में समाज विभिन्न जातियों में बट गया। समाज के कुछ शातिर एवं स्वार्थी लोगों ने अपने स्वार्थ की खातिर जातियों को उच्च और नीच दो वर्गों में बांट दिया। व्यक्ति की पहचान उसके कार्य की बजाय उसके कुल से होने लगी। तथाकथित नीची जातियों के साथ छुआछूत के नाम पर भेदभाव होने लगा और उनको समाज में हीन भावना से देखा जाने लगा। हीन समझी जाने वाली जातियों का सामाजिक बहिष्कार के साथ-साथ आर्थिक शोषण भी होने लगा। जाति व्यवस्था के कारण मनुष्य के श्रम का कोई मूल्य नहीं रहा, बल्कि उसकी जाति के आधार पर ही उसके कार्य का मूल्यांकन किया गया। इस सत्यता को अभिव्यक्त करता हुआ एक गीत जो कि शैलेन्द्र ने लिखा है, जो बूट पॉलिश (1954) इस फिल्म का है, गीत के बोल इस प्रकार है-

"पंडित जी मंतर पढ़ते हैं
वह गंगा जी नहलाते हैं
हम पेट का मंतर पढ़ते हैं
जूतर का मुंह चमकाते हैं,
पंडीत की पांच चवन्नी है
अपनी तो एक इकन्नी है
भेदभाव ये कैसा है
जब सबका प्यारा पैसा है"[3]

शुरूआती दौर से सिनेमा और संगीत का एक ही मकसद था और वह था- धन कमाना। लेकिन समाज को सही दिशा देने वाले जागरूक फिल्मकारों, निर्देशकों, लेखकों एवं गीतकारों का अपना दृष्टिकोन बदलता रहा है। जिससे समाज में एक बदलाव लाने का प्रयास किया गया। इनमें गुलज़ार, शैलेन्द्र, साहिर लुधियानवी, प्रदीप, नीरज, मजरुह सुलतानपुरी, आनंद बक्षी, शकील, जैसे कई ऐसे दिग्गजों ने मनोरंजन के साथ प्रगतिशील चेतना को भी अपने गीतों में स्थान दिया। समाज में व्याप्त लिंग, धर्म, जाति व्यवस्था पर इन्होंने अपने गीतों के माध्यम से गहरा प्रहार किया है। इन्होंने फिल्मों को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया ताकि समाज की बुराइयों को जड़ से मिटाया जा सकें। आधुनिक युग में प्रगति शब्द के अनेक अर्थ दिखाई देते है। जिनका प्रयोग अब किया जा रहा है, जिसका अर्थ है- आगे बढ़ना। प्रगति शब्द उन्नति का पर्याय है। महान उपन्यासकार प्रेमचंद ने उन्नति को परिभाषित करते हुए लिखा है- "इससे हमारा तात्पर्य उस स्थिति से है, जिससे हम में दृढ़ता और कर्म शक्ति उत्पन्न हो, जिससे हमें

अपनी दुख की अवस्था की अनुभूति हो, हम देखें कि किन अंतर्बाह्य कारणों से हम इस निर्जीविता और ऱ्हास की अवस्था को पहुंच गए और उन्हें दूर करने की कोशिश करें।"[4]

परिवर्तन सृष्टि का नियम है, प्रकृति की हर वस्तु परिवर्तनशील है, जिससे प्रकृति तथा मनुष्य की प्रगति होती रहती है। प्रगति शब्द में निहित गति महज शारीरिक गति को ही इंगित नहीं करती, बल्कि यह मानसिक गति को भी दर्शाती है। आदिम सभ्यता के दौर से लेकर आधुनिक इंटरनेट युग का इतिहास प्रगति का जीवंत दस्तावेज है। प्रगतिशील चेतना से अभिप्राय उस विचारधारा से है जो समाज की प्रगति में हितकारक है। प्रगतिशील चेतना को अक्सर प्रगतिशीलता के पर्याय में भी प्रयोग किया जाता है। अर्थ की दृष्टि से इन दोनों में कोई अंतर नहीं है। यह ऐसी विचारधारा है जो मनुष्य को जाति, धर्म और देश की सीमाओं से परे हटकर मनुष्य पर किए जाने वाले सभी अत्याचारों का विरोध करती है। प्रगतिशील व्यक्ति का दृष्टिकोन व्यष्टिपरक नहिं अपितु समष्टिपरक होता है, क्योंकि वह इस पूरी धरा को अपना परिवार समझता है और इस धरा के प्रत्येक व्यक्ति को अपना बंधु-सखा समझता है। डॉ. दोडडा बाबू शेषु ने प्रगतिशीलता की परिभाषा देते हुए लिखा है- "परिवर्तन या गतिमान से जुड़ा हुआ शब्द है प्रगतिशीलता। परंपरागत रूप से आनेवाली सभी विसंगतियों को तोड़कर एक नई जीवन पध्दति, नये समाज और नयी जमीन का प्रतिष्ठान करनेवाली इच्छा है प्रगतिशीलता"[5] हिंदी फिल्मी गीतों का विकास केवल एक संगीतमय यात्रा नहीं, बल्कि भारतीय समाज की सांस्कृतिक, राजनीतिक, भाषिक और भावनात्मक परिवर्तनशीलता का दर्पण है। गीतों ने जहां मनोरंजन प्रदान किया, वहीं जनता के भीतर करुणा, प्रेम, संघर्ष और राष्ट्रप्रेम का संचार भी किया। आज जब तकनीक, वैश्वीकरण और डिजिटलता के दौर में हम हैं, तब भी एक मार्मिक गीत करोड़ों दिलों को एकसाथ जोड़ सकता है-यहीं हिंदी फिल्मी गीतों की शक्ति है।

आधुनिक युग में अमीरी और गरीबी के बीच की सीमारेखा बहुत ज्यादा लंबी हो गई है। उत्पादन के ज्यादातर साधनों पर पूंजीपतियों का एकाधिकार हैं। सरकार द्वारा नीतियां भी पूंजीपतयों के मुनाफ़े को केंद्र में रखकर बनाई जाती हैं। गरीब के लिए पेट पालना ही दुर्भर हो गया हैं, बच्चों को अच्छी तालिम दिलाकर उच्च पदों पर काबिज करना तो उसके बलबूते से बाहर है। इस संदर्भ में साहिर लुधियानवी ने एक गीत में सामाजिक सवाल को उठाया है-

"लेकिन इस भीख की दौलत से
कितने बच्चे पढ़ सकते हैं
इल्म और अदब की मंजिल के
कितने जीने चढ़ सकते हैं
दौलत की कमी ऐसी तो नहीं,
फिर भी गुरबत का राज है क्यों
सिक्के तो करोड़ों ढल ढल कर
टकसाल से बाहर आते हैं
किन ग़ारों में खो जाते हैं,
किन परदों में छुप जाते हैं"[6]

हिंदी फिल्मी गीतों में विविध पक्षों को लेकर मनुष्य के भावों को अभिव्यक्त किया है। जैसे कि, सामाजिक, पारिवारिक, देशप्रेम, जीवन दर्शन विषयक पक्ष तथा स्त्री विषयक पक्ष जैसे कई पक्षों को लेकर गीतों का निर्माण किया है। स्त्री पक्ष में तो नारी के व्यक्तित्व एवं सबलीकरण पर जोर दिया है। जैसे कि, अस्तित्व फिल्म का गाना- 'न कटूँगी न जलूँगी', मर्दानी फिल्म का गाना- 'आज से अब से आन मेरी मैं', सत्यमेव जयते फिल्म का गाना- 'मुझे क्या बेचेगा रुपैया' साथ ही नीरजा फिल्म का 'जीत हैं चल' यह गीत जीवन के प्रति अटूट आशा, साहसिक दृष्टिकोन, और कर्तव्यनिष्ठा का भावनात्मक एवं प्रेरणादायी रूप है। यह गीत विशेष रूप से उस स्थिति को दर्शाता है जब जीवन चुनौतियों से घिरा होता है, लेकिन मनुष्य हार मानने के बजाय मुस्कुराकर आगे बढ़ने का विकल्प चुनता है, यह ताकत हिंदी फिल्मी गीत में होती है। जिसके बोल इस प्रकार है-

"कहता है ये पल,
खुद से निकल
जीते हैं चल….3
घम मुसाफिर था जाने दे
धूप आँगन में आने दे

जीते हैं चल....3"[7]

इस गीत के संदर्भ में डॉ. जयश्री वाडेकर कहती है, "जीते हैं चल गीत एक ऐसी प्रेरक आवाज़ है, जो बताती है कि जीवन की असली गरिमा चुनौतियों का सामना करते हुए आगे बढ़ने में है। यह गीत बताता है कि हम केवल जीवित रहने के लिए नहीं, बल्कि कुछ उत्कृष्ट, मूल्यपूर्ण और साहसी कार्य करने के लिए जीते हैं। यह गीत मानवता, कर्तव्य और आत्मसम्मान की विजय गाथा है-जो कहता है: डर को दरवाज़े पर छोड़ो, उम्मीद का हाथ थामो- और जीते रहो, चलते रहो!"[8] नारी कुदरत की बेमिसाल रचना है जिसमें प्रेम, करुण, दया, संवेदना, ममता और त्याग जैसे गुण कुदरत ने विशेष रूप से संजोये हैं। औरत तेरी यही कहानी (1988) फिल्म में गीतकार राजेंद्र कृष्ण ने औरत की इसी दयालूपन का इज़हार किया है-

"धरती पर दुनिया का बोझ,
औरत पर बोझ मुसीबत का
हंस-हंस के अपनों में बाटें
फल तू अपनी मेहनत का
सबका पेट भर और खुद
पानी पीकर सो जाए तू
कैसे कर्ज चुकाएगी
यह दुनिया तेरी खिदमत का।"[9]

तारिख गवाह है कि इंसान की मेहनत के ज़ोर के आगे कुदरत भी कमजोर हो जाती है। श्रम के बल पर ही मनुष्य जंगल और गुफाओं से निकलकर आज की इस तकनीकी सभ्यता के मुहाने पर आया है। मेहनत और लगन से इंसान मनचाही सफलता हासिल कर सकता है। इसी लिए कैफ़ी आज़मी ने गीत लिखा है, जो इस प्रकार है-

"अपने हाथों को पहचान,
मूरख इनमें है भगवान
हाथ उठाते हैं जो कुदाल,
परबत काट गिराते हैं
जंगल से खेतों की तरु
मोड़ के दरिया लाते हैं
छेनी और हथौड़े का खेल,
अगर यह दिखलाएं
उभर चेहरे पत्थर में,
देवी-देवता मुस्काएं
आंखें झपकते लग जाए
मेला कोरे बर्तन का
हाथों के छूने से
सोना बनता है जेवर..."[10]

प्रस्तुत गीत से यह स्पष्ट होता है कि, मेहनत और लगन से इंसान मनचाही सफलता हासिल कर पाता है। सामान्य व्यक्ति को केवल दो जून की रोटी चाहिए। उसके लिए वह सारा दिन मेहनत-मशक्कत में गुजार देता है। लेकिन ऐसा करने पर भी बहुत से ग़रीब लोगों को दो वक्त का खाना नसीब नहीं होता। अमीर लोग उनकी मशक्कत की बदौलत अपनी तिजोरियाँ भरते हैं और आम आदमी दर-दर का भिखारी बना फिरता है। शैलेन्द्र ने अपने गीत में इसी तथ्य को उद्घाटित किया है-

"रात दिन हर घड़ी एक सवाल
रोटियां कम है क्यों,
क्यों है अकाल
क्यों दुनिया में कमी है,
कहां है सारा माल"[11]

निष्कर्ष:

निष्कर्ष रूप में कुलमिलाकर हम यह कह सकते है, कि हिंदी सिनेमा ने समाज के प्रत्येक पहलू पर नज़र ड़ाली है। हाशिये पर धकेले गये लोगों के जीवन को अभिव्यक्त करने में साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। हिंदी सिनेमा, गीत, एवं संगीत भी समाज का दर्पण है जिनके माध्यम से समाज के विविध पहलूओं पर ध्यान दिया गया है, चाहे वह मजदूर, शासक, स्त्री, किसान, गरीब। हिंदी फिल्मी गीतों ने अपने माध्यम से समाज को प्रगतिशील बनाने में अहम् भूमिका का निर्वाह किया है। पुरूष द्वारा नारी के शोषण और कालांतर में नारी के आत्मनिर्भर बनने की प्रक्रिया को हिंदी फिल्मी गीतों के माध्यम से अच्छे ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। हिंदी फिल्मी गीत की विकास यात्रा धीरे-धीरे बढ़ती ही जाएगी और वह आज के मनुष्य के बदलते रूप को गीत के माध्यम से दर्शाती रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूचि:

1. डॉ. जयश्री वाड़ेकर- 'हिंदी फिल्मी गीत अध्ययन', कैलाश पब्लिकेशन्स, छत्रपति संभाजीनगर, प्र. सं. 2025, पृ. 09
2. www.hindigeetmala.net (नया दौर, 1957)
3. बृजभूषण तिवारी- 'गीतों का राजकुमार: शैलेंद्र', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2013, पृ. 21
4. संपा. सत्य प्रकाश मिश्र- 'प्रेमचंद के श्रेष्ठ निबंध', ज्योति प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 2003, पृ. 71
5. संपा. डॉ. कुमार पाठीक, डॉ. जयश्री शुक्ल- हिंदी गीति काव्य: विकास एवं परंपरा, (डॉ. कल्याणी जैन- हिंदी गीत यात्रा एवं समकालीन संदर्भ), भावना प्रकाशन, दिल्ली, सं 2005, पृ. 251
6. www.hindigeetmala.net (शगुन, 1964)
7. https://youtu.be/RzmxAjwyokk?si
8. डॉ. जयश्री वाड़ेकर- 'हिंदी फिल्मी गीत अध्ययन', कैलाश पब्लिकेशन्स, छत्रपति संभाजीनगर, प्र. सं. 2025, पृ. 89
9. www.hindigeetmala.net (औरत तेरी यही कहानी, 1988)
10. www.hindigeetmala.net (अपना हाथ जगन्नाथ, 1966)
11. www.hindigeetmala.net (छोटी बहन, 1959)

*****

हिंदी ग़ज़लों में अभिव्यक्त सामाजिक संघर्ष

प्रा. डॉ. दीपक विनायकराव पवार
हिंदी विभागाध्यक्ष
दिगंबरराव बिंदु कला, वाणिज्य
व विज्ञान महाविद्यालय,
भोकर, जि. नादेड़ (महाराष्ट्र)

शोध सार:

हिंदी ग़ज़लकारों ने बड़ी व्यापकता और गहनता के साथ सामाजिक विमर्श को अपनी ग़ज़लों में अभिव्यक्त किया है। भावनाकुमारी ने नारी की सहनशिलता, परिवर्तनशिलता, ग्रहणशिलता, क्षमाशिलता, नवनिर्माण की ताकत, सर्वस्व का त्याग, नारी आदर्श रूप, आधुनिक नारी, समर्पण करनेवाली नारी, त्याग की मूर्ति, परिवार के लिए खुद भूखी रहनेवाली नारी को ग़ज़ल में दिखाया है। ज्ञानप्रकाश विवेक ने भी धूप के हस्ताक्षर नामक ग़ज़ल में सांस्कृतिक विमर्श दृष्टिगत होता है। महानगरिय जीवन, अस्तित्व की तलाश, शहरी जीवन की जटिलताएँ, आक्रोश एवं विसंगतियों का चित्रण किया गया है। जीवन की वास्तविकता को अभिव्यक्त किया गया है, साथ ही मूल्यों का विघटन, टूटती मान्यताएँ, भ्रष्टाचार, नई संस्कृति और सभ्यता, आम-आदमी की पीड़ा आदि पर हिंदी ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से वास्तविक तथा यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

बीज शब्द: ग़ज़ल, समाज, अभिव्यक्ति, प्रासंगिकता, परंपरा

प्रस्तावना:-

ग़ज़ल हिंदी- उर्दू साहित्य की एक बेहद लोकप्रिय और मधुर काव्य विधा है। इसकी शुरूआत अरबी एवं फारसी भाषा में मानी जाती है। परन्तु समय के साथ यह उर्दू और हिंदी काव्य का अभिन्न हिस्सा बन गई ग़ज़ल अपने अद्भूत संगीतात्मक सौंगर्य, भावपूर्ण अभिव्यक्ति और सूफियाना गहराई के लिए जानी जाती है। ग़ज़ल का अर्थ और स्वरूप देखने से हमें यह पता लगता है कि, ग़ज़ल शब्द का मूल अर्थ प्रेमिका से संवाद या प्रेम व्यथा का संवेदन है। गज़ल कई शेरों दो पंक्तियों से मिलकर बनती है। जिसमें हर शेर अपने आप में पूर्ण अर्थ रखता है। ग़ज़ल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सभी शेर एक ही काफ़िया रदीफ और वह में बंधे होते है। जिसमें उससे संगीत जैसा लयात्मकपन आ जाता है। ग़ज़ल मूल रूप से फारसी और अरबी काव्य परम्परा की देन है जो 13 वीं और 14 वीं शताब्दी में सूफी संतो और कवियों के माध्यम से भारत पहूँची यहाँ आकर यह स्थानीय भाषाओं (खासकर दक्खनी और उर्दू) में ढल गई और अपनी एक अनूठी पहचान बनाई।

ग़ज़ल के मुख्य अंग और संरचना में ग़ज़ल की पहचान उसके विशिष्ट छंद शास्त्रीय ढाँचे से होती है। यह एक ऐसी माला है। जिसके मोती शेर अलग-अलग होते हुए भी एक ही धागे (छंद और रदीफ़-काफिया) से बंधे है। शेर-ग़ज़ल की सबसे छोटी और मूलभूत इकाई शेर छंद कहलाती है। यह दो पंक्तियों (मिसरा) का होता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हर शेर अपने आपमें एक संपूर्ण अर्थ और विचार रखता है। इसके साथ ही मत्ला, मक्ता, रदीप, काफ़िया और बहर आदि ग़ज़ल के मुख्य अंग माने जाते है।

ग़ज़ल की प्रासंगिकता:-

आज के दौर में भी ग़ज़ल अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है। इसका कारण है कि, इसका लचीलापन। यह न केवल टूटे हुए दिल का हाल बयां कर सकती है, बल्कि व्यवस्था पर सवाल भी उठा सकती है। ग़ज़ल की यह विशेषता कि हर शेर एक अलग कहानी कह सकता है। उसे आधुनिक समय की छोटी, केंद्रित अभिव्यक्ति के लिए भी अनुकूल बनाती है। ग़ज़ल केवल साहित्यिक विधा नहीं, बल्कि भारतीय संगीत और फिल्मों का भी एक अभिन्न अंग बन टुकी है।

अरबी से फारसी साहित्य में आकर यह यह विधा यह शिल्प के स्तर पर तो अपरिवर्तित रही किंतु कथ्य की दृष्टि से वे अपने आगे निकल गई। उनमें बात तो देहिक या भौतिक प्रेम की ही की गई किन्तु उसके अर्थ विस्तार द्वारा देहिक प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम में बदल दिया गया। अरबी का इश्के मजाजी फारसी में इश्के हकीकी हो गया फारसी गजल में प्रेमी को सादिक (सादक) और प्रेमिका को माबुद बृह्म का दर्जा मिल गया गजल को रूप देने में सुफ़ी साधकों की निर्णायक भूमिका रही है। सुफी साधना विरह प्रधान साधना है। इसलिए फारसी गजलों में भी संयोग की बजाय वियोग पक्ष को ही प्रधानता मिली है। फारसी से उर्दू में आने पर भी गजल का शिल्पगत रूप ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया गया लेकिन कथ्य भारतीय हो गया। लेकिन उत्तर भारत की आम अवधारणा के विपरित हिंदोस्थानी गज़लों का जन्म बहमनी सल्तनत के समय दक्खन में हुआ जहाँ गितों से

प्रभीवित गजले लिखी गई। भाषा का नाम रेख्ता (गिर पड़ा) पड़ा। वही दक्खनी, सिराज दाऊद आदि इसी प्रथा के शायर थे। जिन्होंने एक तरह से अमिर खुसरों (1310 वीं) की परम्परा को आगे बढ़ाया।

हिंदी और उर्दू में ग़ज़ल की परम्परा:-

शास्त्रीय उर्दू ग़ज़ल मीर तकी मीर, मिर्जा गालिब, इकबाल फैज महम्मद फैज जैसे कवियों ने ग़ज़ल को दर्शन, विरह और सामाजिक आलोचना की उँचाईयों तक पहुंचाया। गालिब को ग़ज़ल का सबसे बड़ा चेहरा माना जाता है। जिन्होंने इसे व्यक्तिगत प्रेम से ऊपर उठाकर जटिल मानवीय भावनाओं का माध्यम बनाया।

हिंदी ग़ज़ल को पाठकों के बीच लोकप्रिय बनाने का श्रेय मुख्य रूप से दुष्यंत कुमार को जाता है। उनकी ग़जलों ने समकालीन राजनीतिक और सामाजिक विसंगतियाँ पर सीधे और तीखे प्रहार किए। उनकी शैली सीधी, सहज और आम आदमी से जुड़ी हुई थी, जिसके कारण उन्हें अपार लोकप्रियता मिली। अन्य प्रमुख शायर निदा फ़ाजली, बशीर बद्र, राहत इंदौरी और गुलज़ार जैसे शायरों ने भी ग़ज़ल की परम्परा को समृद्ध किया है।

स्वतंत्रता के बाद देश में सामाजिक स्थिति दयनीय रही है। देश में बेकारी गरीबी, महँगाई, भ्रष्टाचार, आर्थिक सांप्रदायिकता, आतंकवाद, अलगाववाद, धार्मिकता आदि कई समस्याएँ दिखाई देती है। अत: सामाजिक विमर्श हिंदी ग़ज़ल का कथ्य बन गया है। हिंदी ग़ज़लकारों ने अपने समय के यथार्थ को देखा, समझा तथा जीवन में उसे भोगा है। अपने समय का यथार्थ चित्रण करना ही उनकी रचनाधर्मिता का मुख्य उद्देश्य रहा है। हिंदी ग़ज़लकारों ने अपने युग के परिवेश को ध्यान में रखकर सामाजिक समस्याओं का विविध रूपों में उसे अभिव्यक्त किया है।

ज्ञानप्रकाश विवेक द्वारा लिखित 'धूप के हस्ताक्षर' ग़ज़ल संग्रह की लगभग सभी ग़ज़लें भारतीय सांस्कृतिक परि्परेक्ष से जुड़ी हुई है। अपनी जमीन और जमीन से जुड़े लोग तथा उनकी पीड़ा, दु:ख को ग़ज़ल के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है। "इन ग़ज़लों में आम आदमी का आक्रोश और संघर्ष है। वे समाज में रहकर भी समाज से अलग – थलग सा है। भीड़ में रहकर भी अकेलेपन की पीड़ा को भोगना महानगरीय परिवेश की सबसे बड़ी यंत्रणा है। वही यत्रणा बूँद-बूंद आग बनकर अशआरों में फैल गई है। इतना होने के बावजूद इन गजलों में पलायण नहीं, संघर्षों का जिक्रहै, चुनौतियों को स्वीकारने का संकल्प है।"1 देश की बात करनेवाले साम्प्रदायिकता की समस्या को हल नहीं करना चाहते वे केवल इन समस्या को हल करने का दिखावा करते है। मंदिर और मस्जिद के नाम पर सामान्य लोंगो की भावनाओं को भड़काते रहते है। ऐसे अवसरवादी लोंगों को न ते मंदिर से कोई लेना देना है और न मस्जिद से। वे तो इसे सत्ता तक पहुँचने का माध्यम समझते है-

"मजहब की खातीर बस्ती में लोग लड़े है जिस दिन से
मंदिर तब से मुख कड़ा है, मस्जिद है बिमार-सी"2

ज्ञानप्रकाश विवेक ने गजलों के माध्यम से जीवन की वास्तविकता को अभिव्यक्त किया है। वे जीवन की यथार्थ अनुभूतियों को व्यक्त करने का एक प्रभावी माध्यम के रूप में गजल को मानते है। उनकी मान्यता है कि, "ग़ज़ल ज्वालामुखी की आँख से टपके वे आँसुओं का अनुवाद है। ग़ज़ल जिंदगी का आईना है, आदमी की शख्सियत का अक्स है। अत: उनकी इस ग़ज़ल संग्रह की ग़ज़लों में आम आदमी की जिंदगी का दर्द परिलक्षित होता है।"3 ऐसे जीवन को को वे पिकुशन-सा मानते हैं जिसे अजीवन चुभन का दर्द सहना पड़ता है। एक ऐसा दर्द कभी खत्म नहीं होता।

"जिंदगी पिकुशन-सी लगती है
उम्रभर दर्द के चुभे हैं पिन
दर्द की है घटा न जोड़ कोई
दर्द को यूँ न उंगलियों पर गिन।"4

महिला लेखन को जिन लेखिकाओं ने अपनी लेखनी से सँवारा और समृद्ध किया है, उनमें भावना कुमारी जी की अपनी एक अलग पहचान है। ग़ज़लकार के रूप में भी भावना कुमारी का नाम प्रसिद्ध है। सामाजिक यथार्थ को लेकर लिखने वाली भावना कुमारी एक जागरूक और सचेत लेखिका है। भावना कुमारी ने अपनी ग़ज़लों में नारी की विविध स्वाभाविक प्रतिक्रियाएँ सीधे-साधे ढंग से व्यक्त की गई है, साथ ही विविद समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है। पेटरिका ब्रानका के अनुसार "स्त्री पत्नी, माता, उपभोक्ता, गृहीणी, स्वास्थ्य- निर्देशिका, शिक्षिका, सहयोगी ऐसे अनेक रूपों में एक ही समय सेवा करते हुए घर की बागडोर सँभालती है।"5

हिंदी के ग़ज़ल कारों में भावना कुमारी की ग़ज़ल 'चुप्पियों के बीच' मई, 2019 सन् को किताबगंज प्रकाशन, राजस्थान से प्रकाशित हुआ। इस ग़ज़ल संग्रह में लगभग 79 ग़ज़लें सम्मिलित है। इनकी सभी ग़ज़लें सकारात्मक सोच को आगे ले जाने ममें सफल रही है।

"खिड़की, आँगन, गलियाँ रोयीं
पीहर से जब रिश्ता छूटा।" 6

समाज की निर्दयी व्यवस्था के कारण आज समाज में लोग लड़की के जन्म पर आनंद नहीं शोक मनाते है। क्या लड़की का पिता होना पाप है? आज छह माह की लड़की से लेकर 60 साल की वृद्ध तक इन हवशियों की हवस का शिकार हो रही है। इसी अन्याय- अत्याचार को लेकर ग़ज़लकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से उजागर किया है।

"बालिग नाबालिग सब वहशत की जद में
आज हृदय कितना घायल क्या बोलूँ।"7

इसलिए स्वयं ग़ज़लकार भावना कुमारी कहती है कि, "ग़ज़ल मेरे लिए साहित्य की विधा भर नहीं, खुद को जिंदा रखने का जरिया है। लेखन की अन्य विधाओं की अपेक्षा मैं ग़ज़ल कहने में ज्यादा सहज महसूस करती हूँ। फारसी में कहते है कि, जो दिल से उठे और दिल पे गिरे, वही शायर है। शेरों की यही विशेषता मुझे ग़ज़ल कहने को प्रेरित करती है। ग़ज़ल मेरे साथ चलनेवाली वह चेतना है, जो हर पल मेरा साथ देती है। दु:ख के क्षणों में भी मुझे अकेला नहीं होने देती।"8

पहले समाज में मानवता की पुजा होती थी इंसानियत को पद,पैसा तथा प्रभूते से बढ़कर माना जाता था, परन्तु वर्तमान समय में बढ़ती बौद्धिकता तथा स्वार्थ के सामने इंसानियत बीते युग की चीज हो कर रह गई है। आज मानवता का और इंसानियत का कोई मूल्. नहीं रहा है। दिन प्रतिदिन स्वार्थ के लिए इंसानियत हर समय मरती हुई नजर आ रही है।

"हर इक सड़क पै हो रहा इंसानियत का कत्ल
पूरे शहर में फिर भी कोई सनसनी नहीं।"9

आज व्यक्ति प्रेम और सद्भाव को भूलकर एक दुसरे के खुन के प्यासे बन रहे है। इंसानियत का भाव समाप्त हो गया है और उसपर सैतानियत का भाव हावी हो रहा है। देवदास बिस्मिल अपनी ग़ज़ल 'टुकड़े-टुकड़े जिंदगी' में लिखते है,

"आज दुनिया बन गई, इन्सानियत की कत्लगाह
शैतानियत का नाच होता है, आज के इस दौर में
आदमी इंसा नहीं है, अब दरिन्दा बन गया
नोचता आपस में बोटी, आज इस दौर में।"10

इसी कड़ी में आगे जहीर खुरेशी को आज शहर में मनुष्य के रूप में जंगली जानवर दिखाई देने लगे है। आज मनुष्य के मन में पाशविकता बढ़ती जा रही है। इसी संदर्भ में व्यंग्य करते हुए जहीर खुरेशी लिखते है।

"देखिए देखिए जंगली जानवर
बंद कमरे में एकांत में प्रेमिका
आपको क्या कहें- जंगली जानवर
आजकल जंगलों में मिलते नहीं
आदमी से बड़े जंगली जानवर"11

आम आदमी के लिए सरकार के द्वारा अनेक योजनाएँ बनीई जाती है। किन्तु इन योजनाओं का उन्हें लाभ नहीं मिलता देश की व्यवस्था भ्रष्ट हो चुकी है। राजनेता से लेकर नोकरशहा तक। शासकीय दप्तरों में भी भ्रष्टचार का बोलबाला बढ़ गया है। इसलिए आम आदमी के लिए बनी योजनाएँ, लाल-फिताशाही में बंद है। ग़ज़लकार दुष्यंतकुमार इस पर कटाक्ष करते है,

"यहाँ तक आते-आते सूख जाती है कई नदियाँ
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ है।"12

निष्कर्ष

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि, हिंदी ग़ज़लकारों ने बड़ी व्यापकता और गहनता के साथ सामाजिक विमर्श को अपनी ग़ज़लों में अभिव्यक्त किया है। भावनाकुमारी ने नारी की सहनशिलता, परिवर्तनशिलता, ग्रहणशिलता, क्षमाशिलता, नवनिर्माण की ताकत, सर्वस्व का त्याग, नारी आदर्श रूप, आधुनिक नारी, समर्पण करनेवाली नारी, त्याग की मूर्ति, परिवार के लिए खुद भूखी

रहनेवाली नारी को ग़ज़ल में दिखाया है। ज्ञानप्रकाश विवेक ने भी धूप के हस्ताक्षर नामक ग़ज़ल में सांस्कृतिक विमर्श दृष्टिगत होता है। महानगरिय जीवन, अस्तित्व की तलाश, शहरी जीवन की जटिलताएँ, आक्रोश एवं विसंगतियों का चित्रण किया गया है। जीवन की वास्तविकता को अभिव्यक्त किया गया है, साथ ही मूल्यों का विघटन, टूटती मान्यताएँ, भ्रष्टाचार, नई संस्कृति और सभ्यता, आम-आदमी की पीड़ा आदि पर हिंदी ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से वास्तविक तथा यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

संदर्भ सूची :-

1) धूप के हस्ताक्षर- ज्ञानप्रकाश विवेक, पूर्वकथ्य से
2) धूप के हस्ताक्षर' ज्ञानप्रकाश विवेक,पृ.36
3) हिंदी साहित्य:विविध विमर्श, धनराज धनगर, प्रशांत पब्लिकेशन जलगांव, पृ.42
4) धूप के हस्ताक्षर' ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ.71
5) हिंदी साहित्य:विविध विमर्श, धनराज धनगर, प्रशांत पब्लिकेशन जलगांव, पृ.54
6) चुप्पियों के बीच, भवना कुमारी, किताबगंज प्रकाशन, पृ.19
7) चुप्पियों के बीच, भवना कुमारी, किताबगंज प्रकाशन, पृ.19
8) शब्दों की किमत, भावना कुमारी, भूमिका से
9) शामियाने काँच के, डॉ.कुँअर बेचैन, पृ.86
10) टुकड़े-टुकड़े जिंदगी, देवदास बिस्मिल पृ.23
11) चाँदनी का दुख, जहीर खुरेशी,पृ.73
12) सायें में धूप, दुश्यंतकुमार, पृ.15

*****

राकेश कुमार सिंह के 'पठार का कोहरा' उपन्यास में आदिवासी लोकगीत

स्वयंपूर्णा विजय गायकवाड (शोध छात्रा)
शोधनिर्देशक - प्रो. डॉ. हनुमंत जगताप
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग एवं अनुसंधान केंद्र,
न्यू आर्ट्स कॉमर्स अँड सायन्स कॉलेज, (स्वायत्त)
अहिल्यानगर – ४१४ ००१
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय,पुणे
संपर्क – ९३०९१५४७१५
ई-मेल – swayampurnagaikwadnet@gmail.com

शोध आलेख सारांश :

आदिवासी समाज का जीवन बहुत समृद्ध और विविधतापूर्ण है। उनकी संस्कृति में चित्रकला, गुदना, पर्व-त्योहार, लोककथाएँ, लोकगीत और लोकनृत्य जैसे अनेक रंग समाहित हैं। यह सांस्कृतिक रूप आदिवासी समाज को उसकी अलग पहचान प्रदान करते हैं। लोक संस्कृति उनके बीच पीढ़ियों से चली आ रही परंपराओं, रीतियों, विश्वासों और सामाजिक मान्यताओं पर आधारित है। यह संस्कृति उन्हें प्रकृति से जोड़ती है, समाज में एकता और सामूहिकता की भावना जगाती है, और उनके जीवन को अर्थपूर्ण बनाती है। उनकी संस्कृति में जीवन की सादगी, प्रेम, और सामंजस्य का सुंदर संगम दिखाई देता है। समकालीन उपन्यासकार राकेश कुमार सिंह के उपन्यासो मे वर्णित आदिवासी जीवन से संबंधित लोकगीत परंपरा का उल्लेख मिलता है इससे पाठक वर्ग के लिए आदिवासी समाज का सांस्कृतिक जीवन आज भी अपनी विशिष्ट पहचान के साथ जीवित और प्रभावशाली रूप में हमारे सामने उपस्थित है।

बीज शब्द – आदिम समाज, लोकगीत, लोक संस्कृति, विवाह संस्कार, बिदाई गीत, कृषि संबंधी गीत, पर्व-त्योहार, करमा और सरहुल, सामूहिक जीवन, सांस्कृतिक पहचान, कांदलेटा उत्सव,जाहेर आया, करमा तथा सरहुल,'फग्गू सेंद्रा' आदी।

प्रस्तावना :

आदिम समाज का समुचा अंतर वैभव इन लोकगीतों में प्रस्फूटित हुआ है। लोकगीतों का आदिवासी समाज में महत्वपूर्ण एवम् अटूट रिश्ता रहा है। क्योंकि इन्ही लोकगीतों के कारण आदिवासी समाज का लोकजीवन स्पंदीत हुआ है। उनका सामाजिक, धार्मिक जीवन, संस्कृति, उत्सव, परंपराएँ, त्योहार, मेले, देवी-देवताओं के प्रति आस्था, विभिन्न विश्वास, स्त्रियों के जीवन के विशेष अवसरों पर पहनाए जानेवाले पोशाख तथा आभूषणों की झंकार आदिवासियों का गौरवशाली इतिहास आदि के कारक है। जो आदिवासी जीवन के लोकगीतों की सरिता अविरल बहाने में सहायक हुए है। पुरा आदिवासी इलाका लोकगीतों से भरा पड़ा है। आदिवासियों के लोकगीत यह मुख्यता: अलिखित है। इनका कर्ता कौन है इसकी किसी को खबर नहीं है वे परपरा से एक पीढी से दूसरी पीढ़ी तक चले आ रहे है। उनमें एक प्रकार की ताजगी एवं उत्साह है जो आज भी उसमें विद्यमान है। शास्त्रीयता के बंधनों से मुक्त होने के कारण इन लोकगीतों में सौंदर्य तथा सत्यता के दर्शन होते हैं।

राकेश कुमार सिंह के उपन्यास 'पठार का कोहरा' उपन्यास में आदिवासी जीवन और उनके लोकगीतो का विस्तार पूर्वक वर्णन आया है। जिससे आदिवासी जनजीवन से संबंधित लोकगीत परंपरा पर प्रकाश डाला जा सकता है। इस शोधाआलेख के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार आदिवासी समाज ने जीवन की कठोरता एवं गंभीरता तथा त्रासदियों को सहज, सरल एवं रसमय बनाने के लिए लोकगीत एवं लोकनृत्य का आश्रय लिया। नृत्य ताल वाद्यवृंदो के आधार पर अज्ञात लोक कवियों द्वारा विरचित लोकगीतों में सारी भ्रांतियाँ त्याग कर एकाकार हुए। अत: आदिवासी समाज और उनके लोकगीतों पर प्रकाश डालने का प्रयास प्रस्तुत आलेख के माध्यम से किया गया है।

शोध विषय विश्लेषण :

आदिम समाज के लोक संस्कृति के विविध रूपों में लोकगीत का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। लोकसंस्कृति के ज्ञान का मूलाधार लोकगीत ही है। लोकगीत इस देश की संस्कृति के वाहक माने जाते हैं। लोक संस्कृति के विविध रुपों में लोकगीत का अपना एक विशिष्ट महत्वपूर्ण स्थान रहा है। आदिम समाज में लोकगीत जीवनानुभवो सहज एवं सरल अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में प्रस्तुत होते हैं। आदिवासी लोकजीवन की विविध छटाओं के विविध रंग उनके लोकगीतों में दिखाई देते हैं। रमणिका गुप्ता लिखती है - ''आदिवासी लोकगीतों की रचियता अशिक्षित होते हुए भी समय एवं परिस्थितीयों के अनुकुल विषय की बडी

जबरदस्त पकड रखते हैं। आजादी के पूर्व के गीत विदेशी जातियों से संघर्ष एवं सामंती शोषण की गाथाओं पर आधारीत वीर रस के ओज पूर्ण गीतों के दिग्दर्शन होते है ....। प्राकृतिक प्रकोप, अकाल, कृषि, आखेट, मेले, त्योहार, शादी-ब्याह जैसे अवसरों पर सतरंगी लोकनृत्य के थिरकते पाँव गैर - घूमर नृत्य द्वारा सामाजिक जीवन में जान फूँकते हैं। प्रकृति ही लोकगीतों की सृजन शक्ति एवं प्रेरणा स्त्रोत रही है।''[1] याने इन लोकगीतों में आदिवासीयों का लोकजीवन स्पंदित होता हैं। राकेश कुमार सिंह के उपन्यास मे आये हुए लोकगीते को निम्न प्रकार से विश्लेशित किया जा सकता है -

विवाह संस्कार गीत :

विवाह मनुष्य जीवन का एक महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। आदिवासी सांस्कृतिक जीवन में भी विवाह का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सभी समाजों में विवाह के अवसर पर विभिन्न प्रकार के गीत गाये जाते हैं। आदिवासी जीवन में वे गीत हजारों सालों की मौखिक परंपरा से चले आ रहे हैं। वह गीत समुदाय अपनी अपनी बोली -बाणी में असली माटी की महक लिए उपस्थित होते है। हिंदी आदिवासी उपन्यासों में विवाह संस्कार में गाये जानेवाले गीतों की दृष्टि से वह उल्लेखनीय स्पष्ट होते हैं।

'पठार पर कोहरा' इस उपन्यास में विवाह के उपरांत बिदाई के समय गानेवाले गीत का उल्लेख मिलता है। उपन्यास में 'रुदिया' के विवाह के बाद औरते बिदाई का कारुणिक गीत गाती है –

''जिस गाँव में तू जाएगी ओ धिया, सूखे वृक्ष पत्तो से लद आएँगे। बाँझ औरतों की गोद भर उठेंगी। बूढी गायों के थन से दूध टपकने लगेगा। जहाँ तेरे पाँव पड़ेंगे धिया, उजडे गाँव आबाद हो जाएंगे। सेमल और कपास के बीज मोतियों में बदल जाएंगे।''[2]

यह गीत परपरांगत लोक-गीतों से भिन्न माना जाता है क्योंकि यह गद्य के रूप में है। इस उपन्यास में दूसरी तरफ मड़वे में लडकियाँ कारुणिक स्वर में बिदाई गीत गाती है -

''केकर माथे लाल-सुन्नर पगड़ी /केकर हाथ लाल गेंदा फूल /ओ मैना रे, /मति जावे दूर विदेस...।''[3]

(अर्थात, किसके सिर पर सुंदर लाल पगडी है? अर्थात, दुल्हे के। किसके हाथ में गेंदे का लाल फूल है ? अर्थात दुल्हन के । ओ मेरी दुलारी मैना (बेटी), इस पगड़ी पर लुभाकर हमसे बहुत दूर परदेस न चली जाना)

उपन्यास में विवाह संस्कार के समय विभिन्न अवसरों पर आदिवासी समाज में जो जो गीत गाये जाते है उनके स्वर सुनाई देते हैं । इनमें मुख्यतः व्यंग्यात्मक गीत और बिदाई के वक्त जो गीत गाये जाते है ।

कृषि सबंधी गीत :

भारत के आदिवासी यह विभिन्न क्षेत्रों मे रहते है। लेकिन उनके आय का प्रमुख स्त्रोत मुख्य रूप से कृषि ही रहा है। इसलिए खेती में काम करते समय या खेती करते वक्त या उनसे पूर्व आदिवासी समाज कुछ धार्मिक अनुष्ठान या पूजा अर्चा करते हुए दिखाई देता है और ऐसे समय वहाँ अनायास रूप में लोकगीतों की बौछार दिखाई देती है।

प्रस्तुत उपन्यास 'मुंडा' आदिवासियों द्वारा धान की रोपनी के गीतों का चित्रण मिलता है –

''रोपनी गीतों के ज्वार से नहा उठा है । /गजलीणेरी ..../बिर तबु चब तन /ओते तब पीड़ि तन /दास बु रोवाया /गोडा पिडी रेबु रोवाया /सादी... सादी..../उली कण्ट्द कुछ बारु /मु दू हस; जोतो दारु /दास, बू रोवाया''[4]

(अर्थात, जंगल खत्म हो रहा है। धरती बंजर हो रही है। अत: गाछ रोपेंगे । टाँड के आड में रोपेंगे। कतार - कतार । आम, कटहल, जामुन, कुसुम, फरसा, पीपल, आदि। गाछ रोपेंगे)

अत: यह कहा जा सकता है कि आदिवासी किसान धान की रोपनी, खेती का कौन-सा भी काम यह अकेले नहीं करते हैं वह समूह के साथ यह काम करते हैं और वह समूह काम के लिए इकट्ठा जुड़ जाता है तो गीतों के बोल अपने आप फुटने लगते है। गीतों की एक ब एक कड़ियाँ जुड़ने लगती है। ऐसे में कठिन से कठिन काम भी आसान लगने लगता है। आदिम समाज में कृषि लोकगीत लोकप्रिय रहे हैं । उनके सांस्कृतिक जीवन में इन लोकगीतों का महत्वपूर्ण स्थान स्पष्ट होता है।

आदिवासी जीवन में लोकसंस्कृती का महत्वपूर्ण स्थान है। आदिवासी लोग विभिन्न अवसरों पर गीत गाते है, उनमें प्रमुख द्रष्टव्य है –

पर्व त्योहार संबंधी गीत:

आदिवासी जीवन में विविध पर्व, एवम् त्योहारों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन पर्व और त्योहारों में विभिन्न प्रकार के गीत गाये जाते हैं । प्रत्येक पर्व एवम् त्योहारों पर अलग-अलग प्रकार के गीत गाये जाते हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास में 'करमा' तथा 'सरहुल' त्योहार का तथा उसमें गाए जानेवाले गीतों का चित्रण मिलता है।इस उपन्यास में मुंडा आदिवासी समाज में 'सरहुल पर्व' पर 'सरना देवता' के गीत का चित्रण मिलता है -

''खद्दी चाँदी हियो रे नाद नौर /फागु चाँदी हियो रे नाद नौर /भर चाँदो चाँद रे नाद नौर /मिरिम चाँदो हो – साँड, ले उनाड .... |''[5]

प्रस्तुत उपन्यास में आगे दूसरी जगह सरहुल के गीत का चित्रण भी मिलता है-

''खैया सडोय हियो रे नाद नौर /खडोन डोम हियो रे नाद नौर /मिरिम चाँदो चाँद रे नाद नौर /भर चाँदो चाँद रे ले उना sss .... ।''[6]

(अर्थात - भौजी को बुलाओ। पतोहुओं को न्योता भेजो। सबको जुटाओ। बड़ी मुर्गी की बलि दो। टूटे घड़े में हैड़िया भर-भर अर्घ्य दो चाँद को। सरहुल का चॉद आ गया।)

करमा पर्व पर 'करमादेव' पर गीत गाया जाता है। 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में इसकी पुष्टि होती है। पठार पर कोहरा उपन्यास में चित्रित गीत उल्लेखनीय है - करमउदासी अर्थात करमदेऊ का विदा गीत -

''सबकारो घरे आइज माँदर बजाय /मोर घारे सुना चेल रे....sss/मोरा साइयाँ गेल परादेस /मोरा घारे सुना चेल रे...sss/करम कहाल में संवारो/करमा के दिन कैसे आवय रे...sss/करमा का तरे-तरे जला भरी फूल रे/डाला भरी बाती बराय रे... sss''[7]

(अर्थात, सबके घर आज मॉदल बज रही है। पर मेरा घर सुना है। पति गया है परदेस । अगले करमा में सदूॅया आनेवाला है। जल्दी अगला करमा आवे। घर की उदासी टूटे। करम की डाली को सींचूँ। टोकरी भर दीये जलाऊँ ।)

देवी - देवताओ के गीत :

इस उपन्यास में मुंडा आदिवासियों द्वारा करमा (करमदेऊ) देवता को प्रसन्न करके के लिए गीत गाये जाते हैं। इस संबंध में लोकगीत दृष्ट्व्य है -

''ओडाक खोनित्त ओण्डोक लेन /खटका रेत्र तिंग लेन /ओका महल रेंचो तिरिया साडे/ऐ ... हेरो – होरे.. ।''[8]

उपर्युक्त लोकगीत देवी देवताओं और अपने पूर्वजों को प्रसन्न करने के लिए आदिवासी समाज द्वारा विभिन्न अवसरों पर देवी-देवतांओं एवम् उनके पूर्वजों को प्रसन्न करने के लिए गीत गाते हुए दिखाई देते हैं।

आखेट के अवसर पर गीत :

आदिवासी समाज में आखेट की प्रथा विद्यमान होती है। आखेट प्रथा को 'फग्गू सेंद्रा' कहा जाता है। प्रतिवर्ष आखेट करने की प्रथा होती है। शिकार को जाने से पहले गाँव का 'पहान' आखेट देवता को बलि चढाता है। सजी-संवरी युवतियॉ युवकों को फग्गू सेंद्रा में भेजने के लिए उपस्थित है और अखाड़े में नाचते गाते हुए शिकार में सफल होने की कामना करती है। हिंदी आदिवासी उपन्यास में उपन्यासकार ने 'जनीशिकार' को चित्रण किया है ।

''तुड़कर बरेचर, तुटकट बरेचर /गंगा हेछे हेछे नू बराबार रे...sss/कला तो - को छोटे नेकर बरके/हाथी - घोडो रई का मलारे''[9]

प्रस्तुत उपन्यास में और एक जगह - आखेट पर्व का वर्णन हुआ है -

''ओरे छू गंगा, पारे बूँ जमुना, धारे- धारे तुरका अवै रे...sss
हाथा में तरवारे, खाँदा में बन्दुकाँ, धारे - धारे आवैं रे।
गाछा केरा मैना लिरो सोरा कन्दाय /नदी तीरे - तीरे घोड़ा दाइय रे…sss''[10]

इसी तरह शिकार के प्रसंग में लोकगीतों का उल्लेख प्रस्तुत उपन्यास में भी हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी समाज यह उत्सवधर्मी समाज है इसीलिए इस समाज में हर उत्सव पर अलग-अलग गीतों की रचनाएँ हुई है और वह परंपरागत एक पीढ़ी से दूसरी पीढी तक संक्रमित हुए है। जन्म से मृत्यु तक हर एक घटना को यह समाज नाच–गाकर मनाता हुआ दिखाई देता है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: प्रस्तुत उपन्यास "पठार पर कोहरा" के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी समाज में लोककथाएँ, लोकगीत और लोकनृत्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। लोककथाएँ उनके जीवन की सच्चाइयों, विश्वासों और अनुभवों का मौखिक

इतिहास होती हैं। ये कहानियाँ लिखी नहीं जातीं, बल्कि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सुनाई जाती हैं। इनमें कल्पना और यथार्थ का सुंदर मिश्रण देखने को मिलता है। लोककथाओं में उनके समाज की नैतिकता, परंपरा, रीतियों और विश्वासों की झलक मिलती है। जादू-टोना, हँसुली माई जैसी कथाएँ उनके धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन की प्रतीक हैं। इन कथाओं का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि समाज के नैतिक मूल्यों और आचार-विचार को सुदृढ़ करना होता है। लोकगीत और लोकनृत्य आदिवासी जीवन की आत्मा हैं। उनके प्रत्येक पर्व और उत्सव में गीत और नृत्य का विशेष स्थान होता है। वे अपने सुख-दुःख, प्रेम, श्रम और प्रकृति के प्रति आभार को गीतों के माध्यम से प्रकट करते हैं। इन सभी परंपराओं, गीतों, नृत्यों और संस्कारों का उद्देश्य केवल मनोरंजन या धार्मिक पालन नहीं, बल्कि समाज की एकता, नैतिकता और सांस्कृतिक मूल्यों को बनाए रखना है। इनके माध्यम से आदिवासी समाज अपनी पहचान, परंपरा और संस्कृति को अगली पीढ़ियों तक पहुँचाता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि आदिवासी संस्कृति उनके जीवन का आधार है।

संदर्भ :

1. संपा. रमणिका गुप्ता - आदिवासी लोक, पृ.क्र. 21
2. डॉ हरिश्चंद्र रौत : आदिवासी लोकगीतों में मीडिया का प्रभाव, पृ.क्र. 44
3. राकेश कुमार सिंह – पठार पर कोहरा, पृ.क्र. 210
4. रकेश कुमार सिंह – पठार पर कोहरा, पृ.क्र. 211
5. राकेश कुमार सिंह – पठार पर कोहरा, पृ.क्र. 224,
6. राकेश कुमार सिंह – पठार पर कोहरा, पृ.क्र. 225
7. राकेश कुमार सिंह - पठार पर कोहरा, पृ.क्र. 202
8. राकेश कुमार सिंह - पठार पर कोहरा, पृ.क्र. 224.
9. .राकेश कुमार सिंह – पठार पर कोहरा पृ.क्र. 220
10. राकेश कुमार सिंह – पठार पर कोहरा, पृ.क्र. 221

*****

परंपरा से प्रयोग तक: हिंदी फिल्मी गीत

सारिका मूंदड़ा (शोधार्थी)
शोध निर्देशक – डॉ. मधुकर बाबुराव राठोड़
प्रा. रामकृष्ण मोरे कला, वाणिज्य एवं
विज्ञान महाविद्यालय, पुणे
मोबाइल नं. – 9225527666
ई-मेल – sarikamoondransd@gmail.com

शोध सार --

हिंदी फिल्मी गीत भारतीय सांगीतिक परंपरा, सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक स्मृति के महत्वपूर्ण दस्तावेज सरीखे हैं। हिंदी सिनेमा अपने शुरुआती दौर में पर शास्त्रीय संगीत से अत्यधिक प्रभावित रहा। शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त ठुमरी, भजन और लोकधुनों का प्रभाव भी हिंदी गीतों पर प्रमुखता से रहा, फिर धीरे-धीरे अन्य गायन शैलियों जैसे ग़ज़ल, कव्वाली, सूफी, लोक–फ्यूजन, पॉप, रॉक, इलेक्ट्रॉनिक एवं रैप आदि ने भी फिल्मों में अपना स्थान बनाया। इस शोध आलेख में हिंदी फिल्मी गीतों की शैलीगत यात्रा को समझने का प्रयास किया गया है तथा विभिन्न कालखंडों के प्रतिनिधि गीतों के उदाहरणों के माध्यम से उनके सांगीतिक स्वरूप, भावाभिव्यक्ति और सांस्कृतिक अर्थ–विस्तार का विश्लेषण करता है।

बीज शब्द – शास्त्रीय, संगीत, राग, परम्परा, लोकधुन, शैली, गायन, प्रयोग, फिल्म, फ्यूज़न, भारतीयता

प्रस्तावना --

भारतीय सिनेमा अपने प्रारंभिक चरण में नाट्य–संगीत परंपरा से गहराई से जुड़ा था। फिल्मों में संगीत मनोरंजन के लिए तो आवश्यक था ही लेकिन उसका कार्य केवल मनोरंजन नहीं था अपितु वह कहानी या कथानक को दिशा देता था, फिल्मों के विषय ऐतिहासिक या पौराणिक पृष्ठभूमि से जुड़े थे और इस प्रकार संगीत भी सांस्कृतिक स्मृति के संवाहक का कार्य करता था।

पहले फ़िल्मी गीतों में शास्त्रीयता पर अधिक बल था। गीतों को शास्त्रीय रागों के आधार पर निर्मित किया जाता था। भजन-कीर्तन आदि पर भी शास्त्रीय प्रभाव देखा जा सकता है। ठुमरी, दादरा आदि शैलियों को भी सिनेमा में स्थान मिला। इसका लाभ यह हुआ कि सामन्य जन भी शास्त्रीय परम्परा से परिचित हुआ जिसे अपेक्षाकृत किलष्ट माना जाता है।

समय के साथ तकनीकी विकास, वैश्विक संगीत प्रभाव, लोकप्रियता आदि कारणों से फिल्मी गायिकी में नए प्रयोग हुए और फ़िल्मी गीत कई शैलियों में गाये गए, कई तरह के वाद्यों का प्रयोग भी गीतों में होने से प्रयोग के नए रास्ते खुले और हिंदी फिल्मी गीतों की यात्रा परंपरा से प्रयोग तक निरंतर विकसित और नूतन होती रही।

शोध आलेख का विश्लेषण --

शास्त्रीय राग–आधारित गीत -

प्रारंभिक फिल्मों में संगीतकारों का आधार शास्त्रीय परंपरा थी। जिसकी प्रमुख विशेषताएं स्वर–शुद्धता, राग–व्यवस्था एवं भाव–विस्तार हैं। उस समय की फिल्मों में ऐसे कई गीत देखे जा सकते हैं। जैसे 'मन तड़पत हरि दर्शन को आज' गीत भक्ति भाव से पूर्ण भजन है जिसका आधार शास्त्रीयता है।

इसी प्रकार एक फिल्म 'झनक-झनक पायल बाजे' जो 1955 में प्रदर्शित हुई थी, इसमें तो शास्त्रीय संगीत को लेकर ढेरों दृश्य बुने गए थे। "इस फिल्म में ठुमरी-दादरों, कथक नृत्य के बोल-परनों एवं ढेरों पारम्परिक वाद्यों की सहभागिता से फिल्म के दृश्यों को जीवंत बनाया गया है।"[1] इस फिल्म में 'रागमाला' गायन को गुरु द्वारा संगीत शिक्षा देते समय प्रयोग किया गया है। "गुरु उपासना (राग यमन) के मन्त्र से शुरू होकर मन्ना डे की आवाज राग बसंत की बंदिश –रुत बसंत आई घन-वन उपवन, द्रुम मिलिंद प्रफुल्लित सुगंध मंद पवन आवत मिलिंद मधुकर मधुप गुंजत रुत बसंत' की तरफ रुख करती है और समाप्ति में राग मियाँ-मल्हार की बंदिश तक आती है। इसी गाने में लता जी राग शुद्ध सारंग में पंक्तियाँ गाती हैं।"[2]

राग यमन पर आधारित के.एल.सहगल का गीत 'मैं क्या जानूं क्या जादू है' एक अलग मिजाज़ का गाना है, जिसे पंकज मलिक ने संगीत से सजाया है। ऐसे और भी कई उदाहरण हिंदी फ़िल्मी गीतों के दिए जा सकते हैं जो शास्त्रीयता से सम्पन्न थे। 'आम्रपाली' फिल्म का 'नील गगन की छांव में' हो या 'गाइड' फिल्म का 'पिया तौसे नैना लागे रे' शास्त्रीयता से सजे अलग-अलग भावों के गीत हैं। ये गीत हमारे भारतीय संगीत की परंपरागत जड़ों का प्रतीक हैं।

ठुमरी, दादरा और लोकधुनों का प्रभाव -

उपरोक्त शैलियाँ शास्त्रीयता और लोकधुन को समावेशित करती हैं जिनके माध्यम से श्रृंगार एवं विरह के कोमल भावों को दर्शाया गया। इनकी विशेषता , मींड, गमक धीमी–मध्यम लय है। ''नौशाद साहब ने शास्त्रीय संगीत और लोक पक्ष के सामंजस्य का भरपूर प्रयोग किया, जैसे मुगल-ए-आजम फिल्म में बनारस की मशहूर पूरब अंग की राग मिश्र गारा की ठुमरी 'मोहे पनघट पे नन्द लाल छेड़ गयो रे' या 'ढूँढो ढूँढो रे साजना मोरे कान का बाला (गंगा जमुना) ठेठ दादरे पर आधारित था।"[3]

हिंदी सिनेमा में लोकधुनों पर आधारित गीत – लोकधुनों पर आधारित होने से इनकी गायिकी में लोक की चेतना के दर्शन होते हैं। हेमंत दा ने बंगाल के रवींद्र संगीत को फिल्मों में शामिल किया। बंगाल के बाऊल और रवींद्र संगीत की धुनों का उपयोग हिंदी फिल्मों में एक नया प्रयोग था। बंगाल का ही भटियाली संगीत भी फिल्मों में आया।

इसी प्रकार असमिया महक लिए भूपेन हज़ारिका जी हिंदी फिल्मों में कुछ अनूठा दर्ज करते हैं। गुलजार द्वारा उनके बारे में उद्धत किया गया विचार इस प्रकार है –"यह शायर जिसका नाम भूपेन हज़ारिका है, कितनी आसानी से अवाम मकई आहट सुन लेता है। उम्मीद और आशा भूपेन दा के हाथ से कभी नहीं छूटती। न लोकगीतों में, जो वो गाते हैं, न नज़मों में जो वो लिखते हैं और कम्पोज़ करते है।"[4] रुदाली में जो कि राजस्थान की पृष्ठभूमि पर बनी फिल्म है, उसके गीत 'दिल हुम हुम करे' को उन्होंने पुराने लोकप्रिय असमिया गीत 'बुकु हुम हुम करे' की तर्ज पर हिंदी में रूपांतरित करवाया था, और ये कार्य गुलजार ने किया था। इसी फिल्म का 'मौला ओ मौला' असमी लोक धुन पर आधारित है।

राजस्थानी लोकधुन का समावेश 'लेकिन' फिल्म के गानों में अत्यंत कुशलता से हुआ, 'यारा सीली सीली बिरहा की रात का जलना' कहरवा ताल पर राजस्थान के लोक वाद्यों रावनहत्था और ढफ के इस्तेमाल से लोक परिवेश की प्रतीति करता है। इस गीत की सारंग-यंग की धुन राजस्थानी लोक संगीत में भी प्रचलित रही है। राजस्थानी लोक संगीत में लंगाओं की सिन्धी सारंगी का भी प्रयोग होता है, जो इस फिल्म में किया गया। इसी फिल्म में राजस्थान के मारू प्रदेश में प्रचलित राग मांड की लोकधुन पर आधारित बंदिश ' केसरिया बालम' भी एक सुंदर प्रयोग है। ऐसे कई अन्य गीत भी है जिनमें लोकधुन के साथ कुछ अनूठे प्रयोग संगीत में हुए और इस प्रकार संगीत कुछ अनूठा रचता रहा। गरबा, गिद्दा आदि को केंद्र में रख कर संगीत और गीत रचे गए।

मुजरा शैली –

मुजरा शैली का प्रयोग महफिलों में किया जाता था। महफिलों के संगीत में प्रयुक्त होने वाली इन चीजों का जिक्र प्राण नेविल ने इस प्रकार किया है –

"अठारहवीं शताब्दी के आरंभ से मिलने वाली बाइयों एवं तवायफों के यहाँ संगीत एवं नृत्य नकी अदायगी ठुमरी और गजल के मार्फत होती रही है। वह भी प्रेम से भारी बंदिशों के बहाने। इनमें या तो प्रेम का इजहार मनुहार के द्वारा हुआ है अथवा उलाहना के माध्यम से। तीन-चार पंक्तियों में रची जाने वाली ठुमरी की बंदिशों को वे बाइयाँ अपनी अदायगी के समय बार-बार दुहराते हुए नए-नए भावों द्वारा व्यक्त करती थी ल इसमें अभिनय और कथक नृत्य महत्वपूर्ण होता था। हर बार एक नए भाव और नई अभिव्यक्ति द्वारा इनका नृत्य, देह के लयात्मक संयोजन द्वारा संभव होता था।"[5]

इस तरह के कई गीत हिंदी फिल्मों मे देखे जा सकते हैं जिनमें हम हाले दिल सुनाएंगे (मधुमती), हमरा कहा मानो राजा जी (दुल्हन एक रात की), साकिया आज मुझे नींद नहीं आएगी (साजन, बीबी और गुलाम) आदि फिल्मों में जब भी इस तरह की शैली की बात की जाएगी तो पाकीज़ा फिल्म की बात स्वाभाविक है। "इस फिल्म में चार मुजरे – 'इन्हीं लोगों ने ले लीना दुपट्टा मेरा', 'ठाड़े रहियों ओ बाँके यार हो' 'चलते-चलते यूँ ही कोई मिल गया था' और 'तीर-ए-नजर देखेंगे' बिल्कुल उसी तरह व्यक्त होते हैं जैसा कोठों में प्रचलित संगीत में ठुमरी और दादरा की अदायगी द्वारा निबाहा जाता है।"[6] " 'ठाड़े रहियो' और 'चलते-चलते' महफ़िल परंपरा की दो पारंपरिक छवियों खड़ी महफ़िल और बैठकी महफ़िल का चित्रण करते हैं।"[7] 'ठाड़े रहियो' का निर्देशन लच्छु महाराज ने किया था, इस खड़ी महफ़िल पर आधारित मुजरे में पैरों और हस्त मुद्राओं का संचालन कथक शैली में किया गया है। यह गाना बनारस के मशहूर दादरा 'ठाड़े रहियों ओ बाँके श्याम हो' से लिया गया है।

मुजरा शैली के लिए एक और फिल्म 'उमराव जान' के गानों की ओर दृष्टि भी आवश्यक है। 'दिल चीज क्या है' जुस्तजू जिसकी थी उसको तो न पाया हमने', 'ये क्या जगह है दोस्तों ' आदि इस फिल्म के प्रसिद्ध गीत हैं, जिन्हे कोठे के परिवेश में ढाला गया। "कोठे का परिवेश रचने में जिस तरह की पारंपरिक ठुमरी, दादरा नुमा गीतों के बजाय इस फिल्म में तीन मुजरा गीत आधुनिक किस्म की गजलें थी, जिन्हें संगीत के लिहाज से मुजरा के प्रारूप में ढाला गया था। इसमें संगीत खय्याम का था और

बोल शायर शहरयार के थे।"[8] हिंदी सिनेमा में मुजरा शैली के गीतों के लिए इन दोनों फिल्मों के गीतों का गीतों के बोल से लेकर संगीत और फिल्म में उसकी अदायगी के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान है।

ग़ज़ल शैली –

धीरे-धीरे फिल्मों में गजलों का भी प्रयोग होना शुरू हुआ और हिंदी फिल्मों ने एक ओर कला को अपने कलात्मक रूप में संजोया। कुछ उदहारण 'दिल ढूंढ़ता है' 'होश वालों को खबर क्या', तुम इतना जो मुस्कुरा रही हो' आदि बड़े ही यादगार फ़िल्मी गजलों के रूप में याद किये जाते हैं। ग़ज़लों के माध्यम से सूक्ष्म भाव–संवेदना को फिल्मों में गायन के माध्यम से स्थान मिला। गजलों का प्रयोग कथानक में पार्श्व में बजने वाले गीत के रूप में भी किया गया जिसमें पात्र की मनोदशा को गज़ल के माध्यम से व्यक्त करने के लिए प्रयोग किया गया। निदा फ़ाज़ली, साहिर लुधियानवी, ग़ालिब, बशीर बद्र की गजलों से फिल्मों में संगीत और गायन का एक नया अध्याय शुरू हुआ।

कव्वाली शैली -

"कव्वाली एक विशेष प्रकार की गायन पद्धति अतवा धुन जिसमे कई प्रकार के गीत जैसे कसीदा, गज़ल, रुबाई आदि गाये जा सकते हैं। उपासना सभाओं में सूफी समवेत स्वर में कव्वाली गाना आरम्भ करते थे।"[9] कव्वाली अपने आप में गायन की एक अलग ही ऊर्जा संजोये है। कव्वाली के माध्यम से फिल्मों में संवादात्मक, सामूहिक और ऊर्जस्वी गायिकी को प्रवेश मिला। इसका फिल्मांकन भी एक विशिष्ट हाव-भाव, हाथों की मुद्रा के अलग अंदाज़ से ही होता था। इसके संगीत में तालियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। कव्वाली के माध्यम से भी कई भावों को अभिव्यक्ति मिली। अपने उद्भव में कव्वाली केवल उपासना की दृष्टि से प्रचलित थी लेकिन फिल्मों में इसका प्रयोग कथानक के आधार पर अलग-अलाग भावों को व्यक्त करने में हुआ। फिल्मों में पहली बार कव्वाली 1935 में फिल्म 'तलाश-ए –हक़' में दिखाई दी जिसका निर्माण जद्दनबाई ने किया था। फिर जीनत, मेला आदि फिल्मों में कव्वाली बहुत प्रसिद्ध हुई। जो कव्वाली बहुत पसंद की गयी वो थी अल हिलाल (1958) फिल्म की 'हमें तो लूट लिया मिल के हुसन वालों ने' इसके गायक थे इस्माइल आज़ाद। 1960 में 'चौदहवीं का चाँद' फिल्म की कव्वाली भी बहुत प्रसिद्ध हुई। वक्त की कव्वाली 'ए मेरी जोहराजबीं' आज भी उतनी लोकप्रिय है। कुछ प्रसिद्ध कव्वालियाँ 'तेरी महफ़िल में किस्मत आजमा कर हम भी देखेंगे', निगाहें मिलाने को जी चाहता है, राज की बात कह दूँ तो जाने महफ़िल में फिर क्या हो' आदि बरबस ही याद आते हैं।

फिल्मों में इनकी महत्ता इसके विशेष संगीत और फिल्मांकन का अनोखा अंदाज होने के साथ-साथ कथानक को विस्तार देने के लिए किया गया है जो दर्शकों को ऊर्जित बनाता है। अपनी कलात्मक शैली और प्रस्तुतिकरण के अनोखे अंदाज के कारण हिंदी फ़िल्मी गीतों में इनका स्थान अत्यंत विशिष्ट बन गया। 1935 से शुरू हुई इस शैली ने नब्बे के दशक तक अपनी शानदार उपस्थिति बनाए रखी। कव्वाली ने फिल्मी संगीत में एक अलग ही तरह का वातावरण निर्मित किया जो कभी सूफी, कभी आध्यात्मिक तो कभी लोक रंग की छटा में रंगा हुआ था।

सूफी संवेदना और आध्यात्मिक विस्तार -

कालान्तर में, लगभग 1990 के आस-पास फिल्मों में सूफी संगीत का समावेश हुआ और कई सुंदर गीत फिल्मों के माध्यम से साकार हुए। सूफी गीत ईश्वर के प्रति प्रेम, विरह और मिलन जैसे भावों को व्यक्त करते हैं, जिनसे कहानी में भावनात्मक पहलुओं गहराई प्राप्त होती है, कुछ उदाहरण 'जोधा अकबर' का 'ख्वाज़ा मेरे ख्वाज़ा' आदि। इस शैली के द्वारा रूहानी भाव, आध्यात्मिक संवेदना और आधुनिक संगीत संरचना को एक साथ प्रस्तुत किया गया।

पॉप, रैप और इलेक्ट्रॉनिक बीट –

तकनीक की अतिशयता ने संगीत में शब्दावली की अर्थवत्ता को खोया। ऐसे गाने निर्मित हुए जिनमें सारा ध्यान इलेक्ट्रॉनिक बीट और तेज गति से बजते संगीत पर केन्द्रित था, मुख्य उद्देश्य ऐसे गानों का निर्माण रहा जिन्हें पार्टी में चलाया जा सके और उस पर थिरका जा सके। ऐसे गानों से शब्दों की गरिमा और मर्यादा पर बहुत प्रभाव पडा। ये गाने पश्चिमी प्रभाव से प्रेरित हैं। उदाहरण के तौर पर 'धूम मचा ले' गीत।

नए प्रयोगों का दौर –

तकनीकी प्रगति और वैश्विक संगीत के प्रभाव से संगीत में कई प्रयोग हुए। यूँ देखा जाए तो हर संगीतकार ने अपनी प्रतिभा की छाप से हिंदी सिनेमा में कुछ अनूठे गीत की लड़ियों को जोड़ा। सबने अपने-अपने स्तर पर प्रयोग किये, किसी ने नए वाद्यों को

परम्परागत वाद्यों के साथ जोड़कर कुछ नायाब संगीत धुनें और गीत बनाये। किसी ने लोक की खुशबू से एक अलग वातावरण निर्मित किया।

फिल्मों में आर.डी. बर्मन जहाँ कई तरह के वाद्यों के प्रयोग के लिए जाने गए वैसे ही ए. आर. रहमान को भी अपने संगीत प्रयोग के लिए जाना गया। उनका प्रयोग संगीत के साथ गायन शैली में भी एक अलग प्रभाव लेकर आया। रॉक और शास्त्रीयता का संगम उनके गीतों में दिखता है। जैसे 'दिल से रे' गाना, इसी के साथ उन्होंने भाषा के स्तर पर भी फ्यूज़न हुआ जैसे 'जिया जले जान जले' गुलज़ार की शब्दावली और रहमान के संगीत से सजा गीत है। ऐसे ढेरों उदाहरण बिखरे पड़े हैं। प्रयोग कभी भी रुकते नहीं हैं, वर्तमान में भी कृत्रिम बुद्धिमता के प्रयोग से गीत-संगीत में प्रयोग हो रहे हैं।

निष्कर्ष –

अत: हम देख सकते हैं कि हिंदी सिनेमा में गीत-संगीत कई पड़ावों से गुजरा और शास्त्रीयता के मानकों से सजे गीत-संगीत जिन्हें शुद्ध रूप में समझना उनकी क्लिष्टता के कारण सबके सामर्थ्य की बात नहीं तो गीतों के माध्यम से सामन्य जन में रूचि निर्मित हुई। कलाओं पर आधारित गीतों ने गायन और नृत्य कला के प्रति समाज में रूचि सकारात्मक माहौल बनाने में योगदान दिया। कलाओं के कुछ इतने सुंदर प्रयोग उस समय हुए जिसने नए प्रयोगों के लिए द्वार खोला।

गीतों में लोकभाषा और लोक धुन के समावेश का सबसे सुंदर पक्ष यह रहा कि सिनेमा के माध्यम से भारतीय संस्कृति की विविध छटा से न केवल भारतीय नागरिक वरन सम्पूर्ण विश्व अवगत हुआ। भारत की जो पहचान विविधता में एकता के रूप में है उसको व्यक्त करने में सिनेमा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, क्योंकि चाहे किसी भी लोक परिवेश का कथानक रहा हो उसमे मूल संवेदनाओं की समानता ने सबको आपस में जोड़ा। हमारी सांस्कृतिक विविधता संगीत के क्षेत्र के माध्यम से एकता के भाव को पिरोने का माध्यम बनी।

समय के साथ तकनीकी प्रगति और वैश्विक प्रभाव से भारतीय संगीत परम्परा के और पश्चिमी वाद्य यंत्रों का सम्मिलित प्रयोग हुआ। जिससे सिनेमा के माध्यम से कला जगत में कई अनूठे गीतों की रचना हुई। फिल्मों में पारम्परिक गायन शैलियों के स्थान पर कुछ नयी शैलियों जैसे पॉप, रैप आदि का समावेश हुआ। लेकिन इन प्रयोगों के साथ गीतों में शब्दों के स्तर पर भी बहुत परिवर्तन आये। संस्कृतनिष्ठ, उर्दू, देहाती, लोक भाषा के सुंदर शब्दों से होते हुए शब्दों में द्विअर्थी शब्दावली का प्रयोग चिंताजनक भी बना। केवल तेज रिदम पर ध्यान रखते हुए कैसे भी शब्दों को उसमें पिरो देना संगीत का नकारात्मक स्वरुप लेकर भी उपस्थित हुआ। लेकिन कुछ अच्छे और सकारात्मक प्रयोगों ने संगीत के प्रति आश्वस्त भी किया है। वर्तमान में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रयोग से भविष्य में हिंदी गीतों पर क्या असर पड़ेगा, ये भी देखने वाली बात होगी। हो सकता है कि कुछ अद्भुत संगीत प्रयोग हमारे सम्मुख उपस्थित हों साथ ही शायद कुछ चुनौतियां। पहले के संगीतकारों और गायक / गायिकाओं ने अपनी प्रतिभा और अथक मेहनत से जो सृजन किया कहीं वैसी प्रतिभा तकनीक के आगे दम तो नहीं तोड़ देगी या उस प्रतिभा में तकनीक चार चाँद लगाएगी, ये तो भविष्य के गर्त में छुपा है। लेकिन अभी तक की हिंदी सिनेमा के गीतों की यात्रा के लिए यह कहा जा सकता है कि यह परंपरा की जड़ों से आरंभ होकर लोकप्रियता और आधुनिकता के साथ विकसित हुई और प्रयोगधर्मिता के साथ इसने नए आयाम ग्रहण किये। इस यात्रा ने शास्त्रीय संगीत को जीवित सहेजा, जीवित रखा, लोक–संस्कृति को पुनर्परिभाषित किया और उसके विस्तार का माध्यम बना एवं आधुनिक संगीत ने बदलते समय के साथ नई संवेदनाएँ व्यक्त करने में सहायता की। अत: हिंदी फिल्मी गीत संवाद, संगम और निरंतर विकास की प्रक्रिया है। ये केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि संस्कृति और सामाजिक परिवर्तन का दर्पण भी हैं।

संदर्भ –

1. लता सुर गाथा, यतीन्द्र मिश्र वाणी प्रकाशन, पृ.सं. 68
2. लता सुर गाथा, यतीन्द्र मिश्र वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 68
3. हमसफर, यतीन्द्र मिश्र, पेंग्विन प्रकाशन, पृ.सं. 34
4. हमसफर, यतीन्द्र मिश्र, पेंग्विन प्रकाशन, पृ.सं. 306
5. हमसफर, यतीन्द्र मिश्र, पेंग्विन प्रकाशन, पृ.सं. 84
6. हमसफर, यतीन्द्र मिश्र, पेंग्विन प्रकाशन, पृ.सं. 84
7. हमसफर, यतीन्द्र मिश्र, पेंग्विन प्रकाशन, पृ.सं. 84
8. हमसफर, यतीन्द्र मिश्र, पेंग्विन प्रकाशन, पृ.सं. 170

"दुष्यंत कुमार की गजल में सामाजिक और राजनीतिक चेतना" (दुष्यंत कुमार कृत "साये में धूप" के विशेष संदर्भ में)

पूनम प्रवीण पाटील,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर।
poonampatil3131@gmail.com
मो.नं.: 9822325757

शोध सारांश :

साहित्य में हिंदी गजल, उर्दू, फारसी से आई एक लोकप्रिय काव्यविधा है, जो प्रेम, विरह, दर्द और जीवन के गहरे भावों को संक्षिप्त और संगीतमय रूप में व्यक्त करती है, जिसमें प्रत्येक शेर स्वतंत्र होता है और मतला (पहला शेर) व मक्ता (अंतिम शेर) की विशिष्टता होती है; अमीर खुसरो से शुरू होकर कबीर, भारतेंदू, निराला और दुष्यंत कुमार जैसे कवियों ने इसे समृद्ध किया है, जो अब सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदनाओं का भी प्रभावी माध्यम बन चुकी है। आज हिंदी गजल केवल प्रेम तक सीमित न रहकर सामाजिक, राजनीतिक और दार्शनिक मुद्दों को भी उठाती है और यह साहित्य की एक सशक्त विधा बन चुकी है।

गजल को हिंदी में लाने का प्रयास अनेक विद्वानों द्वारा किया गया जिनमें कुछ नाम अग्रलिखित हैं, अमीर खुसरो कबीर, श्रीधर पाठक, जानकी,वल्लभ शास्त्री, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔंध', भारतेंदू हरिश्चंद, जयशंकर प्रसाद आदि। परंतु गजलों को सर्वप्रथम प्रतिष्ठित करने का कार्य दुष्यंत कुमार ने किया है। गजल का भी अपना एक विशेष रूप रहा हैं। अपनी कोमल और श्रृंगारिकता के कारण गजले सबका मन मोह लेती है। गजलों में मानवीय भावनाओं को व्यक्त करने की पूर्ण क्षमता होती है।

"गजल हृदय के अन्त: स्थल से उत्पन्न ऐसी अभिव्यक्ति है जो गजल गायक के हृदय से निकल सीधे पाठकों और श्रोताओं के हृदय में प्रविष्ट होकर उनको गजल के जीवन आधारित गहन विचार में खोने और उस पर बार-बार सोचने तथा साथ ही गजल में स्वयं और स्वयं के जीवन की सच्चाइयों को तलाशने हेतु बाह्य कर देती है। गजल गायक अपने जीवन के किसी व्यक्तिगत पहलू को ही प्राय: अपनी गजल का आधार बनाकर उसको स्वर देता है।"[1]

'हिंदी साहित्य में गजल विधा एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं लोकप्रिय विधा के रूप में प्रतिष्ठित है जिसको सर्वप्रथम दुष्यंत कुमार ने उसके पूर्व प्रचलित रुमानी श्रृंगारिक रूप से दूर कर सामान्य व्यक्ति के यथार्थ जीवन से जोड कर प्रस्तुत किया। गजल को काव्यरूप में प्रतिष्ठित करनेवाले प्रगतिशील कवियों में दुष्यंत कुमार का नाम शीर्षस्थ है। उन्होंने गजल के अलावा हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। साये में धूप उनका सर्वश्रेष्ठ गजल संग्रह है।"[2]

हिंदी गजल साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है, जो फारसी से ऊर्दू के जरिए हिंदी में आई और प्रेम, जुदाई और सामाजिक मुद्दों को अपनी खास शायरी शैली में बया करती है, जहाँ दुष्यंत कुमार जैसे कवियों ने इसे लोकप्रिय बनाया और आज भी यह लोकप्रिय विधा बनी हुई है, जिसमें कई समकालीन शायर सक्रिय हैं।

बीज शब्द : साहित्य, गजल, सामाजिक चेतना, राजनीतिक चेतना, देशभक्ति, मानवीय पीड़ा, अन्याय, परिवर्तनशील समाज, प्रेम, हिंसा और हत्या।

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में गजल विधा एक महत्त्वपूर्ण एवं लोकप्रिय विधा के रूप में प्रतिष्ठित है। कवि दुष्यंतकुमार से पहले हिंदी गजल विधा का रूप रोमानी और श्रृंगारिक था। सर्व प्रथम दुष्यंतकुमार ने गजल की लोकप्रियता देखकर उसे सामान्य आदमी के यथार्थ जीवन से जोडा है। दुष्यंत कुमार का जन्म 1 सितंबर 1933 को उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिले में राजपुर नवादा नामक गाँव में हुआ। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त की। आकाशवाणी भोपाल में असिस्टेंट प्रोड्युसर के पद पर कार्य किया है। हिंदी विभाग भोपाल में सहायक निर्देशक पद पर कार्यरत रहे। उनकी मृत्यू 30 दिसंबर 1975 में हुई। दुष्यंत कुमार ने गजल के अलावा हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपना बहुमोल योगदान दिया है। 'सूर्य का स्वागत', 'आवाजों के घेरे', 'जलते हुए वन का वसंत', 'साये में धूप'आदि उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं।

हिंदी की गजलों को स्थापित करने में दुष्यंत कुमार का योगदान सराहनीय है। दुष्यंत के अलावा शम शेर बहादुर सिंह, अदम गोंडवी, गोपाल दास नीरज, विश्वनाथ, शेरगंज गर्ग, त्रिलोचन सहित अन्य कवियों ने भी गजल विधा पर हिंदी में कार्य किया है।

दुष्यंत कुमार की "मैं जिसे ओढ़ता – बिछाता हूँ" इस गजल में प्रेम जीवन को सहारा भी देता है और असहाय भी बना देता है। इस गजल में दुष्यंत कुमार कहते है –

एक जंगल है तेरी आँखों में,
मैं जहाँ राह भूल जाता हूँ।"[3]

कवि कहता है कि प्रिय की आँखों में ऐसा आकर्षण और रहस्य है कि कवि वहाँ खो जाता है और रास्ता भूल जाता है। फिर कवि कहते है –

हर तरफ एतराज होता है
मैं अगर रोशनी में आता हूँ।"[4]

कवि कहते है कि हर तरफ अँधेरा और निराशा फैली हुई है, लेकिन अगर थोडी –सी रोशनी मिले तो कवि सही राह पर आ सकता है। दुष्यंत कुमार की इस गजल में प्रेम, अस्थिरता, टूटन, संघर्ष और इनामदार स्वीकारोक्ति की गजल है। इसमें प्रेम जीवन को सहारा भी देता है और असहाय भी बना देता है।

'हो गई है पीर पर्वत –सी पिछलनी चाहिए' इस गजल में कवि ने दु:ख, पीडा और अन्याय को व्यक्त किया है। कवि कहते है कि –

"हर सडक पर, हर गली में, हर नगर, हर गाँव में,
हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए।"[5]

कवि कहते है कि अन्याय इतना फैल चुका है कि, हर जगह शोषित लोग हैं और अब मुक पीडा नहीं, बल्कि चेतना और विरोध होना चाहिए। यह दुष्यंत कुमार की गजल क्रांति, प्रतिरोध और परिवर्तन की आवाज पर लिखी गयी है। दुष्यंत कुमार जनता को जगाना चाहते हैं कि, केवल सहने से कुछ नहीं बदलेगा, अब व्यवस्था को जड से हिलाना जरुरी है।

दुष्यंत कुमार की गजल 'तुम्हारे पाँवो के नीचे कोई जमीन नहीं' यह गजल राजनीतिक पाखंड, सत्ता की संवेदनहीनता और आम आदमी की पीडा को बेबाकी से उजागर करती है। अपनी गजल से दुष्यंत कुमार कहते है कि –

तेरी जुबान ही झूठी जम्हूरियत की तरह,
तू एक जलील-सी गाली से बेहतरीन नहीं।[6]

कवि कहता है कि यहाँ लोकतंत्र के नाम पर चल रही पाखंडी राजनीति पर चोट है। बोलने में मधुरता है, पर सच्चाई नहीं; गालियों से भी ज्यादा नुकसान देह है यह झूठ। फिर कवि कहते है कि -

तुम्हीं से प्यार जताएँ तुम्हीं को रखा जाएँ,
अदीब यों तो सियासी हैं कमीन नहीं।[7]

यहाँ शासक वर्ग जनता से प्रेम का दिखावा करता है, लेकिन उसी का शोषण भी करता है। यही राजनीति की सबसे बड़ी विडंबना है। कवि कहते हैं कि जिस व्यक्ती से बात की जा रही है, उसकी सोच वास्तविकता से कटी हुई है। उसके पास ठोस नैतिक आधार नहीं है, फिर भी उसे अपने गलत होने का एहसास नहीं हैं।

दुष्यंत कुमार की 'मत कहो, आकाश में कुहरा घना है' इस गजल में कवि कहता है कि सच को कहना अब लोगों को बुरा लगने लगा है। कवि कहता कि जो हालात बने हैं, उन्हें किसी व्यक्ति विशेष की आलोचना न समझा जाए, बल्कि यह पूरे तंत्र की सच्चाई है। कवि कहते है कि -

मत कहो आकाश में कोहरा घना है,
ये किसी की व्यक्तिगत आलोचना है।[8]

कवि कहता है कि जो हालात बने हैं; उन्हें किसी व्यक्ति विशेष की पूरे तंत्र की सच्चाई है। समाज मी उजाला दिखाने वाले प्रतीक - जैसे सूरज-भी अब अर्थहीन हो गए हैं, क्योंकि जनता ने सुबह से ही उम्मीद देखनी छोड दी है। अंत में कवि कहते है कि -

दोस्तो अब मंच पर सुविधा नहीं है,
आज-कल नेपथ्य में सम्भावना है।[9]

कवि निराश स्वर में कहता है कि अब मंच पर सच्ची सुविधा या समाधान नहीं बचा, आज कल केवल नाटक और दिखावे की संभावना ही दिखाई देती है। खुले मंच पर अब सच्चे समाधान नहीं दिखते, सारी संभावनाएँ पर्दे के पीछे सिमट गई हैं।

दुष्यंत कुमार की गजल "फिर धीरे-धीरे यहाँ का मौसम बदलने लगा है" इस गजल में समाज और राजनीति में आ रहे सुक्ष्म लेकिन गहरे बदलावों को "मौसम बदलने" के रूपक के माध्यम से व्यक्त किया है।

फिर धीरे-धीरे यहाँ का मौसम बदलने लगा है,
वातावरण सो रहा था अब आँख मलने लगा है।[10]

कवि कहता है कि समाज का माहौल धीरे-धीरे बदल रहा है। जो वातावरण अब तक सुस्त और जड था, उसमें चेतना आने लगी है और वे जागने लगे हैं। कवि विश्वास जताता है कि दबा हुआ सच, सोई हुई जनता और रुका हुआ बदलाव-सब अब सक्रिय हो रहे हैं और और परिवर्तन अवश्यभावी हो गए है।

दुष्यंत कुमार की प्रसिद्ध गजल "कैसे मंजर सामने आने लगे है" है। इसमें कवि ने समकालीन समाज-राज-नीति की विड़बनाओं पर तीखा व्यंग्य किया है।

अब तो इस तालाब का पानी बदल दो
ये कँवल के फूल कुम्हलाने लगे हैं।[11]

कवि कहते है, कि तालाब का पानी बदलने की बात दरअसल व्यवस्था को सुधारने की कोशिश है, लेकिन सत्ता में बैठे केवल ऊपर - ऊपर बदलाव कर फूल उगाने यानी दिखावटी सौंदर्य दिखाने में लगे हैं, जबकि भीतर सड़ांध बनी हुई है।

मछलियों में खलबली है, अब सफीने,
उस तरफ जाने से कतराने लगे हैं।[12]

मखलियों में खलबली है याने जनता में बेचैनी हो गयी है, पर सफेदपोश उन्हें सही दिशा में जाने से रोक रहे हैं। अंत में कवि कहता कहता है कि लोग पहले धार्मिक-नैतिक बातों की दुहाई देते है, फिर उसी उपदेश का इस्तेमाल का अपने स्वार्थ के लिए करते हैं।

"किसी को क्या पता था इस अदा पर मर मिटेंगे हम,
किसी का हाथ उठा और अलकों तक चला आया।"[13]

दुष्यंत कुमार के इस गजल में वह कहते हैं कि हमें यह अंदाजा ही नहीं था कि हमारी एक खास अदा, यानी हमारी चुप्पी, सहनशीलता या समझौता करने की आदत पर हम यूँ कुचले जाएँगे। वह कहते है कि किसी का हाथ बस चेतावनी के लिए उठेगा, बात अलकों तक ही सीमित रहेगी, लेकिन वहीं हाथ आगे बढ़ते-बढ़ते हिंसा और हत्या पहुँच गया है।

निष्कर्ष

दुष्यंत कुमार हिंदी काव्य गजल परंपरा मी विशेष स्थान रहते हैं और जनवादी कवि माने जाते हैं। जनवादी कविता की समय–सीमा 1967-80 ई के बीच मानी जाती है। जनवादी कविता को प्रगतिवादी कविता के अगले-चरण के रूप मी देखा जाता है। इसी दौर नक्सलवाद का उभार हुआ, पश्चिम बंगाल में वामपंथी सरकार बनी, जेपी का समाजवादी आंदोलन हुआ और इसी बीच देश ने आपात-काल भी झेला। अतः यह दौर देश के सामाजिक-राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में संक्रमण का काल था। इस दौर के कवियों ने अपने प्रगतिशील क्रांतिकारी विचारों के साथ संसदीय लोकतंत्र पर निशाना साधा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता को महत्व दिया और वंचितों के पक्ष में लिखते हुए उन्हें सामाजिक परिवर्तन के लिए मानसिक रूप से तैयार किया गया है।

'साये में धूप' दुष्यंत कुमार की गजलों का संग्रह है। इस किताब की लोकप्रियता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि 1975 में प्रकाशित इस गजल-संग्रह के मात्र 47 वर्षों में 73 संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इस किताब में दुष्यंत कुमार की 52 गजलों का संग्रह है। इन गजलों में कवि ने न केवल अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों को स्थान दिया है बल्कि, सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था पर भी करारा प्रहार है। शानदार गजलों के साथ ही इस किताब में गजलों के प्रस्तुतीकरण का तरीका भी बेहद आकर्षक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1) दुष्यंत कुमार, साये में धूप : दुष्यंत कुमार की गजलों का संग्रह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 14 (2023)
2) गायकवाड, डॉ. सुचिता जगन्नाथ, दुष्यंत कुमार की गजल में सामाजिक चेतना, आयुषी इंटरनेशनल इंटरडिसिप्लिनरी रिसर्च जर्नल, V(I) : 330-333

3) दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली संस्करण: 2019, पृष्ठ 62
4) दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली संस्करण : 2019, पृष्ठ 62
5) दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली संस्करणः 2019, पृष्ठ 30
6) दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली संस्करण : 2019, पृष्ठ 64
7) दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली संस्करणः 2019, पृष्ठ 64
8) दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2019, पृष्ठ 27
9) दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2019, पृष्ठ 27
10) दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2019, पृष्ठ 22
11) दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2019, पृष्ठ 14
12) दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2019, पृष्ठ 14
13) दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2004, पृष्ठ 60

*****

दुष्यंत कुमार, फैज़ अहमद फैज़ और साहिर लुधियानवी के हिंदी गीत और ग़ज़ल में प्रतिरोधी स्वर: एक सामाजिक विश्लेषण

सिनगरवार पांडुरंग गिरजप्पा
रामकृष्ण परमहंस महाविद्यालय
तांबरी विभाग, धाराशिव.जि. धाराशिव
भ्रमणध्वनी 9096909936
singarwarpandurang@gmail.com

सारांश

हिंदी गीत और ग़ज़ल साहित्य की महत्वपूर्ण विधाएँ हैं, जो न केवल प्रेम और सौंदर्य की अभिव्यक्ति करती हैं, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अन्याय के खिलाफ प्रतिरोधी स्वर भी उठाती हैं। यह लेख हिंदी गीतों और ग़ज़लों में विद्रोही तत्वों का विश्लेषण करता है, जहाँ कवि और गीतकार शोषण, दमन और असमानता के विरुद्ध आवाज़ बुलंद करते हैं। साठोत्तरी काल से लेकर समकालीन समय तक, इन विधाओं ने क्रांतिकारी चेतना को व्यक्त किया है, जैसे दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में इमरजेंसी के खिलाफ विद्रोह या फैज़ अहमद फैज़ के 'हम देखेंगे' में सामाजिक न्याय की मांग। विश्लेषण से पता चलता है कि ये स्वर जनवादी आंदोलनों से प्रेरित हैं और आज भी प्रासंगिक हैं।

बीज शब्द : प्रतिरोध, विद्रोह, ग़ज़ल, गीत, हिंदी साहित्य, क्रांति, शोषण, सामाजिक न्याय, दुष्यंत कुमार, फैज़ अहमद फैज़, साहिर लुधियानवी।

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में गीत और ग़ज़ल प्राचीन काल से ही भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम रही हैं। गीत मुख्यतः संगीतमय और लोकप्रिय होते हैं, जबकि ग़ज़ल उर्दू-फारसी परंपरा से आकर हिंदी में आत्मसात हुई है, जिसमें शेरों के माध्यम से गहन अनुभूतियाँ व्यक्त की जाती हैं | प्रतिरोधी स्वर इन विधाओं में तब उभरते हैं जब कवि या गीतकार सामाजिक विसंगतियों, राजनीतिक दमन और सांस्कृतिक शोषण के खिलाफ खड़े होते हैं। साठोत्तरी हिंदी ग़ज़ल में विद्रोह के स्वर विशेष रूप से मुखर हुए, जहाँ ग़ज़ल सौंदर्य अनुभूति से आगे बढ़कर व्यष्टिगत और समष्टिगत जीवन की तीव्रता को व्यक्त करने लगी। इसी प्रकार, हिंदी फिल्मी गीतों में साहिर लुधियानवी जैसे गीतकारों ने सामाजिक प्रतिरोध को स्थान दिया। यह लेख इन स्वरों की पड़ताल करता है, जो हिंदी साहित्य को जनवादी बनाते हैं।

शोध के उद्देश्य

हिंदी गीत और ग़ज़ल में प्रतिरोधी स्वरों की ऐतिहासिक विकास यात्रा का अध्ययन करना।
प्रमुख कवियों और गीतकारों के उदाहरणों के माध्यम से विद्रोही विषय-वस्तू का विश्लेषण करना।
इन स्वरों के सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव को समझना।
समकालीन संदर्भ में इनकी प्रासंगिकता को उजागर करना।

शोध पद्धति

यह शोध गुणात्मक है, जिसमें माध्यमिक स्रोतों का उपयोग किया गया है। साहित्यिक ग्रंथों से प्राप्त सामग्री का विश्लेषण किया गया। प्रमुख विधि में विषय वस्तू का विश्लेषण शामिल है, जहाँ प्रतिरोधी स्वरों को शोषण, क्रांति और न्याय जैसे विषय-वस्तू में वर्गीकृत किया गया। उदाहरणों के लिए प्रसिद्ध गीत और ग़ज़लों का चयन किया गया, जैसे दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें और फैज़ की रचनाएँ।

विश्लेषण :

हिंदी गीत और ग़ज़ल में प्रतिरोधी स्वर मुख्यतः प्रगतिशील और जनवादी आंदोलनों से प्रभावित हैं। ग़ज़ल, जो मूलतः प्रेम-वासनात्मक थी, हिंदी में सामाजिक शोषण और राजनीतिक दमन के खिलाफ विद्रोही बन गई। साठोत्तरी काल में, ग़ज़ल ने विद्रोह के स्वरों को अपनाया, जहाँ कवि न केवल व्यक्तिगत पीड़ा व्यक्त करते थे, बल्कि सामूहिक संघर्ष को भी आवाज़ देते थे। इसी प्रकार, गीतों ने लोक जीवन और संस्कृति से जुड़कर प्रतिरोध को लोकप्रिय बनाया, विशेषकर फिल्मी गीतों के माध्यम से। ये स्वर शोषण, जातिवाद, राजनीतिक दमन और सामाजिक असमानता जैसे मुद्दों पर केंद्रित हैं, जो कवियों की रचनाओं में उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट होते हैं।

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें: इमरजेंसी और सामाजिक विद्रोह

दुष्यंत कुमार (1933-1975) हिंदी ग़ज़ल के प्रमुख विद्रोही कवि हैं, जिनकी रचनाएँ 1970 के दशक की इमरजेंसी के खिलाफ तीखी आलोचना करती हैं। उनकी ग़ज़लें प्रेम और विद्रोह के मिश्रण से बनी हैं, जहाँ वे सत्ता के दमन को चुनौती देते हैं। उदाहरणस्वरूप, उनकी प्रसिद्ध ग़ज़ल "कहाँ तो तय था चिराग़ाँ हरेक घर के लिए / कहाँ चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए" में वे सामाजिक असमानता और सत्ता की विफलता पर प्रहार करते हैं। एक अन्य शेर "यहाँ दरख़्तों के साये में धूप लगती है / चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए" दमनकारी वातावरण की निंदा करता है। दुष्यंत की कविता जनकवि की तरह है, जो विरोध प्रदर्शनों में नारे बन जाती है, जैसे "तुम्हारे पाँव के नीचे कोई ज़मीन नहीं / क़ातिल यहाँ भी गया इधर भी गया तो क्या" जो सत्ता की अस्थिरता को उजागर करता है। उनकी रचनाएँ सामाजिक महत्व रखती हैं, क्योंकि वे सेंसरशिप और पाखंड के खिलाफ हैं, जो आज भी प्रासंगिक हैं।

साहिर लुधियानवी के फिल्मी गीत: पूंजीवाद और सामाजिक असमानता का विरोध

साहिर लुधियानवी (1921-1980) ने हिंदी फिल्मी गीतों के माध्यम से प्रतिरोध को जन-जन तक पहुँचाया। उनके गीत रोमांटिक होते हुए भी सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक मुद्दों पर आधारित हैं। उदाहरण के लिए, फिल्म 'प्यासा' (1957) का गीत "ये दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है" पूंजीवाद और असमानता की निंदा करता है: "ये दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है / जहाँ एक खिलौना है इंसान की हस्ती"। यह गीत शोषण की व्यवस्था पर सवाल उठाता है। एक अन्य गीत "जिन्हें नाज़ है हिंद पर वो कहाँ हैं" (प्यासा) सामाजिक विसंगतियों जैसे गरीबी और भ्रष्टाचार पर है। फिल्म 'फिर सुबह होगी' (1958) का "चीन-ओ-अरब हमारा" साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के खिलाफ है, जो आज के वैश्विक मुद्दों से जुड़ता है। साहिर के गीतों ने बॉलीवुड को सामाजिक प्रतिबद्धता दी, जो लाखों लोगों तक पहुँची।

फैज़ अहमद फैज़ की ग़ज़लें: क्रांति और न्याय की मांग

फैज़ अहमद फैज़ (1911-1984), हालांकि मुख्यतः उर्दू कवि, हिंदी-उर्दू साहित्य में प्रभावशाली हैं। उनकी ग़ज़ल 'हम देखेंगे' दमनकारी शासनों के खिलाफ क्रांति का प्रतीक है: "हम देखेंगे / लाज़िम है कि हम भी देखेंगे / वो दिन कि जिसका वादा है"। यह ग़ज़ल पाकिस्तान के ज़िया-उल-हक शासन के खिलाफ लिखी गई, लेकिन भारत में CAA-NRC विरोध में एंथम बनी। फैज़ धार्मिक प्रतीकों का उपयोग कर अत्याचार पर प्रहार करते हैं, जैसे 'अन-अल-हक़' का संदर्भ, जो विद्रोह की भावना दर्शाता है। उनकी रचनाएँ प्रतिरोध की कला हैं, जो उत्पीड़न के खिलाफ आशा जगाती हैं।

गोरख पांडे के गीत: जातिवाद और गुलामी के खिलाफ

गोरख पांडे (1945-1989) ने भोजपुरी और हिंदी गीतों में जाति व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह व्यक्त किया। उनका गीत "गुलामिया अब हम नाहीं बजायिबो" दासता और जातिगत शोषण के खिलाफ है, जो मजदूरों और दलितों की एकता की बात करता है। यह गीत बिहार के जन आंदोलनों में गाया जाता है, जहाँ वे कहते हैं कि अब गुलामी नहीं सहेंगे। गोरख की रचनाएँ व्यक्तिगत अनुभव से निकली हैं, जहाँ उन्होंने निचली जातियों के साथ घुलमिलकर जातिवाद का विरोध किया।

समकालीन उदाहरण: निरंतरता और नवीनता

समकालीन हिंदी ग़ज़ल और गीत में प्रतिरोध जारी है। पूजन साहिल की 'ज़ालिम हमें आज़माना' पुलिस दमन और फासीवाद के खिलाफ है। असीम की 'गरीबों की बस्ती' मजदूरों के लिए है। राहुल राम जैसे कलाकारों ने विरोध संगीत को जारी रखा। CAA विरोध में 'हम देखेंगे' आमिर के अलावा 'बेला चाओ' के भारतीय संस्करण लोकप्रिय हुए। अज़ीज़ और वरुण ग्रोवर की रचनाएँ आधुनिक विरोध स्थलों पर गूँजती हैं। ये स्वर ग़ज़ल को क्रांतिकारी बनाते हैं, जहाँ प्रेम क्रांति से जुड़ जाता है।

निष्कर्ष

हिंदी गीत और ग़ज़ल में प्रतिरोधी स्वर साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का हथियार बनाते हैं। ये विधाएँ शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाकर न्याय और समानता की मांग करती हैं, जो आज के राजनीतिक संकटों में और प्रासंगिक हो गई हैं। भविष्य में, इन स्वरों को संरक्षित कर युवा पीढ़ी को प्रेरित किया जाना चाहिए, ताकि साहित्य क्रांति का माध्यम बने रहे।

संदर्भ सूची

1. काम्बोज, आर. (2012, मई 4). साठोत्तरी हिन्दी ग़ज़ल में विद्रोह के स्वर. गद्यकोश. https://gadyakosh.org/gk/साठोत्तरी_हिन्दी_ग़ज़ल_में_विद्रोह_के_स्वर' । रामेश्वर_काम्बोज 'हिमांशु'
2. माथुर, जे. (2018, अप्रैल 5). The heart-conquering Ghazals from Hindi movies. जे. माथुर ब्लॉग. https://jmathur.wordpress.com/2018/04/05/the-hear t-conquering-ghazals-from-hindi-movies/
3. द लाइव वायर. (2020, सितंबर 14). Music as a Form of Protest: 11 Songs From Across India That Stand for Justice. द वायर.
4. https://livewire.thewire.in/livewire/music-as-a-form-of-protest-11-songs-from-across-india-that-stand-fo r-justice/
5. डाक. (2025, जून 1). Daak Weekly: Poetry of Resistance and Revolution. सबस्टैक. https://daak.substack.com/p/daak-weekly-poetry-of -resistance
6. सिंह, पी. (n.d.). हिंदी गजल का स्वरूप - विश्लेषण. इग्नाइटेड. https://ignited.in/index.php/jasrae/article/download/10955/21713/54247

*****

लोकगीत साहित्य व संस्कृति

डॉ.अंजली महेश उबाळे
दत्ताजीराव कदम आर्ट्स,सायन्स अँड कॉमर्स,
कॉलेज इचलकरंजी, सहाय्यक प्राध्यापिका
मो.नं.9561363346
anjaliubale13@gmail.com

सारांश :-

लोकगीत, साहित्य और संस्कृति एक-दूसरे के साथ जुडे हुए है, जिन्हें हम किसी भी समाज की आत्मा को अभिव्यक्त करनेवाले प्रमुख माध्यम के रूप मे देखते है। लोकगीत ग्रामीण समाज जीवन, वहाँ की संस्कृति की पहचान करा देते है। यह गीत विशिष्ट अवसर तथा त्योंहारों के समय की मौखिक परंपरा है, जो एक दूसरे तक हस्तांतरित की जाती है। इन गीतों में लोगों की आस्था, भावना, अनुभव एवं परंपरा आदि सहज रूप से अभिव्यक्त होते है। अत: यह कहना अनुचित न होगा कि, लोकगीत जनसामान्य के जीवन से उपजे होते है। किसी भी समाज की संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग लोकगीत है। जिनका यथार्थ चित्रण साहित्य में कर साहित्यकार इन लोकभावनाओं आस्थाओं एवं विश्वासों को साहित्य के माध्यम से सुरक्षित कर उन्हें स्थायित्व प्रदान करता है। जब की संस्कृति समाज के जीवनमूल्य और सामूहिक चेतना का आईना है। किंतु आज के इस आधुनिक युग मे ग्रामजीवन की पहचान करा देने वाले लोकगीतों की परंपरा नष्ट होती जा रही है। जिन्हें बचाने के लिए बहुत संघर्ष करना पडता है। इसका यथार्थ चित्रण हमें उपन्यासों में मिलता है।

बीज शब्द :- मौखिक, परंपरा, आस्था, भावना, स्थायित्व, जीवनमूल्य, सामूहिक चेतना, ग्राम जीवन, संघर्ष।

प्रस्तावना :-

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। क्योंकि उसमें समाज में घटित हर घटना एवं प्रसंग आदि का यथार्थ चित्रण किया जाता है। लोकगीत भारतीय ग्राम जीवन की आत्मा का यथार्थ प्रतिबिंब होते है। लोकगीतों की विशेषता ये है कि, ये लोगों द्वारा बनाए गए, लोक कंठ से लोक कंठ तक, एक पिढी से दूसरी पिढी तक हस्तांतरित किए जाते है। साथ ही इसमें किसी एक व्यक्ति की नहीं बल्की पूरे समाज जीवन की अनुभूती को शब्दबद्ध किया जाता है। समस्त समाज जीवन के सुख दु:ख रितीरिवाज, परंपराए, मान्यताएँ सामूहिक चेतनाएँ तथा जीवन संघर्ष आदि को अभिव्यक्त किया जाता है। यही वह कारण है कि लोकगीत साहित्य के जनसंस्कृतिक धरोवर का अमूल्य अंग माने जाते है। लोकगीतों का लोकसंस्कृति के साथ गहरा नाता है। लोक संस्कृति अगर माँ है तो लोकगीत उसकी संतान। ग्रामीण समाज जीवन में घटित होने वाली अनेक घटनाएँ जैसे तिज-त्योंहार, जन्म, विवाह, संस्कार, ऋतू परिवर्तन, देवी-देवतांओ की पूजा-अर्चना एवं खेती से जुडे कर्म आदि कई अवसरों पर ग्रामीणों द्वारा मिल जुलकर लोकगीत गाए जाते है। इसका कारण यह है कि, ग्रामीण समाज इनके माध्यम से अपने संस्कार मान्यताएँ एवं परंपराएँ सुरक्षित रखना चाहता है। सीधी, सरल, सहज भावनाप्रधान भाषा में गाए जाने वाले लोकगीत हृदय को छू जाते है। किंतु आज पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण लोकगीतों की परंपरा नष्ट सी होती जा रही है। इसका वास्तविक चित्रण हमें भारतवंशी, मॉरिशस निवासी अभिमन्यु अनत के उपन्यासों में मिलता है।

शोध आलेख का विश्लेषण :-

अभिमन्यु अनत जी के उपन्यासों में भारतीय संस्कृति के अंतर्गत आनेवाली यथासंभव सभी बातों का यथार्थ लेखा-जोखा प्रस्तुत होता है। जिसमें तीज-त्यौहार, उत्सव-पर्व, खेल-कूद, खान-पान, वेशभूषा, रहन-सहन, आदतें, मान्यताएँ, रीति-रिवाज, प्रथा-परंपराएँ, शकुन-अपशकुन आदि बातों को प्रामाणिकता से अभिव्यक्त किया है। इन पात्रों को देखने के पश्चात भारतीय ग्रामीण समाज जीवन ही हमारे सामने प्रकट होता है।

गुलामों की भाँति दु:खभरा जीवन जीनेवाले भारतीय मजदूरों ने जहाँ पर अपनी भाषा-धर्म-संस्कृति की रक्षा के लिए जान की चिंता नहीं की। लालच एवं दबावों के बाद भी ईसाईकरण की प्रक्रिया से अपने-आपको बचाया। हिंदी भाषा को सम्मान दिया तथा संस्कृति को बचाए रखा। जिसका चित्रण उपन्यासों में मिलता है, किंतु वर्तमान समय में संस्कृति के हो रहे पतन को भी लेखक समाजोन्मुख लाता है । शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान एवं औद्योगिक प्रगती के कारण परिवर्तित हो रहे जीवन को लेखक शब्दबद्ध करता है। साथ ही पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव तथा उसके अंधानुकरण के कारण मॉरिशस स्थित भारतीय लोगों की विसंस्कृतिकरण की

समस्या को भी शब्दांकित करता है। आधुनिक सोच, फिजुलखर्ची, फॅशनपरस्त, देखा-देखी की प्रवृत्ति आदि कई कारणों से संस्कृति की हो रही हानी को लेखक उपन्यासों में दर्शाता है तथा उसके सुधार की मांग करता है।

लोकगीत :-

'लोक' और 'गीत' इन दो शब्दों के योग से बने 'लोकगीत' शब्द का सामान्य अर्थ लोक में प्रचलीत गीत, लोकनिर्मित गीत अथवा लोकविषयक गीत है। सामान्यतः लोकगीतों के रचियेता अज्ञात होते हैं तथा वह किसी व्यक्ति विशेष की अनुभूति न होकर संपूर्ण समाज जीवन की अनुभूति होती है। म. गांधी जी के शब्दों में कहा जाए तो, "लोकगीतों में धरती गाती है, पहाड गाते हैं, नदियाँ गाती हैं, फसलें गाती हैं, उत्सव, मेले, ऋतुएँ और परंपराएँ गाती हैं।"[1] लोकगीत ग्रामीण संस्कृति की पहचान करा देते हैं। यह गीत विशिष्ट अवसर तथा त्यौहारों के समय गाए जाते हैं। लोकगीतों में लोगों का धार्मिक भाव रहता है। लोकगीत लोककंठ की मौखिक परपरा है जो एक से दूसरे तक हस्तांतरित की जाती है।

लोकभाषा में गाए जानेवाले लोकगीत मुख्यतः अपनी भाषा, संस्कृति, सुख-दुःख की अनुभूतियाँ एवं भावनाओं का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। क्षेमेंद्र सुमन और मल्लिक के शब्दों में, "लोकगीत जनसाधारण के जीवन के सन्निकट होते हैं और उसमें मानवजीवन की वासना, प्रेम, घृणा, लालसा तथा उल्हास-विषाद आदि विषयक उन प्रारंभिक अनुभूतियों का चित्रण होता है।"[2] अर्थात लोकगीत ही लोकसंस्कृति एवं लोकजीवन के वास्तविक परिचायक होते हैं।

मॉरिशस समाज जीवन में भारतीय संस्कृति की पहचान करा देने वाले लोकगीतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन भोजपुरी लोकगीतों में मुख्यतः "होली, कजरी, आल्हा, ठूमरी आदि प्रसिद्ध है, जिनसे लोकजीवन की जानकारी मिलती है। 'क्रिओली सेगा (लोकगीत) का भी समाज में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान है.."।[3] यद्यपि कुली-मजदूरों को अपनी सांस्कृतिक धरोहर लोकगीतों को गाने के लिए भी गोरे-मालिकों की पाबंदियों का सामना करना पड़ा है। उनके भय और आतंक से पीड़ित मजदूरों में चेतना और संघर्ष की लहर दौड़ाने के लिए आगे बढ़ता है 'लाल पसीना' उपन्यास का नायक किसन। कुंदन की सहायता से किसन मजदूरों को अपने पर हो रहे अन्याय-अत्याचार का विरोध करने के लिए संगठित करता है। खेतों में काम करनेवाले मजदूर किसन और कुंदन की उपस्थिति में एक स्वर में गा उठते हैं,

"रतवा भयानक बीत गयल भैया,
टूट गयल नींदवा हमारी हो भैया
अगेवा बढ़न को ओरी बढ़न को।

पहाड़ी के नीचे दूर तक फैले उन खेतों में यह पहला अवसर था जब मजदूरों के स्वर स्वच्छंदता के साथ बाहर आकर वातावरण में गूँज सके। पहली बार हवा और लोगों की साँसे भय से मुक्त थीं"[4]। अतः स्पष्ट है विपरीत स्थिति में भी भारतीय मजदूरों ने अपनी लोकगीतों की परंपरा को जीवित रखने का प्रयास किया है।

लोकगीत आंतरिक पीड़ा, दुःख-दर्द एवं वेदना की अभिव्यक्ति का भी माध्यम रहे रहे हैं। अतः जाँते पर जंतसार गाती हुई औरतें अपनी अंतरिक यातनाओं को इन गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करती हैं। 'और पसीना बहता रहा' उपन्यास का हरि मजदूरों का हिमायती है अतः वह उनके लिए संघर्षरत दिखाई देता है। दृष्टव्य है- "जब भी उसके यहाँ चक्की चलती और औरतें कजरी गाती तो वह उन गीतों की भीतरी पीड़ा से काँप उठता था। न जाने कब से ये औरतें उनमें घुले दर्द को सहती, देखती, सुनती गाती चली आ रही हैं"[5]। अपने दुःख-दर्दों को लोकगीतों के माध्यम से वाणी देने का प्रयास किया है।

यद्यपि अभाव एवं अत्याचारों के बीच में भी भारतीय मजदूरों ने मॉरिशस में लोकगीतों की परंपरा को जीवित रखा है किंतु आजकल हमारी यह परंपरा पीछे छूटती-सी जा रही है। उसकी जगह अश्लिल की अभिव्यक्ति करनेवाले क्रिओली सेगा तथा फिल्मी गीत ले रहे हैं। 'कुहासे का दायरा' उपन्यास का भगत फिल्मी गीतों के जमाने में भी अपनी लोकगीतों की परंपरा को जीवित रखने के लिए संघर्षरत दिखाई देता है। दृष्टव्य है, "आजकल के फिल्मी गीतों के कारण उसके अपने गीतों का महत्त्व चाहे गिर गया था, फिर भी भगत उन गीतों से और कुछ न सही अपने पुराने दिनों को एक बार फिर से जी लिया करता था"[6]।

'मेरा निर्णय' उपन्यास में भी लेखक ने मॉरिशस की लुप्त होती जा रही लोकगीतों की परंपरा पर चिंता व्यक्त करती हुई लंदन में रहकर लौटी अमिता को दर्शाया है। परिवर्तन के नाम पर गाँव की गायब होती जा रही मूल्यवान धरोहरों के कारण अमीता को बहुत दुःख होता है।

अतः यह कहना अनुचित न होगा कि मॉरिशस में भारतीय संस्कृति की पहचान करा देनेवाले लोकगीतों का प्रचलन है किंतु अब आधुनिक चकाचौंध में ये लोकगीत पीछे छूटते जा रहे हैं। आधुनिक रहन-सहन में गायब से होते जा रहे हैं।

निष्कर्ष :-

अभिमन्यु अनत जी के उपन्यासों में चित्रित सांस्कृतिक बातों का अध्ययन करने के पश्च्यात समस्त मॉरिशस समाज जीवन हमारे आँखों के सामने प्रकट होता है। जिसमें मॉरिशस की अनजान धरती पर अपनी पहचान बनाने के लिए अपने अस्तित्व एवं अस्मिता को बचाने के लिए संघर्षरत भारतीय मजदूरों की व्यथा-कथा प्रस्तुत होती है। सांस्कृतिक संघर्ष के अंतर्गत देश को आजादी मिलने के पूर्व से लेकर अब तक अपनी सांस्कृतिक विरासत को बचाए रखने के लिए भारतीय लोगों द्वारा किए गए संघर्ष का यथार्थ चित्रण मिलता है। आधुनिकीकरण तथा पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के परिणाम स्वरूप विसंस्कतिकरण की समस्या तथा उनके खिलाफ किया जानेवाला संघर्ष लेखक यथार्थता से शब्दबद्ध करता है। आज भी अपनी संस्कृति के प्रति लोगों के मन में जो लगाव है उसे अभिव्यक्त करता है।

अपनी भाषा को बचाने के लिए भारतीय मजदूरों द्वारा किया गया संघर्ष, रहन-सहन आ रहा बदलाव, खान-पान, वेशभूषा तथा केशभूषा द्वारा अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए प्रयत्न, पुराने गलत एवं समाजहित में बाधक रीति-रिवाज प्रथा परंपराओं का विरोध, तीज-त्यौहार, उत्सव पर्व के प्रति आस्था, खेल-कूद एवं मनोरंजन के द्वारा हो रहा शोषण तथा उसका विरोध करनेवाले सचेत पात्रों का भी चित्रण मिलता है। साथ ही भारतीय लोकगीतों की परंपराओं तथा विविध संस्कारों की रक्षा के लिए किए गए संघर्षों को शब्दबद्ध किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1) अभिमन्यु अनत –'और पसीना बहता रहा' प्रका.वर्ष 1993 पृ. क्र. 303
2) विरेन्द्रनाथ द्विवेदी – 'आधुनिक हिंदी कविता में लोक तत्व', विद्या प्रका. कानपुर,प्र.सं.2004 पृ.क्र. 37
3) क्षेमेंद्र सुमन और योगेंद्र कुमार मल्लिक –'साहित्य –विवेचन' आत्माराम अँड सन्स दिल्ली प्र.सं.1992 पृ.क्र.990-91
4) श्यामधर तिवारी-'अभिमन्यु अनत का व्यक्तित्व एवं कृतित्व' अभिनव प्रका.आगरा,प्र.सं.1997 पृ.क्र.229
5) अभिमन्यु अनत –'लाल पसीना' प्रका.वर्ष 1977 पृ. क्र. 118
6) अभिमन्यु अनत –'और पसीना बहता रहा' प्रका.वर्ष 1993 पृ. क्र. 53

*****

भोजपुरी और मैथिली के लोकगीतों में नारी चेतना

डॉ.आयेशाबेगम अब्दुलबारी रायनी

सारांश:

महिलाएं केवल पीड़ा का विलाप नहीं करती बल्कि गलत रूढ़ियों का विरोध भी करती है| महिलाओं का यह स्वर आदिकाल से ही कभी धीमा तो कभी मुखर रहा है और आज 21वीं सदी की महिलाओं ने लोकगीतों की इस कला को डिजिटल मंचों तक पहुँचा दिया है| इन लोकगीतों में स्त्री जीवन के बदलते स्वरूप को देखा जा सकता है| आज की आधुनिक स्त्री इन लोकगीतों में अपने अधिकारों , न्याय ,समानता की मांग करती दिखाई देती है| आज की स्त्री शिक्षित है , ज्ञानी है, उसके अनुभव परिपक्व हो रहे हैं और इन बदलते जीवन अनुभव को वाणी देने का महत्वपूर्ण कार्य स्त्री विषयक लोकगीतों ने किया है|

बीज शब्द: स्त्री अनुभव ,नारी चेतना ,भोजपुरी लोकगीत ,मैथिली लोकगीत ,महिला सशक्तीकरण ,स्त्री विमर्श ,प्रतिरोध ,नारीवादी दृष्टीकोण आदि|

भारतीय संस्कृति में लोकगीत केवल मनोरंजन का माध्यम ना होकर सामाजिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम रहा है| विशेष रूप से मैथिली और भोजपुरी के गीतों में स्त्रियों की विशेष भूमिका रही है I इन स्त्रियों ने अपने अनुभव, संघर्ष एवं पीड़ाओं को गीतों के माध्यम से वाणी दी है| अतः हम कह सकते हैं कि वह इन लोकगीतों की रचयिता एवं गायिका रही हैं| भारतीय समाज के स्त्रियों ने आज लोकगीतों को जिवंत बनाकर रखा है| विभिन्न पर्व-त्योहार, विवाह आदि के अवसर पर इन लोकगीतों को स्त्रियों के मुख से मुखरित होते हम देख और सुन सकते हैं|

लोकगीत भारतीय लोक परंपरा की आत्मा रहे हैं और इन गीतों को मुख्य रूप से स्वर देने का महत्व पूर्ण कार्य समाज के नारी वर्ग ने किया है| मीठा कंठ एवं कोमल वाणी भगवान की ओर से स्त्रियों को मिला वरदान है और जब लोकगीत स्त्रियों के मुख से गेतों का रूप लेते हैं तो उसका आस्वादन बडा ही मोहक होता है| विशेष रूप से मैथिली और भोजपुरी के लोकगीतों के गायन में स्त्रियों की यह भूमिका गहन रही है| यहां स्त्रियाँ केवल गायक ना होकर रचनाकार, संगीतकार एवं सूत्रधार भी होती हैं| स्त्री मुख से गीतों का यह प्रस्फुटन केवल गायन का एक प्रकार ना होकर ऐतिहासिक परंपरा का विकास भी है|

प्राचीन काल में जब लिपि का विकास नहीं हुआ था तब मानव अपने विचारों एवं संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए वाणी पर ही आश्रित था| तो वहीं स्त्रीयाँ अपने प्रेम, प्रसव, पीड़ा, पति-प्रेम ,वत्सल-प्रेम, विरह ,जीवन-संघर्ष आदि को पर्व-उत्सव के अवसर पर मौखिक रूप से अभिव्यक्त लगी| इस संदर्भ में डॉक्टर सत्यनारायण झा का कथन है कि-"स्त्री का अनुभव जब समाज की पीठ पर बोझ बन जाता है तो वह लोकगीत बनकर फूटता है|"1

मैथिली और भोजपुरी दोनों ही आंचल प्रदेश की स्त्रियों ने लोकगीतों के माध्यम से हिंदी साहित्य विधा को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है I नारी विषयक लोकगीतों को निम्न प्रकार से विभाजित किया गया है-

1.**सोहर** : बालकों के जन्मोत्सव में स्त्रियाँ अपने आप को माता के रूप में देखती है, तो वह सोहर गाती है|

2.सावन गीत : जहां स्त्रियाँ ऋतु परिवर्तन के प्रति अपने गीतों को साझा करती है, उसे सावन गीत कहते हैं

3.बारहमासा : वर्ष के बारह महीने में प्रेम तथा विरह गीतों की अभिव्यंजना की जाती है|

4.गारी गीत : विवाह आदि अवसरों पर स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले गीतों को गारी गीत कहते हैं| विवाह के विविध अवस्थाओं को विभिन्न प्रकार के गीतों के माध्यम से गाया जाता है|

5.विदाई गीत : विवाह के पश्चात जब घर की बेटियों को उनके ससुराल भेजा जाता है तो नारी जीवन के विस्थापन एवं सामाजिक रीति रिवाज को विदाई गीत के माध्यम से गया जाता है|

हिंदी के महान कवि विद्यापति जिन्हे मैथिल कोकिल की उपाधि दी गई है, मिथिला प्रदेश के महान कवि रहे हैं| कवि विद्यापति ने अपनी रचनाओं में राधा अर्थात स्त्री चित्रण का सशक्त वर्णन किया है| विद्यापति अपने 'पदावली' में स्त्री संदर्भ में लिखते हैं-

"कहि न सकहिं बिनु रोवन राधा
पिया बिसरल ,कइसे राहब"2

यहां एक स्त्री की विरह वेदना व्यक्त हुई है|

वही भोजपुरी के महान कवि भिखारी ठाकुर ने 'बिदेसिया' नाटक के माध्यम से अपने पति के शोषण एवं सामाजिक अन्याय पर तीखा प्रहार किया है| 'बिदेसिया' की नायिका अपना दु:ख व्यक्त करते हुए कहती है -

"पिया विदेशिया गेलन ,
छीन ले सजनी के चैन " 3

जिस प्रकार एक स्त्री अपने आभूषणों को आगे पीढ़ी-दर-पीढ़ी परंपरागत रूप से हस्तांतरित करती है,बिल्कुल उसी प्रकार भोजपुरी एवं मिथिला प्रदेश की स्त्रियों ने अपने लोकगीतों को अनेक पिढीयों तक पहुंचाया है| बच्चियाँ अपनी दादी-नानी से जिन गीतों को सुनती थी, वही वह अपने आने वाली पीढ़ी को मौखिक रूप से सुनाती थी| इस संदर्भ में डॉक्टर मधुरिमा झा का कथन है कि-"मिथिला में कोई स्त्री यदि विवाह के समय विदाई गीत ना गा सके तो उसकी परिपक्वता पर प्रश्न उठते थे|"4

इस प्रकार लोकगीतों की अनिवार्यता ने स्त्रियों को गायक बना दिया था| इस तरह वह संस्कृति एवं परंपरा की वाहक थी| इस प्रकार लोकगीत केवल संप्रेषण का माध्यम ना होकर एक प्रकार का सामाजिक पाठ भी होते थे| यह गीत स्त्रियों की आकांक्षाओं,संघर्षों एवं पारंपरिक सीमाओं की गाथा थे|

"सासू कहे दू रोटियाँ बेल
ननद कहै पानी भर
ए बहू ! तोरा कब मिलिहै चैन "5

यह गीत आज के महिलाओं के संदर्भ में भी उतना ही खरा उतरता है, जितना तत्कालीन महिलाओं पर|

इन लोकगीतों में नारी के केवल पीड़ित नहीं है,बल्कि आलोचक एवं विद्रोही भी है| समाज में चली आ रही दहेज प्रथा का विरोध करती हुई एक स्त्री कहती है-

"हम ना करब दहेज से बियाह
जियत-जियत देह जरी
बोल सखि! तोहके बियाह में का भेटाईल ?
एक कोठरी चुप्पी ,दुई आँसू "6

उपर्युक्त पंक्तियां इस बात का प्रमाण है कि महिलाएं केवल पीड़ा का विलाप नहीं करती बल्कि गलत रूढ़ियों का विरोध भी करती है| महिलाओं का यह स्वर आदिकाल से ही कभी धीमा तो कभी मुखर रहा है और आज 21वीं सदी की महिलाओं ने लोकगीतों की इस कला को डिजिटल मंचों तक पहुँचा दिया है| इन लोकगीतों में स्त्री जीवन के बदलते स्वरूप को देखा जा सकता है| आज की आधुनिक स्त्री इन लोकगीतों में अपने अधिकारों , न्याय ,समानता की मांग करती दिखाई देती है| आज की स्त्री शिक्षित है , ज्ञानी है, उसके अनुभव परिपक्व हो रहे हैं और इन बदलते जीवन अनुभव को वाणी देने का महत्वपूर्ण कार्य स्त्री विषयक लोकगीतों ने किया है|

भोजपुरी एवं मैथिली के लोकगीतों में स्त्री जीवन :

किसी समाज में नारी की संरचना, नारी संघर्ष , नारी विकास एवं अधिकारों को लोकगीतों में दर्शाया जाता है| इन गीतों में नारी जिस प्रकार अपने अर्थ गर्भित संवेगों को वाणी देता है, उससे उसकी परिपक्वता का ज्ञान होता है| मैथिली एवं भोजपुरी के लोकगीतों में नारी जीवन की हर अवस्था (बाल अवस्था, किशोर अवस्था एवं वृद्धावस्था) एवं नारी रूपों को (माँ,बेटी ,बहन , पत्नी, मातृत्व ,गर्भधारण ,पतिव्रता , त्याग) में समेटा गया है|

स्त्री जीवन में सबसे बड़ा परिवर्तन उसके विवाह के समय आता है ,जब वह अपने घर- परिवार को छोड़कर विदा होती है| मैथिली में अनेक विदाई गीतों की रचना हुई है| इन गीतों के माध्यम से एक लड़की अपना दु:ख व्यक्त करते हुए कहती है कि-

"हमार बाबुल के अंगना ना भावे ससुरारी
काहे तू बिदेसिया बनवले पिया"7

यहां स्त्री एक सामाजिक इकाई के रूप में सामने आती है ,जिसे नई व्यवस्था में बिना उसकी मर्जी के शामिल होना पड़ता है| यह गीत नारी जीवन का विस्थापन गीत है|

विवाह के बाद नारी जीवन का अगला पड़ाव मातृत्व है| जिन गीतों में मातृत्व की चर्चा होती है उन गीतों को 'सोहर' कहा जाता है I सोहर में मातृत्व को लेकर दोहरे अनुभव मिलते हैं| जहां एक और पुत्र प्राप्ति को लेकर उल्लास तो कन्या जन्म के समय समाज द्वारा स्वीकार्यता ना मिलने का दु:ख मुखरित होता है|

भोजपुरी प्रदेश में घरेलू श्रम, कृषि एवं पशुपालन में स्त्रियों की भागीदारी पुरुषों के समान रही है I स्त्रियों ने अपने इस श्रम को कुछ इस प्रकार से व्यक्त किया है -

"दूध दुहब, गोबर पाथब
अंगना झारबा, चूल्हा तापबI"8

उपर्युक्त पंक्तियों में स्त्री अपने श्रम कार्यों की सूची प्रस्तुत कर रही है| मिथिला प्रदेश में धान रोपनी एवं गोधन पूजा जैसे अवसरों पर स्त्रियाँ इन श्रम गीतों को ढोलक आदि के साथ सुर-ताल से गाती है|

यदि प्रेम गीतों की बात करें तो स्त्री स्वर विद्रोही रहा है I स्त्रियां अपने शर्तों पर प्रेम पाना चाहती है| वह प्रेम को केवल पुरुष केंद्रित मानने से इंकार करती है I वह पति से अपने अधिकारों की मांग करती है|

कुछ गीतों में पितृसत्ता का विरोध दिखाई देता है| इन गीतों में दहेज ,बाल-विवाह ,अनमेल-विवाह,परदा-प्रथा जैसे कुरप्रथाओं का विरोध हुआ हैI साथ ही आज स्त्रियाँ शिक्षा, नौकरी, आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ रही है| आज स्त्री की आत्मनिर्भरता उसके स्वाभिमान से जुड़ी है I आज स्त्री न केवल समाज से अपना अधिकार मांगती है बल्कि अर्जित भी करना जानती है| इस संदर्भ में-

"हमार बाबुल पढवलस हमके
अभी लेखपाल बनके रहब |"9

भारतीय लोक परंपरा में लोकगीतों का संबंध केवल रीति-रिवाज,त्यौहार एवं पर्व तक सीमित ना रहा बल्कि वह स्त्री प्रतिरोध को भी व्यक्त करता है| स्त्रियों के दु:खों, आकांक्षाओं, अपेक्षाओं एवं स्वप्नभंग विद्रोह बनाकर लोकगीतों में अभिव्यक्त हुए हैं|

भारतीय पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों के लिए जहां प्रत्यक्ष टकराव संभव नहीं था वहां उन्होंने व्यंग्यबाण से काम लिया| व्यंग्यात्मक लोकगीतों के माध्यम से वह अपने प्रतिरोध एवं विद्रोह को अप्रत्यक्ष ढंग से अभिव्यक्त कर पाने में सफल रही| स्त्रियाँ इन व्यंग गीतों के माध्यम से सामाजिक असमानता एवं पारिवारिक अत्याचारों पर अपने क्रोध को अभिव्यक्त करती है| भोजपुरी के 'फगुआ' एवं 'कजरी' लोकगीतों में स्त्रियाँ पुरुष की दमनकारी प्रवृत्ति का बखान करती है|

भोजपुरी तथा मैथिली दोनों गीतों में ही विवाह संस्था की आलोचना हुई है| इस संदर्भ में एक नवविवाहिता कहती है कि-

"सासु के डर, ननद के ताना ,
कखन सुतब मोर मन भाना|"10

जब विवाह स्त्री के लिए आनंद का स्रोत न बनाकर चुनौती बन जाता है और तब स्त्री के लिए जीवन एक गुलाम जैसा बन जाता है| ऐसे में ना तो उसकी कोई नीजता रहती है और ना ही कोई स्वतंत्रता|

भोजपुरी लोकगीतों में स्त्रियाँ अपने लिए सामाजिक समानता एवं न्याय की मांग करती हैं| वह अपने श्रम एवं घरेलू कामों को पुरुषों के श्रम के समान समझती है| पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी श्रम करती है लेकिन उन्हें उनके सामान उसका कोई मूल्य नहीं मिलता| उनके श्रम को केवल सेवा के रूप में देखा जाता है| आज की स्त्री स्वयं को दुर्गा के रूप में देखती है| आज वह केवल दया, त्याग एवं शांति की प्रतिमा नहीं रही| वह अपने आप में देवी शक्ति को देखती है और धर्म एवं परंपरा के नाम पर होने वाले अत्याचारों का खुलकर विरोध करती है|

आज स्त्री आधुनिकता की और अग्रसर हो रही है| आज वह विकास के मार्ग पर है| आज ऐसा कोई क्षेत्र अछूता नहीं रहा जहां स्त्री ने कदम ना रखा हो और साहित्य तो समाज का दर्पण होता है| स्त्री की इस बदलती छवि ने लोकगीतों को भी प्रभावित किया है| बीते दो दशकों में 'डिजिटल क्रांति' आने के बाद समाज गतिशील हुआ है| अब लोकगीत केवल विवाह, जन्मोत्सव, पर्व और त्योहार के विषय नहीं रह गए बल्कि अब नारी अस्मिता, स्वतंत्रता की झलक भी लोकगीतों में मिल रही है| उदा -

"मोबाइल देना राजा जी
हमारा भी फेसबुकिया देखे के मन करेल|"11

भोजपुरी और मैथिली के प्रसिद्ध लोक गायक :

भोजपुरी में देवो मुरारी ,कल्पना परवारी आदि गायकों ने 'फेमिनिस्ट शैली' को अपनाकर घरेलू हिंसा, स्त्री श्रम आदि विषयों को उठाया है तो मैथिली में शारदा सिंहा , तुलसी देवी, कांति देवी आदि गीतकरों ने स्त्री संवेदना को निखारा है|

निष्कर्ष :

आज सोशल मीडिया का जमाना है| मोबाइल, टीवी, यूट्यूब ने लोकगीतों को कम समय में अधिक श्रोताओं तक पहुँचा है| दोनों बोलियों में इतना अंतर रहा है कि मैथिली लोकगीतों ने भाषा की गरिमा को बनाए रखा जबकि भोजपुरी लोकगीत कहीं-कहीं अश्लीलता के कटघरे में खड़े दिखाई देते हैं| इन लोकगीतों में स्त्री संघर्ष उभर कर आया है| आज नारी बराबरी एवं अधिकारों की मांग कर रही है| आज लोकगीत नारीवादी साहित्य अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम बन चुके हैं| लोकगीतों में नारी संघर्ष जितना उभर कर आया है उतना ही नारी विकास भी| आज लोकगीत न केवल मनोरंजन का साधन रहे हैं बल्कि स्त्री चेतना के स्वर बन चुके हैं|

संदर्भ :

1.सत्यनारायण झा ,भोजपुरी लोक संस्कृति , 1995 पृ.क्र.83
2. नरेंद्र झा ,विद्यापति पदावली , 1963, पृ.क्र.159
3.नीलम झा एवं रितु शर्मा ,मैथिली और भोजपुरी लोकगीतों में स्त्री अनुभव , पृ.क्र.17
4.डॉ .मधुरिमा झा ,मैथिली स्त्री गीतों की परंपरा , पृ.क्र.80
5.डॉ .रवींद्रनाथ सिंह ,भोजपुरी लोकगीतों में नारी स्तर,2009 , पृ.क्र.49
6.अर्चना राय ,लोकगाथा –स्त्री स्वर ,2015, पृ.क्र.125
7.भिकारी ठाकूर ,बिदेसिया , पृ.क्र.98
8.डॉ.प्रेमिल सिंह ,भोजपुरी कृषी गीत संग्रह ,201 4 , पृ.क्र.11
9.नया मैथिली जागरण गीत संग्रह ,2023 , पृ.क्र.22
10.डॉ.नीलिमा झा ,मैथिली विवाह गीतों में स्त्री स्वभाव ,2011 , पृ.क्र.55
11.शिव चर्चा एवं लोक गीतों की शैली , पृ.क्र.23

*****

'राष्ट्रकवि' प्रदीप के गीत

श्रीमती प्रतिभा दत्तात्रय अडगटला-मोहिते
मो. नं.- 9975155771
pratibhadmohite@gmail.com
शोध निर्देशक- डॉ. सजित जगन्नाथ खांडेकर

शोध सार:

'राष्ट्रकवि' प्रदीप के गीतों का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि, उनकी रचनाएं केवल फिल्मी गीत ही नहीं बल्कि उनके गीतों में राष्ट्रभक्ति, मानवता, नैतिकता, सामाजिक चेतना और आध्यात्मिकता दिखाई देती है। उनके गीत भारतीय जनमानस को जागृत करनेवाले, मूल्य बोध सिखानेवाले और निरंतर प्रेरणा देनेवाले हैं। इसी कारण प्रदीप जी हिंदी गीतकारों में 'राष्ट्रकवि' के रूप में प्रतिष्ठित है।

बीज शब्द: प्रदीप, गीत, राष्ट्र, चेतना, आन्दोलन

प्रस्तावना:

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का इतिहास पीड़ा, कड़वाहट,आत्मसम्मान, गर्व और गौरव तथा सबसे अधिक शहीदों के लहू को समेटे हैं। स्वतंत्रता के इस महायज्ञ में समाज के प्रत्येक वर्ग ने अपने-अपने तरीके से बलिदान दिए हैं। इस स्वतंत्रता के युग में साहित्यकारों ने अपना योगदान दिया हैं। अंग्रेजों को भगाने में कलमकारोंने अपनी भूमिका बखूबी निभाई है। उन्होंने सिर्फ कलम नहीं चलाई तो, स्वाधीनता आंदोलन में भी हिस्सा लिया। अपने शब्दों के माध्यम से आम लोगों के अंदर अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांति की मशाल जलाई। इनकी कविताएं, गीत क्रांतिकारियों के प्रेरणा स्थान बने। स्वाधीनता आंदोलन को अहिंसक बनाए रखने के लिए गांधीजी के संकल्प के कारण भारत में आजादी की अधिकतर लड़ाई कलम से लड़ी गई। यह कलम ही थी जिसने जनमानस को सचेत किया। आजादी हासिल करने में साहित्यकारों की कलम का योगदान बहुत ही महत्वपूर्ण है। हम जानते हैं कि, 15 अगस्त 1947 को हमारा देश स्वतंत्र हुआ। यह हमारे भारतवर्ष के जीवन में हर्ष और उल्हास का दिन था ।भारत में अनेक बोली,भाषाए जाती है। इनके साहित्यकारों ने अपना योगदान दिया है। स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी कवि और गीतकारों का योगदान प्रशंसनीय है। इनमें प्रमुख गीतकार है 'राष्ट्रकवि प्रदीप'। गीतकार प्रदीप जी के गीतों में निहित प्रखर राष्ट्र भक्ति, और राष्ट्रीय चेतना के कारण उन्हें जनमानस में गीतकार 'राष्ट्रकवि' के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। उनके योगदान के आधार पर ही लोगों ने उन्हें सम्मानित किया है।

'राष्ट्रकवि' सम्मान प्राप्त करने वाले प्रदीप जी के व्यक्तित्व के बारे में जानना आवश्यक है। प्रदीप जी का जन्म 6 फरवरी 1915 को उज्जैन(मध्य प्रदेश) में हुआ। उनका असली नाम रामचंद्र नारायण द्विवेदी था। उनकी शिक्षा इंदौर, इलाहाबाद और लखनऊ में हुई। उन्हें हिंदी काव्य में गहन रुचि थी। छात्र जीवन में ही वह कवि सम्मेलनों में भाग लेने लगे थे। उनकी रचनाएं खूब पसंद की जाती थी। 1952 में उनका विवाह चुन्नीलाल भट्ट की पुत्री सुभद्रा बेन से हुआ था। प्रदीप जी को अध्यापक बनना था। एक कवि सम्मेलन में 'बॉम्बे टॉकीज स्टूडियो' के मालिक हिमांशु राय ने उनकी रचनाएं सुनी। वे प्रदीप की रचनाओं से प्रभावित हुए। उन्होंने फिल्म 'कंगन' के गीत लिखने का प्रस्ताव रखा। इस प्रकार फिल्म उद्योग में गीतकार के रूप में कार्य प्रारंभ किया। उनकी पहचान एक फिल्मी गीतकार से कहीं आगे जाकर 'राष्ट्रकवि' के रूप में बनी। साधारण व्यक्तित्व वाले प्रदीप जी की मृत्यु 11 दिसंबर 1998 में मुंबई में हुई। "उन्हें दादासाहेब फालके पुरस्कार (1997 - 98) और संगीत नाटक अकादमी (1961) पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। मध्य प्रदेश सरकार ने उनकी स्मृति में 'कवि प्रदीप राष्ट्रीय सम्मान' की स्थापना की है।"1

हिंदी सिनेमा के गीत परंपरा में जीन गीतकारों ने राष्ट्रीय चेतना को स्वर दिया है उनमें गीतकार प्रदीप का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है।"हिंदी गीत परंपरा में प्रदीप ऐसे रचनाकार है जिन्होंने गीत को केवल मनोरंजन न मानकर राष्ट्रीय जागरण का माध्यम बनाया।"2 यही कारण है कि, स्वाधीनता आंदोलन से लेकर आज तक लोग उनके गीतों की सराहना करते हैं। गीतकार प्रदीप के गीतों में प्रमुख पक्ष राष्ट्रवादी चेतना है। प्रदीप जी की कई ऐसी रचनाएं है जिसमें गहरा राष्ट्र प्रेम है। "प्रदीप के गीतों में राष्ट्र,एक भावात्मक इकाई नहीं बल्कि नैतिक और सांस्कृतिक दायित्व के रूप में उपस्थित होता है।"3

आज के आधुनिक युग में गीतकार प्रदीप के गीत हमें राष्ट्र ,समाज और मानवता के प्रति उत्तरदायित्व का बोध कराते हैं। उनके गीत केवल अतीत की स्मृति नहीं बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी प्रेरणा स्रोत हैं।गीतकार प्रदीप जी के प्रमुख राष्ट्रीय गीत इस प्रकार है-

दूर तेरा गांव और थके पांव
फिर भी तू हरदम, आगे बढ़ा कदम
रुकना तेरा काम नहीं, चलना तेरी शान
चल -चल रे नौजवान।
फिल्म - बंधन 1940
गायक - अशोक कुमार, गायिका- लीला चिटणिस

यह गीत अपने समय में बहुत ही लोकप्रिय हुआ था ।आजादी के इस गीत ने नौजवानों में ऊर्जा का संचार भर दिया था । "प्रभात फेरियों में यह गीत गाया जाने लगा। यह गीत 1946 के 'नासिक विद्रोह' के दौरान सैनिकों का अभियान गीत बन गया।"4

आज हिमालय की चोटी ने फिर हमको ललकारा है,
दूर हटो ए दुनिया वालों हिंदुस्तान हमारा है।
फिल्म - किस्मत 1943
गायिका - अमीरबाई कर्नाटकी,गायक-खान मस्ताना

इस गीत के माध्यम से अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध जन भावना को स्वर दिया गया है।स्वतंत्रता की आकांक्षा को सशक्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस गीत के माध्यम से देशवासियों को जागृत किया है और उनसे राष्ट्र निर्माण में योगदान देने का आव्हान किया गया है। भारत की सांस्कृतिक विविधता और सभी धर्म के लोगों की एकता को दर्शाया गया है।भारत अपने सम्मान के लिए हर चुनौती का सामना करने के लिए तैयार है यह वर्णित किया गया है। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान इस गीत ने युवाओं में नई चेतना भरी थी। ब्रिटिश सरकार को यह गीत नागवार गुजरा था।

ए मेरे वतन के लोगों,जरा आंख में भर लो पानी,
जो शहीद हुए हैं उनकी जरा याद करो कुर्बानी।
गायिका - लता मंगेशकर
संगीत - सी. रामचंद्र

इस गीत को पहली बार 26 जनवरी 1963 को नई दिल्ली के नेशनल स्टेडियम में गाया गया था। सन् 1962 में जब चीन ने भारत पर हमला किया था तब इस भारत-चीन युद्ध में शहीद हुए भारतीय सैनिकों को श्रद्धांजलि के स्वरूप में प्रदीप जी ने यह गीत लिखा था। इस गीत में शहीद सैनिकों के त्याग, बलिदान और देश प्रेम को मार्मिक शब्दों में प्रस्तुत किया गया है। यह गीत देशवासियों को यह स्मरण कराता है कि, हमारी स्वतंत्रता और सुरक्षा के पीछे अनगिनत वीरों का बलिदान है। गीत सुनते समय शोक, गर्व और राष्ट्रप्रेम ये तीनों भाव एक साथ उभरते हैं ।यह गीत प्रदीप जी की राष्ट्रीय संवेदना का सर्वोच्च उदाहरण माना जाता है। इसमें शहीदों के स्मरण के साथ राष्ट्र के प्रति सामूहिक कृतज्ञताका भाव होने के कारण यह गीत आज भी राष्ट्रीय आयोजनों (कार्यक्रमों) में गाया जाता है।

प्रदीप जी के कुछ गीत बच्चे, युवा और नागरिकों में राष्ट्र निर्माण का संकल्प जगाते हैं। जैसे -

आओ बच्चों तुम्हें दिखाएं झांकी हिंदुस्तान की,
इस मिट्टी से तिलक करो ये धरती है बलिदान की
वंदे मातरम! वंदे मातरम!
फिल्म - जागृति 1954
गायक - स्वयं प्रदीप जी

यह गीत बहुत ही अनमोल है इस गीत के माध्यम से प्रदीप जी ने पूरे हिंदुस्तान की सैर करवाई है।साथ ही किस जगह पर किन वीरों ने अंग्रेजों को टक्कर दी थी इसका भी उल्लेख किया गया है। इस गीत में भारत की विविधता को एकता के सूत्र में पिरोया है।भारत की सांस्कृतिक, भौगोलिक और ऐतिहासिक विविधता को सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है।बच्चों में देशभक्ति की भावना जगाने वाला प्रसिद्ध गीत है।

'जागृति' फिल्म का प्रदीप द्वारा रचित दूसरा प्रसिद्ध गीत है -

हम लाए हैं तूफान से कश्ती निकाल के,
इस देश को रखना मेरे बच्चों संभाल के।
फिल्म - जागृति 1954
गायक - मोहम्मद रफी

इस गीत में स्वतंत्रता के बाद राष्ट्र पुनर्निर्माण और सामाजिक जिम्मेदारी का आव्हान किया गया है। यह गीत संघर्ष के बाद आशा और विश्वास का प्रतीक बन जाता है।प्रदीप जी एकजुटता में विश्वास दिखाते हैं। इसमें भविष्य के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण है । इस गीत में संदेश निहित है कि, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश को संभाल ने की जिम्मेदारी बच्चों पर है।

प्रदीप जी के गीतों में राष्ट्रीय चेतना के साथ गांधीजी के अहिंसात्मक स्वतंत्रता आंदोलन का वर्णन दिखाई देता है। जैसे -

दे दी हमें आजादी, बिना खड़ग, बिना ढाल,
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल
फिल्म - जागृति 1954
गायिका - आशा भोसले

इस गीत में 'साबरमती के संत' से हमें गांधी जी का संकेत मिलता है।गांधी जी ने देशवासियों को सत्य, अहिंसा के मार्ग पर चलने के लिए कहा।

प्रदीप जी के अन्य प्रसिद्ध गीत निम्नलिखित है -

देख तेरे संसार की हालत क्या हो गई भगवान,
कितना बदल गया इंसान।
फिल्म - नास्तिक 1954
गायक - प्रदीप जी
दुनिया बनाने वाले क्या तेरे मन में समाई,
काहे को दुनिया बनाई तूने काहे को दुनिया बनाई।
फिल्म - तीसरी कसम 1966
गायक - मुकेश

इन गीतों में भगवान से संवाद की शैली में समाज की नैतिक गिरावट ,अन्याय, शोषण और मानवीय पीड़ा को प्रस्तुत किया गया है।

गीतकार प्रदीप जी के भजन भी प्रसिद्ध है। जैसे -

- मैं तो आरती उतारू रे संतोषी माता की।
- यहां वहां जहां तहां मत पूछो कहां-कहां हे संतोषी मां।
- करती हूं तुम्हारा व्रत में स्वीकार करो मां ।

फिल्म - जय संतोषी मां 1975
गायिका - उषा मंगेशकर

इस फिल्म के गीत सुपर डुपर हिट हो गए थे। उपर्युक्त सभी गीत बहुत ही प्रचलित है जिन्हें आज भी भारतीय जनता सुनती है और गुनगुनाती है।

निष्कर्ष:

'राष्ट्रकवि' प्रदीप के गीतों का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि, उनकी रचनाएं केवल फिल्मी गीत ही नहीं बल्कि उनके गीतों में राष्ट्रभक्ति, मानवता, नैतिकता, सामाजिक चेतना और आध्यात्मिकता दिखाई देती है। उनके गीत भारतीय जनमानस को जागृत करनेवाले, मूल्य बोध सिखानेवाले और निरंतर प्रेरणा देनेवाले हैं। इसी कारण प्रदीप जी हिंदी गीतकारों में 'राष्ट्रकवि' के रूप में प्रतिष्ठित है।

संदर्भ ग्रंथ

1) कवी प्रदीप, भारतकोश, ज्ञान का हिंदी महासागर
2) त्रिपाठी रामविलास, हिंदी गीत परंपरा और राष्ट्रीय चेतना पृ. 112
3) मिश्रा शिवकुमार, हिंदी सिनेमा और गीतकार प्रदीप, पृ. 78
4) शर्मा श्रीराम, न्यूज़ 18 हिंदी, 11 दिसंबर 2023

*****

हिंदी गजलो में स्त्री विमर्श

सोनाली रावसाहेब घालमे
पीएच. डी. शोधार्थी
हिंदी विभाग,
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे
दूरभाष: 7350168189
ईमेल-sonalighalme86@gmail.com

शोध सारांश:

हिंदी गजल का इतिहास केवल प्रेम, विरह तथा सौन्दर्य तक सीमित नहीं रहा बल्कि समय के साथ सामाजिक यथार्थ और मानवी संघर्ष को भी उसने अपना विषय बनाया। यही वजह है, समकालीन हिंदी गजलों में स्त्री प्रेमिका के रूप में न होकर सचेत, संघर्षशील और आत्मनिर्णयशील व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत है। हिंदी गजलों की स्त्री केवल भोगवस्तु न होकर शोषण के विरोध में आवाज उठाती है। स्त्री सदियों से सामाजिक दबावों, पारिवारिक मर्यादाओं एवं पितृसत्ताक वर्चस्व में जीवन जीती आ रही है। अपने ऊपर हो रहे अन्याय के बावजूद भी वह मौन है, क्योंकि इसी समाज ने उसे चुप रहने को विवश बनाया है। स्त्री को त्याग, श्रम, मातृत्व, विवाह, आदि की प्रतिमूर्ति के रूप में देखा गया है। पर गजलकारों ने स्त्री को इस मर्यादाओं से बाहर निकालकर उसकी संवेदनाओं को, उसकी भावनाओं को महत्व देकर उसके अस्तित्व को स्वीकार कर समानता की बात की है। इसीलिए हिंदी गजलों में स्त्री के मौन संघर्ष के साथ-साथ न्यायिक संघर्ष को भी अभिव्यक्त किया है और सामाजिक व्यवस्था की चौकट को तोड़ने की कोशिश की है। मनुष्य के रूप में सुकर जीवन जीने के लिए उसने सामाजिक संरचना के मर्यादाओं को लांघकर अपने जीवन संघर्ष में तरक्की की है।

बीज शब्द: हिंदी गजल, स्त्री विमर्श, पितृसत्ता, आर्थिक, सामाजिक, अन्याय, अत्याचार, स्वतंत्रता आदि

प्रस्तावना:

गजल मूलत: फारसी-उर्दू की एक लोकप्रिय काव्य विधा है। गजल शब्द अरबी होकर भी अधिकांश गजलें फारसी में मिलती है। फारसी से ही यह विधा हिंदी तथा उर्दू में आई और समय के साथ-साथ गुजराती, पंजाबी, सिंधी और मराठी में भी विकसित हुई। परंतु हिंदी में इसका व्यापक विस्तार हुआ। अपनी भावनाओं को शेरों के माध्यम से अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम गजल है, जो गागर में सागर भर देने की क्षमता रखती है। मूलत: श्रृंगारिक भावों को अभिव्यक्त करने की विधा गजल रही है, परंतु समय के साथ इसमें काफी परिवर्तन आए और गजल वह हर स्थिति, हर भाव को अभिव्यक्त करने लगी जो सामाजिक जरूरत है। गजल शब्द मूलत: अरबी भाषा का है, जिसका अर्थ है- 'औरत से बातें करना'। 'गजल' शब्द फारसी का माना गया है, जिसका अर्थ है- 'मृगनयनी' तथा अंग्रेजी में इसे 'the conversation with women' कहा गया, जिसका अर्थ है-औरत से प्यार भरी बातें करना। लेकिन समय के साथ-साथ गजल ने विषय-वैविध्य को अपने में समाहित किया और आज की गजल उस हर स्थिति को बयां करती है, जिसमें सामाजिक, आर्थिक, राजकीय, सांस्कृतिक, सांप्रदायिक सच्चाई है। इसलिए उर्दू कवियों की गजलों का पारंपरिक रूप छोड़कर यह हिंदी में नए विषयों को अभिव्यक्त करने लगी। यही वजह है, हिंदी कवियों ने अपने आसपास की विषमताएँ, समस्याएँ, राजनैतिक भ्रष्टाचार, प्रशासन में व्याप्त तानाशाही तथा आम आदमी के सरोकारों से जुड़े विषयों को अपनी गजल का कथ्य बनाया, जो सुनने में रोचक भी है और सामाजिक कडुवाहटों की सच्चाई को भी सामने लाता है। गजल का नाम सुनते ही मन में एक प्रकार का सुरमई आवाज तैरने लगता है तथा मीर तकी मीर, निदा फाजली, जावेद अख्तर और मिर्झा गालिब की गजलें याद आती हैं। आधुनिक काल में फैज अहमद फैज, फिराक गोरखपुरी, साहिर लुधियानवी तथा बशीर बद्र, मुनव्वर राणा, राहत इन्दौरी आदि ने गजल विधा को सुवर्ण काल बनाया। इसमें राम अवतार त्यागी, बलवीर सिह 'रंग', चिरंजित तथा दुष्यंत कुमार आदि हिंदी कवियों ने ऐसी गजलें लिखीं, जिसके शेर आम आदमी के जबान पर आ गए। इतना ही नहीं दुष्यंत कुमार के गजल संग्रह 'साये में धूप' के सर्वाधिक संस्करण प्रकाशित हुए, जिसने कीर्तिमान स्थापित किए।

शोध आलेख का विश्लेषण:

काव्य के विभिन्न विषय हो सकते हैं, परंतु काव्य रचना के मूल में प्रेम है, वह प्रेम ईश्वर, समाज, विश्व, प्रेमिका, प्रकृति, धर्म तथा देश आदि पर हो सकता है। इसलिए हिंदी गजलकारों में अमीर खुसरो और कबीर के बाद भारतेन्दु, निराला, शमशेर, त्रिलोचन, शंभुनाथ शेष, हरीकृष्ण प्रेमी, चिरंजित, गोपालदास 'नीरज', रामावतार त्यागी आदि ने गजल परंपरा को सम्मानपूर्वक

आगे बढ़ाया। हिंदी गजल के संदर्भ में डॉ. रोहिताश्व अस्थाना लिखते हैं- "गजल वह गेयात्मक काव्य विधा है, जिसमें प्रेम की विभिन्न दशाओं के शब्दचित्र शेरों के माध्यम से प्रस्तुत कर प्रेम की क्रीड़ा-व्रीड़ा एवं कोमल अनुभूतियों के स्वर हो अथवा सामाजिक-राजनीतिक एवं हास्य-व्यंग्यात्मक भावभूति पर आम आदमी के मानस में दबी पीड़ा व छटपटाहट को वाणी दी गई हो और जो विषय वस्तु की दृष्टि से व्यापक होते हुए भी संक्षिप्तता एवं प्रभावोत्पादकता के गुणों से युक्त हो।"[1] अर्थात गजल में प्रेम के साथ-साथ सामाजिक तथा राजनीतिक स्थितियों के साथ आम आदमी का दबा-कुचला जीवन हो। डॉ. नगेन्द्र ने गजल की परिभाषा इस प्रकार बताई है-"गजल उर्दू का सर्वाधिक प्रसिद्ध और सरस भेद है। उसका स्थायी भाव प्रेम है, जिसमें रहस्यानुभूति, मस्ती, रिन्दी, धार्मिक विद्रोह, भावनाएँ संचारी रूप में ओत-प्रोत रहती है। विषय के अनुरूप उसका एक विशिष्ट काव्यरूप भी है, जो मतला, मक्ता, गिरह, काफिया और रदीफ में परिबद्ध होता है।"[2] इसमें गजल के पहले शेर को मतला कहते हैं, गजल के आखिरी शेर को मक्ता कहते हैं। शेर के भाव में गहराई, संकेत और द्विअर्थकता होती है अर्थात शेर का अर्थ सीधा न होकर परोक्ष होता है, इसे गिरह कहते हैं। वह अक्षर या समूह जो बार-बार शेरों में आकर शेरों को गजल के सूत्रों में बांधता है, उसे काफिया कहते हैं। गजल के शेरों के अंत में आनेवाले शब्दों में जिन शब्दों की बार-बार पुनरावृत्ति हो, उसे रदीफ कहते हैं। गजल के संदर्भ में डॉ. कुँवर बेचैन लिखते हैं- "गजल रेगिस्तान के प्यासे होंठों पर उतरती हुई शीतल तरंग की उमंग है। गजल घने अंधकार में टहलती हुई चिंगारी है। गजल नींद से पहले का सपना है। गजल जागरण के बाद का उल्लास है। गजल गुलाबी पंखुरी के मंच पर बैठी खुशबू का मौन स्पर्श है।"[3]

हिंदी गजल आम आदमी की पीड़ाओं, कुंठाओं और सामाजिक-राजनीतिक तथा आर्थिक विद्रूपताओं को बड़ी शिद्दत के साथ अभिव्यक्त करती हैं। इसमें किसान की पीड़ा, दलितों का आक्रोश, स्त्री की घुटन, किन्नर का दुख-दर्द तथा समस्त सामाजिक रीति-रिवाजों, अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियाँ, राजनीतिक षड्यन्त्र, भूख आदि विषयों पर गजलें लिखी गई , जो आम आदमी के जीवन को अभिव्यक्त करती है। आधुनिक काल की गजलों में नारी विमर्श, पर्यावरण, जीवन दर्शन, साहित्यिक बोध, परिवर्तन की प्रेरणा, आशावाद आदि विभिन्न विषयों पर चिंतन हो रहा है। स्त्री की आंतरिक द्वंद्वात्मक स्थिति को परवीन शाकिर ने अपने शेरों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। स्त्री जीवन की परस्पर अनुभूतियाँ, उसका दुख-दर्द, उसकी पीड़ा, उसके संघर्ष में इसलिए विशेष है ताकि वह जीवनभर केवल संघर्ष ही करती है। उसके जीवन की शुरुआत संघर्ष से होती है और अंत भी। फिर भी वह सम्मान नहीं पाती, समानता नहीं पाती, इतना ही नहीं मुक्त जीवन जीने का हक भी नहीं पाती। स्त्री की इन सब समस्याओं को जिम्मेदार है, यह पितृसत्ताक समाज, जो उसे दोयम के रूप में ही देखता है, पिटोरा केवल समानता का बजाता है। जैसे-

'लड़कियों के दुख अजब होते हैं, सुख उससे अजीब,
हँस रही है और काजल भीगता है साथ-साथ'

स्त्री का दुख केवल व्यक्तिगत पीड़ा नहीं बल्कि पितृसत्तात्मक संरचना का परिणाम है। स्त्री का सुख भी संदेह के घेरे में है क्योंकि क्या उसे हँसने का अधिकार है? क्या उसका आनंद सामाजिक स्वीकृति के अनुरूप है? इस प्रश्नों के जवाब मिलते है कि स्त्री का सुख भी नियंत्रित है, वह स्वायत्त नहीं है। इसलिए सुख, दुख से भी अजीब प्रतीत होता है। परवीन शाकिर स्त्री को संवेदनशील, सचेत और आत्मानुभूति से भरी मनुष्य के रूप में रखती है, जो हँसते हुए भी अपने आँसुओं की भाषा जानती है। यह आँसू सार्वजनिक न होकर निजी है और उसके होंठों पर हास्य भी है, यह उसकी पीड़ा का दोहरापन है।

हिंदी साहित्य में बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में महिला लेखन प्रचुर मात्रा में होने लगा किंतु गजल में यह न के बराबर था। पर बाद में जहीर कुरेशी ने अपनी गजलों में नारी जीवन को केंद्र में रखा। उनका एक शेर यहाँ प्रस्तुत है-

"आपने पत्नी को सारे सुख बराबर के दिए,
किंतु, मिल सकती नहीं उसको बराबर की जगह।"[4]

अर्थात जहिर कुरेशी स्त्री की मानसिक एवं सामाजिक स्थिति की यथार्थवादी आलोचना करते हैं। उनके गजलों की स्त्री केवल घरेलु भूमिका तक सीमित न रहकर एक ऐसे सामाजिक ढांचे में रखी है, जहाँ स्त्री-पुरुष समानता का दावा तो किया जाता है, पर स्त्री को कहीं भी समानता का स्थान नहीं मिलता। यह एक संरचनात्मक सामाजिक व्यवस्था है, जो स्त्री के अधिकारों का अभाव, निर्णय स्वतंत्रता की कमी और मानसिक दमन को संकेतात्मक भाषा में व्यक्त करती है। अंत: पुरुषप्रधान समाज में स्त्री से अपेक्षा की जाती है कि वह हर स्थिति के साथ समझौता करें, सहनशील बने और अपने ऊपर हो रहे अन्याय को चुपचाप सहे। यही चुप्पी उसके आत्मबोध और आत्मसम्मान को निरंतर घायल करती है। जहीर कुरेशी उपर्युक्त शेर के माध्यम से स्त्री को करूणा का पात्र नहीं बल्कि चेतन एवं संवेदनशील मनुष्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इसमें स्त्री के केवल बाहरी शोषण तक सीमित नहीं बल्कि

उसके अंतर्मन में उत्पन्न मानसिक तनाव, अस्मिता, संकट, और आत्मसंघर्ष को उजागर करके मानवीय अनुभवों की अभिव्यक्ति की है।

आज की स्त्री अपने अन्यायग्रस्त जीवन से मुक्ति पाने की कोशिश कर रही है, पर वह चाहकर भी अपनी स्थिति को बेनकाब नहीं कर सकी। इसका कारण है, हमारी पारंपरिक सामाजिक संरचना में स्त्री का दोयम स्थान। हमारे पितृसत्ताक समाज को स्त्री का श्रेष्ठत्व कल भी स्वीकार नहीं था, आज भी स्वीकार नहीं है और भविष्य में भी स्वीकार नहीं होगा, केवल समानता की बात की जाएगी, केवल मानवीय मूल्यों की बात की जाएगी क्योंकि यह समाज स्त्री कितनी भी उच्चशिक्षित हो जाए, उसकी ओर देखने का नजरियाँ नहीं बदलता। यही वजह है, यह समाज स्त्री को दासी न संबोधित कर घर की जिम्मेदारी संभालनेवाली स्त्री के रूप में करता है। केवल शब्द बदलने से स्त्री की स्थिति नहीं बदलती। फिर भी इतनी छटपटाहट के बाद स्त्री अपना मुक्त जीवन जीने की बहुत कोशिशें करती है। जहीर कुरेशी लिखते हैं-

"खारे सागर में फँसी तो न निकल पाई नदी,
उसने सागर से निकलने की बहुत कोशिश की।"[5]

यहाँ प्रस्तुत बिंब स्त्री की उस स्थिति का प्रतीक है, जहाँ से अर्थात सामाजिक संरचना से स्त्री बाहर निकलना चाहती है, पर वहाँ से निकलना उसके लिए असंभव हो रहा है। एक स्त्री केवल पारिवारिक बंधनों में जकड़ी नहीं रहती बल्कि वह उस सामाजिक बंधनों में जकड़ी जाती है, जहाँ केवल उससे अपेक्षाएँ की जाती है, उसके अस्तित्व का स्वीकार नहीं। विवाह के बाद स्त्री रिश्तों से ज्यादा उन भावनाओं से जुड़ती है, जो परंपरागत चौकट लांघने नहीं देती। शिक्षा, रोजगार, आधुनिकता की ओर स्त्री कितनी भी बढ़े किंतु पितृसत्ताक सोच उसे उसकी पीड़ा से मुक्त नहीं होने देती इसलिए वह अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करके भी स्वतंत्र जीवन नहीं जीती।

आधुनिकता के चलते स्त्री को स्वतंत्रता दी जाती है, पर उसे यह स्वतंत्रता देनेवाले होते कौन है? तो यह समाज होता है, जो स्वतंत्रता के नाम पर उससे भोगवस्तु के रूप में देखता है, जो परंपरा हमारे पुरखों से चली आ रही है। वैश्वीकरण के दौर में पितृसत्ताक समाज स्त्री को उसके मानवीय गुणों, बौद्धिक क्षमताओं तथा संवेदनशीलता के आधार पर न देखकर उसके बाह्यरूप को उपभोग एवं प्रदर्शन की वस्तु के रूप में देखता है। इसलिए महानगरीय आधुनिकता की आड़ में स्त्री केवल ऊपरी तौर पर आजाद हो रही है। पर यह उसकी आजादी नहीं है। नई वस्तुएं बैचने के तहत या बहुराष्ट्रीय कंपनियों के नए-नए प्रोडक्ट प्रदर्शित करने हेतु औरते 'रैम्प' पर थिरक रही है। मॉडल्स क्षेत्र की इसी मानसिकता पर जहीर कुरेशी का एक उत्तर-आधुनिक शेर है-

"अति पारदर्शी वस्त्रों की फैशन-परेड में,
हाथों से तन छिपाना, जरूरी नहीं लगा।"[6]

अर्थात देह का प्रदर्शन करके स्त्री आर्थिक, शारीरिक, मानसिक, या वैचारिक शोषण से मुक्त नहीं होती बल्कि आत्मसंघर्ष करती है।

हमारा इतिहास साक्षी है, जब देश में दो गुट, समूहों में वैमनस्य आता है, तो विरोधी गुट पर अत्याचार किए जाते हैं और इससे स्त्री नहीं छूटती, यह हमारे देश की वास्तविकता है। बलात्कार की पीड़ा स्त्री की आधुनिक समस्या न होकर पुरखों से चली आ रही है। इसलिए तो महाभारत में द्रौपदी का चीरहरण किया गया था जो आज भी जारी है। बलात्कार की इस समस्या की और संकेत करते हुए जहीर कुरेशी लिखते हैं-

"आज भी द्रौपदी का चीर हरण,
हो रहा है भरी सभाओं में।
'द्रौपदी' नग्न होने को है,
इस सदी का 'किशन' बिक गया है।"[7]

आज की स्त्री कहीं भी सुरक्षित नहीं हैं। इसलिए तस्लीमा नसरीन 'औरत का कोई देश नहीं होता' किताब लिखकर पितृसत्ताक समाज के विचारों पर उंगली ही नहीं रखती बल्कि स्त्री मुक्ति के पहल के बारे में अपने विचार अभिव्यक्त करती है। आज घर, परिवार, समाज तथा ऑफिस कहीं भी स्त्री सुरक्षित नहीं है, इसका एकमात्र कारण है, पुरुषसत्ताक समाज का स्त्री को वस्तु के रूप में देखने का रवैया। महाभारत में द्रौपदी की रक्षा के लिए कृष्ण थे, परंतु आज की द्रौपदी की रक्षा करने के लिए कृष्ण नहीं है क्योंकि आज के कृष्ण धन, ऐश्वर्य एवं वैभव के लालच में मौन है। यही वजह है, आज की स्त्री पर खुले आम अत्याचार हो रहे हैं। इस अत्याचारों के खिलाफ न्याय मांगने से भी स्त्री को न्याय नहीं मिलता क्योंकि अण्णाभाऊ साठे नें मराठी में लिखा है-

'ही न्यायव्यवस्था काहीकांची रखेल झाली,
ही संसद देखील हिजड्यांची हवेली झाली,
मी माझ्या व्यथा मांडू कोणाकडे...!
कारण इथली न्यायव्यवस्था भ्रष्टतेने रंगीन झाली...!'

नारी की विवशता यह है कि उसके देह के साथ खिलवाड़ किया जाता है, इसलिए वह अपनी लज्जा बचाने के लिए अपने प्राण त्याग देने का सोचती है, पर उस लज्जा को बचाना वह जरूरी नहीं समझती क्योंकि वह जीना चाहती है और जीवन समाप्त करना उचित नहीं मानती। जैसे-

"मरकर ही, बचनेवाली थी, जंगल में उसकी लाज,
यूँ लाज को बचाना, जरूरी नहीं लगा।"[8]

स्त्री की अस्मिता और गरिमा को बचाने की जिम्मेदारी समाज और सत्ता की होती है किंतु इसके लिए स्त्री को अकेली ही संघर्ष करना पड़ता है। अर्थात इस समाज में स्त्री को बचाने की जरुरत ही क्यों महसूस होती है? तो इसका भी जवाब है, पुरुषसत्ताक समाजद्वारा उसे वस्तु के रूप में देखना।

हिंदी के मशहूर गजलकर अदम गोंडवी ने अपनी गजलों के कथ्य में स्त्री-विमर्श को उजागर किया है। उनकी गजलें प्रतिरोध की मुखर आवाज है। उनकी गजलों में अभिव्यक्त स्त्री विमर्श किसी भावुक करुणा तक सीमित न रहकर सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं से जुड़कर सामने आता है। वे स्त्री को पीड़िता के रूप में देखने के नहीं बल्कि शोषण के विरुद्ध खड़ी स्त्री के रूप में प्रस्तुत करते हैं। अदम गोंडवी तथाकथित इज्जत, मर्यादा, संस्कार जैसे शब्दों के पीछे छिपी स्त्री-विरोधी मानसिकता को उजागर करते हैं। स्त्री का शोषण परिवार और समाज दोनों में होता है। आर्थिक अन्याय, भूख, बेरोजगारी और सत्ता, हिंसा के साथ जुड़ी स्त्री उनके लेखन के केंद्र में है। परिवार या समाज में स्त्री को हमेशा से दोयम स्थान दिया जाता है, इसके लिए जिम्मेदार है, समाज की पितृसत्ताक मानसिकता। मनुष्य हमेशा से किसी दूसरे पर सत्ता करना चाहता है, वर्चस्व स्थापित करना चाहता है, इसलिए वर्चस्व की भावना रखनेवाला यह समाज स्त्री को कमजोर समझकर उसका शोषण करता है। परिवार में स्त्री को हमेशा डाँटा-पीटा जाता है, उसका अपमान किया जाता है और उसके अस्तित्व को नकारकर उसे मन चाहे तब घर से निकाल दिया जाता है। जैसे-

"औरत तुम्हारे पाँव की जूती की तरह है-
जब बोरियत महसूस हो घर से निकाल दो।"[9]

इस प्रकार स्त्री को परिवार में कोई भी मूल्य नहीं दिया जाता, जो स्त्री परिवार को बाँधने का काम करती है। पुरुषसत्ताक समाज ने हमेशा से स्त्री के साथ अपने अनुसार बरताव किया, यही वजह है कि स्त्री का परिवार में हमेशा से शोषण होता आ रहा है, जो आज भी जारी है, केवल उसका स्वरूप बदला है।

स्त्री को केवल वस्तु के रूप में देखने की समाज की मानसिकता को अदम गोंडवी ने अपनी गजलों में बेनकाब किया है। स्त्री की पहचान उसका देह है, इससे ज्यादा कुछ नहीं, इस प्रकार की सोच रखनेवाला समाज उसकी भावनाओं को, संवेदनाओं को चकनाचूर कर देता है और उसकी आत्मा, विचार तथा चेतन को मूल्यहीन बना देता है। समाज की इस प्रवृत्ति पर गजलकर करारा तमाचा मार देते हैं। जैसे-

"जिस्म क्या है, रूह तक सब कुछ खुलासा देखिए।
आप भी इस भीड़ में घुसकर तमाशा देखिए।"[10]

औरत की आर्थिक स्थिति उसे विवश कर देती है कि वह अपनी देह को गिरवी रखें। आधुनिक काल के इस दौर में भी आज की स्त्री अपने पेट की आग बुझाने के लिए संघर्ष कर रही है। दो जून की रोटी के लिए दर-दर भटक रही है। अपनी जिंदगी बिताने के खातिर चंद पैसों के इंतजाम के लिए वह अपने देह का सौदा कर रही है, तो इसके लिए जिम्मेदार वह खुद न होकर यह समाज है, यह व्यवस्था है, यह सत्ता है, जो उसकी आर्थिक स्थिति मजबूत नहीं कर सकती। जिस देश की स्त्री दो जून रोटी कमाने के लिए संघर्ष कर रही है, वह देश कभी आगे नहीं जा सकता और हमारे देश में तो आज भी स्त्री को केवल वस्तु के रूप में देखा जाता है। इससे भी शर्मिंदगी की बात यह है कि पुरुषसत्ताक समाज केवल स्त्री देह की कीमत जानता है, उसका मूल्य नहीं, उसके आत्मसंघर्ष को नहीं। इसलिए प्राचीन काल से स्त्री को भोग्या के रूप में देखा जाता है। उसके शरीर का सौदा करनेवाले लोग इसी सभ्य कहे जानेवाले समाज के होते हैं, पर बदनाम केवल स्त्री को किया जाता है, यह बहुत बड़ा सामाजिक षडयंत्र है। तब सवाल उठता है कि स्त्री के शरीर की कीमत गिनकर भोगविलास करनेवाला यह समाज सभ्य या असभ्य? क्योंकि उस स्त्री की आर्थिक, मानसिक,

शारीरिक स्थिति से वह अकेली ज्ञात है, समाज तो भीतर से बहुत जर्जर है, खोखला है। श्रम और सम्मान के बीच खड़ी स्त्री की असहाय स्थिति को अदम गोंडवी अपनी गजल में अभिव्यक्त करते हैं और वर्ग, गरीबी, श्रम, अर्थव्यवस्था तथा सत्ता पर उंगली रखकर स्त्री देह पर नहीं बल्कि व्यवस्था की देह पर सवाल खड़ा करते हैं। जैसे-

"रोटी कितनी महँगी है, ये वो औरत बताएगी,
जिसने जिस्म गिरवी रखकर ये कीमत चुकाई है।"[11]

मनुष्य की पाशविक प्रवृत्ति के कारण अकेली औरत का जीना दुश्वार हो गया है। भोगवादी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के कारण वर्तमान में बलात्कार की त्रासद घटनाएँ बढ़ रही है। इस घटनाओं के लिए जिम्मेदार सिर्फ समाज ही नहीं बल्कि यहाँ की व्यवस्था है। क्योंकि आजकल तो पुलिसथाने में भी बलात्कार हो रहे हैं। जनता के रक्षक ही भक्षक बन रहे हैं। इसलिए स्त्री कहीं भी सुरक्षित नहीं है बल्कि अन्याय- अत्याचारों को न चाहकर भी सह रही है। जैसे-

"भला अब कौन अस्मत को बचाएगा,
दरोगा कर रहे हैं 'रेप' थानों में।"[12]

अर्थात नारी अत्याचार के विरोध में उठ खड़ी होती है, तो गवाह के अभाव में उसे न्याय नहीं मिल पाता और स्त्री जहाँ सुरक्षित महसूस करने की सोचती है, वहाँ भी अन्याय का शिकार बन जाती है।

हिंदी गजलकारों में मुनव्वर राणा का नाम बड़ा मशहूर है। उन्होंने स्त्री की करुणा, संवेदना और आत्मीयता के माध्यम से स्त्री के अस्तित्व को प्रतिष्ठित किया। उन्होंने स्त्री का संघर्ष, त्याग और उसकी नैतिक शक्ति को अपनी गजलों में अभिव्यक्त किया है। उनके गजलों की स्त्री सहनशील है, इसलिए वह अपने भीतर जमीं हुई वेदना के रूप में उभरती है। फिर भी इसी रूप में वह सम्मान एवं गरिमा चाहती है, पर उसका अपना दर्द, उसकी पीड़ा एवं उसका संघर्ष जारी है। यहाँ उनका शेर प्रस्तुत है-

"महीनों तक हँसी होंटों की नंगे सर निकलती थी,
महीनों तक हम आँखों को बरसता छोड़ आए हैं।"[13]

इस शेर में स्त्री की आंतरिक पीड़ा, सामाजिक दमन और मौन प्रतिरोध को अत्यंत सशक्त रूप से अभिव्यक्त किया है। पितृसत्ताक समाज में स्त्री मौन है, अर्थात अपना दुख खुलकर व्यक्त कर पाने का अधिकार भी उसे नहीं है। इसलिए मन में पीड़ा होते हुए भी वह समाज के सामने हँसने का स्वांग करती है। पर उसके आँखों की नमी उसकी दबी हुई पीड़ा का संकेत देती है। लेकिन अब वह अपने दुख को पहचानकर उसे ढोने से इनकार करती है और मानसिक मुक्ति पाती है। स्त्री की मानसिक कुंठा पितृसत्तात्मक व्यवस्था की विफलता के कारण है। पर अब स्त्री सामाजिक आदर्शों से मुक्त होकर अपने वास्तविक जीवन के साथ संघर्ष करती है।

चंद्रसेन विराट ने नारी अस्मिता को लेकर खूब गजलें लिखी। समाज में स्त्री का शोषण होता है, उसकी अस्मिता को कुचला जा रहा है, उसे उचित सम्मान नहीं मिल रहा किंतु पुरुष अपने जीवन में मनचाहा व्यवहार कर सकता है, केवल स्त्री के लिए ही सब कुछ निषिद्ध है। उसे भोगवस्तु माना जाता है, फिर भी इस समाज के विरोध में वह आवाज नहीं उठा पाती क्योंकि वह इस समाज से भयभीत है। यह समाज उसपर अत्याचार करता है, उसे शोषित करता आया है, इसका वास्तविक अंकन गजलकर ने अपनी गजल में किया है। जैसे-

"पुरुष के प्राधान्य से यह शोषित का प्रश्न है,
प्रश्न नारी का न उसकी अस्मिता का प्रश्न है,
एक तरफा सिर्फ नारी के लिए लागू रही,
खेद यह, उस आचरण की संहिता का प्रश्न है।"[14]

अर्थात पुरुषसत्ताक व्यवस्था के कारण स्त्री शोषित है, पर उसके अस्तित्व को नकारा जाता है। आदर्श समाज के नियम केवल नारी के लिए हैं, पुरुष के लिए नहीं, इसलिए नारी अन्याय की शिकार बनती है, पर यह सामाजिक संरचना का परिणाम है।

निष्कर्ष:

निष्कर्षता: यह स्पष्ट होता है कि निदा फाजली, जहीर कुरेशी, परवीन शाकिर, चंद्रसेन विराट, अदम गोंडवी, मुनव्वर राणा आदि गजलकारों ने अपनी गजलों के माध्यम से स्त्री की पीड़ा को अभिव्यक्त कर उसके शोषण एवं अत्याचार के लिए जिम्मेदार सामाजिक व्यवस्था पर कड़ा प्रहार किया है। इतना ही नहीं स्त्री की आंतरिक पीड़ा से लेकर उसके बाहरी देह तक उसपर होते आए

शोषण के खिलाफ आवाज उठाकर स्त्री की वास्तविक स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है। उनकी गजलों का उद्देश्य केवल स्त्री की वास्तविकता दिखाना नहीं अपितु उसे समाज में न्याय, सम्मान, गरिमा मिले तथा उसके अस्तित्व को समाजद्वारा स्वीकारकर उसे समानता का स्थान मिले, इसके लिए कलम के माध्यम से की गई कोशिश है। अतः हिंदी गजलकारों ने अपनी गजलों में स्त्री को सामाजिक आदर्शों के नियमों से बाहर निकालकर स्वतंत्रता तक पहुँचाया, जिससे हर स्त्री मुक्ति साँस ले सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. अस्थाना, डॉ. रोहिताश्व, हिंदी गजल: उद्भव और विकास, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 1987, पृष्ठ- 22
2. हाली, अल्ताफ हुसैन मुकद्दमा-ए-शेर-ओ-शायरी, मकतबा जामिया लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण 2013, पृष्ठ- भूमिका से
3. डॉ. मस्के संतोष, साठोत्तरी हिंदी गजल में समसामयिकता, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2016, पृष्ठ-42-43
4. डॉ. खराटे मधु, दुष्यंतोत्तर हिंदी गजल, विद्या प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ- 105
5. कुरेशी जहीर, पेड़ तनकर भी नहीं टूटा, अयन प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010, पृष्ठ- 97
6. वहीं पृष्ठ- 103
7. डॉ. खराटे मधु, गजलकर जहीर कुरेशी की काव्यदृष्टि, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2013 पृष्ठ- 71
8. वहीं पृष्ठ- 73
9. गोंडवी अदम, समय से मुठभेड़, वाणी प्रकाशन, छटा संस्करण 2023, पृष्ठ-56
10. वहीं पृष्ठ- 36
11. वहीं पृष्ठ- 64
12. डॉ. खराटे मधु, साठोत्तरी हिंदी गजल, विद्या प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2010, पृष्ठ-79
13. राणा मुनव्वर, मुहाजिरनामा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण 2020, पृष्ठ- 57
14. डॉ. खराटे मधु, दुष्यंतोत्तर हिंदी गजल, विद्या प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ- 109

*****

हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल का महत्व

सतिश बाळु हारपडे
शोध छात्र, हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर **दूरभाष:** 8600167926
ईमेल: satishharpade3@gmail.com

सारांश:

हिंदी 'फिल्मों' का स्वरूप, इतिहास और परिभाषा के संबंधी जानकारी दी है। 'गीतों' का अर्थ, परिभाषा, स्वरूप और अर्थ क्या होता है? इसके संबंधी जानकारी दी है। 'गज़ल' का अर्थ, स्वरूप, और परिभाषा संबंधी जानकारी दी है। फिल्मों में गीत और गजल का उपयोग कैसे किया जाता है? कौन-कौन से क्षेत्र है जो फिल्मों में गीत और गजल महत्वपूर्ण मुद्दा जाते हैं? इनकी चर्चा संक्षेप में करने का प्रयास किया गया है।

फिल्मों में गीत और ग़ज़ल का महत्व भाव-बोध करने में महत्वपूर्ण होता है तथा किसी फिल्म की कथावस्तु को रुचि पूर्ण और कथावस्तु को आगे बढ़ाने में गीत और ग़ज़ल सहायक होते हैं। गीत और ग़ज़ल के द्वारा फिल्मों में एक अच्छा संदेश देते हैं और गायकों को भी रोजगार मिलता है। गीत और ग़ज़ल कम समय में पाठक के मन में बसने वाला तत्व है, जिससे पाठक या श्रोता के मन में ज्यादा दिनों तक स्मृति-पटल पर याद रहता है। काव्य और संगीत के क्षेत्र में महत्वपूर्ण तत्व गीत और ग़ज़ल है, जो फिल्मों में इसी कारण महत्वपूर्ण बन जाता है।

शोध आलेख का उद्देश्य:

1) फिल्मी गीत और गजल का अर्थ, स्वरूप और परिभाषा संबंधी जानकारी देना।
2) फिल्म, गीत और ग़ज़ल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बताना।
3) फिल्मों में गीत और गजल का महत्व स्पष्ट करना।

बीज शब्द: ग़ज़ल, गीत, फिल्म, अभिव्यक्ति, समाज

प्रस्तावना:

भारतीय हिंदी फिल्मों का इतिहास सौ साल से भी अधिक पुराना है। दिनों-दिन हिंदी सिनेमा समृद्ध होता जा रहा है। उस पर पाश्चात्य सिनेमा का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। हिंदी सिनेमा जीवन की परछाई के रूप में मनोरंजन के साथ-साथ मानव जीवन में समस्या और परेशानियों को चित्रित करता है। मानव जीवन की सभ्यता, इतिहास, संस्कृति, राजनीतिक जीवन, आर्थिक स्थिति और जीवन के समग्र भाव अभिनय के द्वारा प्रकट होते हैं, उसी के साथ साहित्य में भी समग्र लेखन होता है। साहित्य सिनेमा एक दूसरे से जुड़े हैं, जैसे कोई गीत लिखता है, तो वह सिनेमा में गाया जाता है। सिनेमा और साहित्य मनुष्य के जीवन में मनोरंजन के साथ-साथ कुछ सिनेमा और साहित्य जीवन की विभिन्न सच्चाई को दिखाते हैं। जीवन की परेशानियां, छल, कपट, सामाजिक विषमता, आर्थिक विषमता, बेरोजगारी की समस्या, राजनीतिक षड्यंत्र और रिश्तो में तनाव की स्थिति फिल्मों में दिखाई देती है। गजल द्वारा फिल्मों में विभिन्न भाव बहुत गहराई से होता है।

फिल्मों में ग़ज़ल के द्वारा, भावनाओं की अभिव्यक्ति का सबसे अच्छा साधन है। ग़ज़ल आजकल ज्यादा बहुचर्चित रही है। फिल्मों में गीत और ग़ज़ल के द्वारा विभिन्न भाव दिखाए जाते हैं, जिससे फिल्मों में रोचकता आती है। गीत और ग़ज़ल की फिल्मों में बहुत बड़ी भूमिका होती है। फिल्म की कथावस्तु अच्छी होने पर भी कभी-कभी कोई फिल्म अच्छा प्रदर्शन नहीं दिखा पाती, लेकिन अगर उसमें गीत अच्छे हैं, तो वह फिल्म कभी-कभी गीतों के द्वारा लोकप्रिय हो जाती है। फिल्मी गीतों का भी पाठकों को भाव-बोध करने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

फिल्म, गीत और ग़ज़ल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:

भारत में दादासाहेब फाळके जी ने 1913 ई. में राजा हरिश्चंद्र पहली मूक फिल्म बनाई गयी। फिल्मों में संवादों के साथ पहली फिल्म 'आलम आरा' भारत में प्रसिद्ध रही है। इस फिल्म के साथ-साथ विभिन्न गीत और गजल भी लोकप्रिय होने के दौर की शुरुआत हुई। गीतों का प्रयोग लोक नृत्य, लोकनाट्य, लोकगायन और त्योंहारों में बहुत पहले से होता आ रहा है, लेकिन फिल्मों में गीत की शुरुआत 'आलम आरा' के फिल्मों के गीतों से ही हुई। 1940 ई. से लेकर 1970 ई. तक के दौर को गीतों का स्वर्ण-युग भी माना जाता है, क्योंकि इस काल में गीत के माध्यम से फिल्में ज्यादा लोकप्रिय हुई, बहुत सारे फिल्मों में गायन लता

मंगेशकर, मोहम्मद रफ़ी, किशोर कुमार और मुकेश जैसे गायकों के कारण गीत ज्यादा लोकप्रिय हुए। गीत लेखन में साहिर लुधियानवी, शकील बदायूँनी और शैलेंद्र जैसे महान गीतकार प्रसिद्ध हुए।

ग़ज़ल विधा का प्रारंभ अरबी साहित्य में हुआ था। 10 वीं शताब्दी तथा 12 वीं शताब्दी फारसी साहित्य से ज्यादा विकसित यह विधा रही है। भारत में ग़ज़ल अमीर खुसरो के साहित्य में दिखायी देती है। मीर तकी मीर, गालिब, जोश और फ़िराक़ गोरखपुरी आदि ग़ज़लकारो ने बहुत सारा लेखन ग़ज़ल विधा में किया है। 1940 ई. से लेकर 1950 ई. तक के समय में ग़ज़ल विधा ज्यादा फिल्मों में आने लगी। तलत महमुद, मुकेश, जगजीत सिंह और मेहदी हसन जैसे विभिन्न गजलकारों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

फिल्म, गीत और ग़ज़ल का अर्थ और परिभाषा:

1. फिल्म:

फिल्म जगत बहुत ही विस्तृत क्षेत्र है, इसको किसी शब्द में बाँधना कठिन कार्य है। फिल्म दृश्य और श्रव्य माध्यम है। फिल्म की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है-

1) फ्रांसीसी निर्माता, निर्देशक श्री. आस्तुक: "लिखे हुए शब्द की तरह फिल्म भी एक भाषा है, जिसे लिखने और पढ़ने के लिए नये दृष्टिकोण की आवश्यकता है।"

2) श्री सतिश बहादुर: "फिल्म भाषा संवहन का दृश्य-श्रव्य माध्यम है।"

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों ने फिल्म से संबंधित परिभाषाएं दी है।

2. गीत:

गीतों की परिभाषा निम्न विद्वानों ने दी है-

1) आचार्य सेवक वात्स्यायन: "गहन संवेदना प्रसूत स्वानुभूत भाव क्षणों की गेयत्व संवर्धित सहज, स्वतंत्र एकांतिक, छान्दसिकता में काव्यसौंदर्य और काव्यात्मा के रसात्मक विकास से त्वरित लयात्मकता गीत होते है।"

2) श्री दिनेश सिंह: "आज के गीतकार समय को उसकी पूरी सामाजिकता में परखने का मुद्दा रखते हैं और विज्ञान के करिश्में के बाजार से होकर गुजरने का अंदाजा भी लक्षित करते रहते हैं तथा ऐसे में चतुर्दिक ध्वंस के चितराव में तत्व जीवन के प्रभाह को मापते भी है और अपने गीत धर्म से उसे उजागर करते हुए जीवन पर पढ़नेवाले विपरीत प्रभाव को श्लथ भी करते हैं।"

इस प्रकार गीत की परिभाषा यहां पर दी गई है, जिससे गीत का अर्थ स्पष्ट होता है।

3. ग़ज़ल:

ग़ज़ल की विभिन्न विद्वानों ने परिभाषा इस प्रकार दी है-

1) फिराक गोरखपुरी: "ग़ज़ल असंबद्ध कविता है। गजल का मिजाज मूलत: समर्पणवादी होता है।"

2) डॉ. नगेंद्र: "ग़ज़ल उर्दू का सर्वाधिक प्रसिद्ध और सरस भेद है। इसका स्थायी भाव प्रेम है, जिसमें रहस्यानुभूति, मस्ती, धार्मिक विद्रोह आदि भावनाएं संचारी रूप में ओतप्रोत रहती है। विषय के अनुरूप उसका विशिष्ट काव्य रूप है जो मतला, मक्ता, गिरह, काफिया और रदिक में परिबद्ध रहता है।"

हिंदी फिल्म में गीत और ग़ज़ल का महत्व:

हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल का महत्व निम्न प्रकार से रहा है-

1) भाव-बोध:

गीत और ग़ज़ल के द्वारा विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति होती है, यहां मन के विभिन्न भाव कभी-कभी संवादों से पूरे नहीं होते, इसीलिए कम समय में संगीत तथा गीत के द्वारा भावों की अभिव्यक्ति होती है। मानव मन में विभिन्न भाव होते हैं जैसे- प्रेम, विरह, दुःख, दर्द, उम्मीद, प्रेरणा, राष्ट्रीयता और आनंद जैसे भाव को गीत तथा गजल के द्वारा कम शब्दों से विभिन्न भाव फिल्म में भर दिए जाते हैं।

गीतकार विभिन्न कथावस्तु के अनुसार गीत का निर्माण करता है, जिससे गीत को उसी भावों के अनुसार संगीत भी दिया जाता है। जैसे राष्ट्रप्रेम के लिए ए. आर. रहमान का 'मां तुझे सलाम', 'बॉर्डर' फिल्म का 'संदेशे आते हैं' यह गीत, 'कर्मा' फिल्म का 'दिल दिया जान भी देंगे' यह गीत, 'चक दे इंडिया' फिल्म का 'चक दे इंडिया' गीत और 'नया दौर' फिल्म का 'यह देश है वीर जवानों का' आदि बहुत ही लोकप्रिय रहे हैं, जो आज के समय में भी लोग सुनते आ रहे हैं। राष्ट्रप्रेम पर आधारित 'हकीकत' फिल्म का 'कर चले हम फिदा' यह गीत पूरी तरह से शायरी में लिखा गया गीत है। 'राजी' फिल्म जो 2018 में आयी थी, उसका 'ऐ वतन, वतन

मेरे, आबाद रहे तू' यह गीत पूरी तरह से ग़ज़ल ही है। गीतों को सुनकर जन समुदाय में आज भी ऐसे गीत राष्ट्र प्रेम की भावना निर्माण करते हैं। फिल्मों में गीत और ग़ज़ल की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका भावों की अभिव्यक्ति में होती है।

2) कथावस्तु को आगे बढ़ाने में सहायक:

फिल्मों की कथावस्तु विभिन्न दृश्यों से बनती है, जो किसी फिल्म निर्माता के लिए महत्वपूर्ण भूमिका कथावस्तु की होती है, गीत और ग़ज़ल कथा को ठीक ढंग से आगे बढ़ने का कार्य करते हैं। फिल्म की कथा में संगीत में गीतों के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। गीत और ग़ज़ल फिल्म में महत्वपूर्ण साधन के रूप में है। फिल्म निर्माता एक अच्छी फिल्म बनाता है, जिससे पाठक के मन में रोचकता निर्माण होकर उत्साह से फिल्म देखता है। अगर फिल्म में ग़ज़ल और गीत नहीं होते हैं, तो पाठक उब जाने की संभावना ज्यादा रहती है, जिससे कभी कभी फिल्म की कथावस्तु या अभिनय खराब होने के कारण आलोचक उसकी कड़ी आलोचना भी करते हैं। फिल्म की कड़ी आलोचना होने पर दर्शकों की संख्या कम होती है, जिसके कारण आर्थिक हानि होती है।

फिल्म की कभी-कभी कथावस्तु अच्छी होने पर भी थिएटर में टिक नहीं पाती, इसका महत्वपूर्ण कारण यह होता है, गीतों में कथावस्तु को आगे बढ़ाने की ताकत नहीं होती। गीत कथा वस्तु को आगे बढ़ाने में सहायक होते हैं। 'बाजार' फिल्म जो 1982 ई. में आयी थी उसका गीत 'करोगे याद तो', फिर छिड़ी छिडी रात' (ग़ज़ल) यह गीत कथावस्तु को आगे बढ़ाने में बड़े सहायक लगते हैं और यह गीत प्रसिद्ध भी हुए थे लेकिन फिल्म अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पायी थी।

3) सांस्कृतिक पहचान तथा सामाजिक संदेश:

फिल्म निर्माण में गीत और गजल सांस्कृतिक क्षेत्र में तथा सामाजिक क्षेत्र में बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत देश में विभिन्न धर्म है, विभिन्न धर्म की अपनी अलग-अलग संस्कृति है, यह विश्व भी विभिन्न देशों से बना है। हर देश भी अपनी अलग-अलग संस्कृति के कारण प्रसिद्ध रहता है। फिल्मों में गीतों के द्वारा तथा ग़ज़ल के द्वारा सांस्कृतिक दृश्य दिखाने हेतु, फिल्मों में गीतों का आधार लिया जाता है। फिल्म में संस्कृति दिखायी जाती है जैसे- 'हम आपके हैं कौन', 'विवाह', 'बागबान' और 'दिलवाले दुल्हनिया ले जायेंगे' जैसी फिल्मों में भारतीय संस्कार दिखाए गए हैं।

ग्रामीण संस्कृति का जीवन दिखाने के लिए 'लगान', 'स्वदेस' और 'दंगल' जैसे फिल्मों के गीतों द्वारा ग्रामीण संस्कृति का चित्रण होता है। भारतीय कला तथा नृत्य संस्कृति पर आधारित कुछ महत्वपूर्ण फिल्में है जैसे- 'देवदास', 'बाजीराव मस्तानी', 'तान्हाजी' जैसे फिल्मों के गीतों द्वारा भारतीय कला तथा नृत्य संस्कृति दिखायी देती है। फिल्मों में विभिन्न त्योहार और रीति परंपरा भी दिखायी जाती हैं जैसे- 'हम आपके हैं कौन' इस फिल्म में शादी और परिवार के गीत है। इतिहास पर आधारित बहुत सारी फिल्में है उनमें गीत महत्वपूर्ण रहे हैं। जैसे 'जोधा अकबर', 'मोहन जोदड़ो', 'पद्मावत' जैसे फिल्मों के गीत गजल और संगीत द्वारा भारतीय ऐतिहासिक संस्कृति के दर्शन करते हैं।

इस प्रकार फिल्मों में गीत और गजल का आधार लेकर परिवार, रिश्तें, परंपरा, लोक जीवन, लोक संगीत, भारतीय जीवन, मूल्य और इतिहास आदि भारतीय संस्कृति का चित्रण हुआ है।

4) काव्य और संगीत में महत्वपूर्ण भूमिका:

ग़ज़ल का एक कलात्मक रूप होता है। फिल्मों में ग़ज़ल में लयबध्दता होती है। गीतों में भी लयबध्दता महत्वपूर्ण होती है। गजलों की शैली भी आकर्षक होती है। ग़ज़ल और गीत में भावनाओं की गहराई होती है। काव्य और संगीत के साथ गीत फिल्मों में प्रस्तुत होते हैं, तो फिल्मों में भावों की गहराई निर्माण होती है। संगीत की ध्वनि से गीतों में लयबद्धता बन जाती है जिससे दर्शक भावों की गहराई में जाकर फिल्मों की कथावस्तु को समझता है। फिल्मों में पात्र तथा प्रसंग के अनुसार संगीत का सहयोग होता है। फिल्म 'दिल से' का गीत 'छैया छैया' गजलों का ही उदाहरण कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें संगीत और काव्य का अनोखा संगम है। फिल्म निर्माण जब किया जाता है, तो गीत, संगीत, संवाद, कथावस्तु पात्र, अभिनय और स्थल यह सारी विशेषता फिल्म से महत्वपूर्ण होती है। संगीत और ग़ज़ल का काव्यरुप अथवा गीत का काव्य रूप दृश्यों द्वारा फिल्मों में रोचकता बढ़ाता है।

5) गायन के क्षेत्र में योगदान:

हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल गाने के लिए गायक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। गायक की सुरीली और मधुर आवाज दर्शकों को मंत्र-मुग्ध करता हैं। फिल्म के क्षेत्र में गीत और गजल गाने के लिए एक अच्छा गायक होने पर भावों निर्मिति या माहौल अच्छा निर्माण हो जाता है, इससे गायकों को कला के क्षेत्र में गीतों और ग़ज़ल के कारण रोजगार मिलता है। गायक अपने

कलात्मक ढंग से, लयबद्धता से, और ताल से और संगीत द्वारा गीतों को गाता है। गीत और ग़ज़लों में गायक का योगदान महत्वपूर्ण बन जाता है। आज भारत देश में विभिन्न गायक हुए हैं जैसे-लता मंगेशकर, जगजीत सिंह, तलत महमूद, बेगम अख्तर और गुलाम अली जिन्होंने फिल्म में गीत और ग़ज़लों का गायन किया। गीतों में देखा जाए, तो जैसे-मोहम्मद रफ़ी, किशोर कुमार, मन्ना डे, मुकेश, तलत महमूद, हेमंत कुमार, उदित नारायण, कुमार सानू, सोनू निगम, आशा भोंसले, गीता दत्त, सुरैया, श्रेया घोषाल और नेहा कक्कड़ आदि के गीतों में दर्द, प्रेम, भाव बोध और जीवन के सुख-दु:ख के स्वरों का बोध होता है।

6) दर्शक या पाठकों के मन में लंबे समय तक बसने वाला तत्व:

दृश्य के द्वारा फिल्मों में गीत तथा गजल प्रस्तुत करते हैं। लेखन साहित्य कभी-कभी लोगों को इतना याद नहीं रहता, लेकिन गीत और ग़ज़ल ज्यादा दिनों तक लोगों के मन में रहती है, क्योंकि यह दृश्य और श्रव्य के श्रेणी में आता है। फिल्म निर्माण के क्षेत्र में गीत और ग़ज़ल को भावों के अनुकूल निर्माण किया जाता है। दर्शक जब कोई फिल्म देखता है, उसकी कथावस्तु भले याद नहीं रहती लेकिन फिल्म के कुछ गीत और ग़ज़ल बहुत लंबे समय तक मन में याद रहते है। फिल्म के कुछ गीत ऐसे होते हैं जो पाठक या दर्शक फिल्म देखने के जब वह गीत याद आता है, तो बाद में भी गुनगुनाते रहते हैं, यह गीतों में ताकत होती है। पुराने गीत भी लोगों को लंबे समय तक याद रहते हैं जैसे- 'तेरे बिना जिंदगी से...', 'कल हो ना हो...', जैसे गीत आज की पीढ़ियाँ देखती और सुनती है, जैसे- 'तेरे बिना जिंदगी से...', 'कल हो ना हो', जैसे गीत आज की पीढ़ियाँ देखती है तो गुनगुनाने लगती हैं। ग़ज़ल की शैली के गीत जैसे- 'चलते चलते' फिल्म का गीत 'चलते चलते' यह गीत, 'कभी कभी' फिल्म का 'कभी-कभी मेरे दिल में...'यह गीत, 'मेरे जीवन साथी', फिल्म का 'ओ मेरे दिल के चैन...' यह गीत, 'हम दिल दे चुके सनम' फिल्म का चांद छुपा बादल में...' यह गीत और 'आशिक 2' फिल्म का 'तुम ही हो...' यह गीत हिंदी फिल्मों में आज भी लोगों को याद है।

हिंदी फिल्मों में यह विभिन्न गीत है जो 1950 ई. से लेकर 2000 ई. तक के कुछ ऐसे गीत है, जो नई पीढ़ी को आज भी ज्यादा पसंद आते हैं तथा लोगों में आज भी लोकप्रिय बन रहे हैं।

निष्कर्ष:

हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल आज के समय में कुछ गीत यथार्थ रूप से समस्याओं का भी चित्र करते हैं। हिंदी फिल्मों के निर्माण के क्षेत्र में गीत और ग़ज़ल सिर्फ मनोरंजन ही नहीं, बल्कि विभिन्न भाव-बोध भी दर्शकों के मन में उत्पन्न करते हैं और गीत दर्शकों के मन में अमिट छाप छोड़ जाते हैं। फिल्म की अगर कथा वस्तु यथार्थ जीवन पर आधारित हो और एक अच्छे संदेश के साथ उसमें गीत और ग़ज़लों का भी मिश्रण होने पर दर्शक ऐसी फिल्मों को ज्यादा पसंद करते हैं, जो ऐसी फिल्में आज के समय में ज्यादा लोकप्रिय हो रही है।

गीत और ग़ज़ल की हिंदी फिल्मों में महत्वपूर्ण भूमिका रहती है, या महत्व बढ़ जाता है। गीत और ग़ज़ल होने पर जिसमें भाव-बोध अच्छा होता है, कथावस्तु को आगे बढ़ाने में सहायक होते हैं, एक अच्छा संदेश भी देते हैं, काव्य तथा संगीत के क्षेत्र में भी मुख्य भूमिका रहती है। गीत या ग़ज़ल पाठक या दर्शक के मन में ज्यादा दिनों तक याद रहते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिंदी फिल्मों में गीत और गजल का महत्व हिंदी फिल्म के क्षेत्र में बहुत ही ज्यादा है।

संदर्भ ग्रंथ:

1) उर्दू-भाषा और साहित्य, लेखक: डॉ. महेश गुप्ता, पृष्ठ संख्या: 350
2) मुकद्दमा-ए-शेरो शायरी, लेखक: डॉ. नगेंद्र, पृष्ठ संख्या: भूमिका से।
3) धर्मयुग पत्रिका, अप्रैल 3, 1966
4) शोध प्रबंध: आधुनिक हिंदी गीत और नवगीत: एक तुलनात्मक अध्ययन, शोध छात्र: सुधांशु कुमार श्रीवास्तव, डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद (उत्तर प्रदेश)
5) नये पुराने पत्रिका, अप्रैल 2000, पृष्ठ संख्या: 20

*****

हस्तीमल हस्तीजी के ग़ज़लों में चित्रित सामाजिक परिदृश्य

वैष्णवी संजय शिंदे
शोधछात्रा, हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर।
मोबाइल नंबर-7447515752
vaishnavishinde1985@gmail.com

साहित्य, समाज ,सिनेमा एक दुसरे से जुडे हुए है और एक दुसरे को प्रभावित करते है। साहित्य को समाज से और समाज को साहित्य से अलग करके नहीं देखा जा सकता , क्योंकि समाज का वास्तविक बिंब साहित्य में देखा जाता है । समाज और साहित्य का अटूट रिश्ता है, उसी तरह सिनेमा जगत का भी साहित्य से अनोखा रिश्ता है । इसी रिश्ते को जोडने का महत्त्वपूर्ण कार्य साहित्यकार करते है । उपन्यास,कहानी, नाटक,काव्य,ग़ज़ल आदी विधाओं की सहायता से ही सिनेमा का निर्माण होता हैं और उसे सुचारू रूप से आगे बढाने के लिए उसमें गीत एवं ग़ज़लों का सहारा लेना पडता है। समाज में शायद ही ऐसा व्यक्ती होगा जो इस सिनेमा और गीतों के प्रति आकर्षण से अछूता होगा । गीत एंव काव्य का उद्देश्य सिर्फ मनोरंजन करना ही नहीं होता बल्कि देश,काल और समाज के बदलाओं का उनकी समस्याओं का चित्र गीतों में दिखाई देता है । समाज में आज सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदी बदलाओं को भी हम सिनेमा गीतों के माध्यम से देख सकते है। गीत ,ग़ज़ल, काव्य आदि साहित्य के महत्वपूर्ण अंग होने के साथ ही समाज की भावनाओं और संवेदनाओं, विचारों को व्यक्त करते है ।

गीत ग़ज़ल मनुष्य के दिल की आवाज होती है। जो समाज के हर वर्ग के लोगों की भावनाओं को प्रस्तुत करते है । गीत एवं ग़ज़ल समाज को जागरूक करके समाज में उत्साह नवचेतना का निर्माण करके नये विचारों की अभिव्यक्ति करते है । हिंदी साहित्य के इतिहास से ही कबीर ,नानक ,दादू ,अमीर खुसरो आदि साहित्यकारोंने अपने पदों, दोहों, मुकरियों के माध्यम से समाज को निर्भिकता से खरी-खोटी सुनाई है । उसी तरह आज के आधुनिक युग में ऐसे ग़ज़लकार होकर गए हैं । जिन्होंने अपने काव्य, शेरों-शायरी ,कव्वाली , ग़ज़लो से समाज को दिशा देने का कार्य किया है । उनमें से मीर तुर्की मीर, फिराक गोरखपुरी, मिर्झा असदुला खा गालिब, दुष्यंतकुमार, सूर्यभानू गुप्त, बलवीर सिंह रंग ,नीरज ,जगजितसिंह ,कुंवर बेचैन, हस्तीमल हस्ती आदि ग़ज़लकारों का नाम लिया जाता है। आज के ग़ज़लकारों में हस्तीमल हस्तीजी एक जाना- माना नाम हैं, जो एक प्रसिद्ध ग़ज़लकार, दोहाकार और संपादक के रूप में ख्याति प्राप्त व्यक्ति है। मशहूर गायक जगजीत सिंह एवं पंकज उदास ने उनकी ग़ज़लों को आवाज देकर और लोकप्रिय बनाया है ।

बीज शब्द :-

ग़ज़ल ,भावना ,गीत ,संवेदना ,प्रेम ,सिनेमा ।

ग़ज़ल का अर्थ :-

1. "ग़ज़ल एक प्रकार की कविता है जो दोहराए गए शब्दों और तुकबंदी वाले शब्दों से बनी होती है ।[1]"
2. "विभिन्न भाषाओ में दक्षिण और मध्यपूर्व एशिया में काव्यात्मक रूप यह अरबी साहित्य की प्रसिद्ध काव्यविधा है । जो फारसी, उर्दू, नेपाली और हिंदी में भी बेहद लोकप्रिय हुई है ।[2]"

ग़ज़ल उर्दू, फारसी की एक लोकप्रिय काव्यरचना हैं । जो मनुष्य के मनोभावों को अभिव्यक्त करती है। दोहें शेरों का संग्रह होता है। हर एक शेर का अपने आप में स्वतंत्र अर्थ होता है, जिसमें पहले शेर को 'मतला' आखरी शेर को 'मक्ता' कहा जाता है ।

हस्तीमल हस्ती जी का परिचय :-

आज के समय में ग़ज़ल तथा शेरों-शायरी का महत्व काफ़ी बढा है। आज किसी भी कार्यक्रम की जान शेर और ग़ज़ल बन गए है। प्रसिद्ध ग़ज़ले सामान्य लोगों की जुबान से गुनगुनाते हुए सुनाई देती है। इससे यह ज्ञात होता है कि ग़ज़लो का भविष्य काफी उजालों से भरा हैं। कविता की तरह ग़ज़ल की रचना आसान नहीं होती ग़ज़लों की रचना करना कोई सामान्य बात नहीं है। इसके लिए संपूर्ण समर्पन, कडी मेहनत, निरंतर कठिन साधना करनी पडती हैं। ग़ज़ल की रचना करते समय एसा नहीं होता कि मन में ख्याल आया और झट से उसे कागज पर उतार दिया "ग़ज़ल थोडे में बहुत की अभिव्यक्ति है। ग़ज़ल की दो पंक्तियों में अभिव्यक्त शब्द जीवन की संवेदनाओं, भावनाओं का निचोड होते है कम शब्दों में ढेर सारा कहने की कला ग़ज़ल में है ।[3]"

ऐसे ही प्रतिभा के धनी हस्तीमल हस्ती जी प्रसिद्ध ग़ज़लकार हैं ।जिनका जन्म 11 मार्च 1946 को राजस्थान के राजसबंद जिले के आमेट गांव में हुआ । घर के पुश्तेनी कारोबार को आगे बढ़ाने के लिए पढ़ाई छोड दी, पर रचनाकार का मन भावुक और

संवेदनशील होता है। सन 1962 में भारत और चीन युद्ध की खबरों को आकाशवाणी पर सुनकर उनका मन उद्वेलित हो उठा और वे कविता लिखने की ओर मुढे। एक साहित्यकार हर एक घटना को महसूस करके उसे कागज पर उतारते है। हस्ती जी के ग़ज़लो की यह विशेषता दिखाई देती है कि सरलता स्पष्टता से वह अपनी रचनाओं के माध्यम से जीवन की सच्चाई को बया करते है। उनके स्वभाव में ही यह गुण है कि उनसे दुसरों की दु:ख तकलीफे देखी नहीं जाती। इसी वजह से उनके ग़ज़लो में भी समाज के प्रति सारोकार की भावना दिखाई देती है।

हस्ती जी यह कहते है की नफरत, द्वेष से मनुष्य-मनुष्य के बीच कटूता निर्माण होती हैं। नफरत से इस देश की इमारते इतनी उंची उठ जाती है कि समाज , देश उनके चपेट में आ ही जाता है। इसलिए वह कहते है कि नफरत को मन से मिटाना चाहिए।

"उस जगह सरहदें नहीं होती।
जिस जगह नफ़रतें नहीं होती।
उसका साया घना नहीं होता।
जिसकी गहरी जड़े नहीं होती।
मुह पर कुछ और पीठ पर कुछ और।
हमसे यह हरकते नहीं होती।[4]"

हस्ती जी ने अपनी ग़ज़लों में समस्याओं को दिखाकर उसके समाधान को भी प्रस्तुत किया है। मनुष्य के मन से नफरत को हटाकर प्रेम की भावना जगाने दुरीयॉ मिटाने का कार्य ग़ज़लों के माध्यम से किया है।

रचनाकार हस्ती जी समाज में व्याप्त राजतंत्र की मिली भगत और उनके षडयंत्र में पिसती आम जनता का वर्णन करते हुए कहते है -

"हमने तो हर काल में, देखा यही विधान।
राजा की रंगरेलियाँ, परजा का भुगतान।[5]"

ग़ज़लकार आगे की पंक्तियों में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार की ओर संकेत करते हुए कहते है कि आज लोगो का आचरण इतना भ्रष्ट हो चुका है की उन्हें इस

रवैये से कोई शर्म नहीं आती।
"किस जमाने की बात करते हो।
शर्मा और वो भी बेईमानी में।[6]"

समाज में स्थित न्यायव्यवस्था, प्रशासन व्यवस्था वह भी भ्रष्ट हो चुकी है। प्रशासन व्यवस्था पर तंज कसते हुए हस्ती जी कहते है कि

"अदालतो में बाज हैं, थानों में सय्याद।
राहत पाए किस जगह, पंछी की फरियाद।[7]"

सामान्य जनता को न्याय कहा मिलेगा क्योंकि अदालतों, थानों में तो बाज सय्याद बैठे है। आम आदमी खुद को न्याय दिलाने के लिए किससे बुहार लगाये। आज के दौर में गरीब जनता को कही पर भी न्याय नहीं मिलता वह आदालत हो या थाना उसका ताउम्र चक्कर काटता दिखाई देता है।

उसी तरह वह सरकारी योजनाओं के बारे में सरकारी नियती किस प्रकार की है। इन योजनाओं से अमीर किस प्रकार अमीर होते जा रहे है, गरीब और गरीबी की नीचली पायदान में ढकेला जा रहा है। इन बातों को उनकी यह पंक्तियाँ साबित करती है।

"फ़िक्र करें इस देश की, किसको है अवकाश।
अपना-अपना सब यहाँ, बना रहे इतिहास।।
ख़ास जनों को जेब में, आम जनों से दूर।
राजधानियों का रहा, सदा यही दस्तूर।।
मेरे हिंदुस्तान का है फ़लसफा अजीब।
ज्यों-ज्यों आई योजना, त्यों-त्यों बढ़े गरीब।।[8]"

आज के स्थिती में यहाँ पर सत्ताधारी अपना वर्चस्व बनाकर अपना जीवन ऐशों-आराम से जीते है। आम जनता के बारे में किसी सत्ताधारी राजनेताओं को कोई फिक्र नही। यहा सब अपना घर भरने पर तुले हुए नजर आते है। उन्हें इसके आगे अपने देश की भी चिंता नहीं है।

हस्ती जी ने मानव मन में सहज पनपनेवाले प्रेम भाव को अपनी ग़ज़लों के जरिए व्यक्त किया है। कठिन शब्द से परहेज करके सामान्य शब्द के सहारे उनकी ग़ज़ले उचाईयों को छूती है। प्रेम भावना को व्यक्त करती उनकी यह ग़ज़ल सबसे प्रसिद्ध भी है।

"प्यार का पहला ख़त लिखने में वक्त तो लगता है।
नये परिंदो को उड़ने में वक़्त तो लगता है।
जिस्म की बात नहीं थी उनके दिल तक जाना था।
लंबी दूरी तय करनें में वक़्त तो लगता है।[9]"

आधुनिकीकरण, भूमंडलिकरण और बाजारवाद ने समाज, संस्कृती, कला, साहित्य सबको नियंत्रित कर दिया है। समाज में बिकट परिस्थितियाँ निर्माण हो रही हैं। देश की कानून व्यवस्था, न्यायव्यवस्था पर हस्ती जी ने सवाल खडा किया है। अपनी ग़ज़ल के शेरों के जरिये न्यायव्यवस्था को ही प्रश्न पूछते है कि

"जिंदा हैं मेरे शहर में क्यू जुल्म अभी तक।
मुसिफ तो गुनाहों को वकालत नहीं करते।
इतने रक्षक है न्याय के फिर भी।
जुर्म बैखोफ घुमता है वाह।[10]"

मानव समाज अब धर्म, संप्रदाय, जात-पात के भंवर में फस गया है। शक्तिशाली होने की होड में मनुष्य जीवन असुरक्षित बनता जा रहा है। साम्राज्यवाद, आतंकवाद अपने फन फैला रहा है। इस बात को उपरोक्त दोहे से स्पष्ट किया जा सकता है।

हस्ती जी अपने इस शेर के माध्यम से मानव मन की असुरक्षित भावना को व्यक्त करते हुए कहते है कि हम निर्माण करना कुछ और चाहते है और निर्माण कुछ और ही हो जाता है।

"बैठते जब हे खिलौने बनाने के लिए।
उनसे बन जाते है हथियार ये किस्सा क्या है।[11]"

मनुष्य में आई स्वार्थ वृत्ती की वजह से हम अपने ही पैरों पर कुल्हाडी मारते है। इस भावना को उनकी यह पंक्तियाँ व्यक्त करती है।

"अपने घर के आंगन को मत कैद करो दीवारों में।
दीवारें जिंदा रहती हैं लेकिन घर मर जाते है।
मकाँ तक आ गई है आग लेकिन।
मकीनों को कोई चिंता नहीं है।[12]"

हम जाति, धर्म, संप्रदाय की दीवारों को नहीं तोड सके तो अपने ही आँगन में कैदी की तरह रह जायेंगे। हम अपने अंदर के मनुष्य को नष्ट करके निर्दयी रूप धारण कर रहे है।

जातिवाद पर प्रखरता से प्रहार करते है। जाति के नाम पर समाज में हो रहे उच्चवर्ग, अमीर, गरीब, दलित, सवर्ण इन जातिभेदों के विरोधी है हमारे समाज में जाति व्यवस्था के चलते बहुत सी कृप्रथाओं ने जन्म लिया है, जिसके विपरीत परिणाम को समाज को ही झेलना पडता है। इस जाति–पाति की व्यवस्था के खिलाफ लेखक लिखते है कि

"ऊँच-नीच की रार ना,जात-पात का जाल।
हमसे तो पंछी भले,बैठें एकहि डाल।[13]"

हस्ती जी कहते है कि मनुष्य से तो पंछी भले, जो एक डाल पर बैठे है आपस में उच-नीच के नाम पर झगडा नहीं करते। समाज को नई दिशा देने का कार्य शिक्षा द्वारा होता है। शिक्षा से हम बच्चों, युवाओं पर अच्छे संस्कार और ज्ञान से उन्हे सुयोग्य राह दिखाते है, पर नई पीढी इस शिक्षा से वंचित होकर राह भटक रही है। अपनी रचना के माध्यम से यह टीस व्यक्त करते हुए कहते है की

"होने लगी शालाओं में ये कैसी पढाई।
अब बच्चे बुजुर्गो की भी इज्जत नहीं करते।[14]"

इस तरह हस्तीमल हस्ती जी ने अपने ग़ज़लों के माध्यम से सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को समाज के संमुख प्रस्तुत करके उन्हे सुलझाने के मार्ग को भी दिखाया है।

निष्कर्ष :-

हिंदी साहित्य में कबीर, नानक, दादू की परंपरा को हस्ती जी ने अपने ग़ज़लों के माध्यम से चलाई है। ग़ज़लों के जरिए समाज में प्रेम, सद्भावना, संवेदना, भावना जैसे मुल्यों को स्थापित करने का कार्य किया है। उनकी ग़ज़लों से भारतीय संस्कृति की झलक दिखा देती है। समाज में व्याप्त आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक समस्याओं का चित्रण कर उनका समाधान भी बताया है।

संदर्भ सूची :-

1. Poem analysis https:// poem analysis.com
2. Gazal Wikipedia h i Wikipedia .org
3. शायरी और सच का रुतबा, दामोदर खडसे, अनभै जनवरी – जून 2017, पृ 10
4. अनभै पत्रिका , संपादक – रतन कुमार पाण्डेय जनवरी-जून 2017, पृ 63
5. वही, पृ 82
6. वही, पृ 82
7. वही, पृ 83
8. वही, पृ 83
9. वही, पृ 38
10. वही, पृ 38
11. वही, पृ 39
12. वही, पृ 81
13. वही, पृ 77

*****

हिंदी फिल्मी गीतकार एवं ग़ज़लकार

प्रा. सुषमा बाळाराम खोत
भाऊसाहेब नेने कला, विज्ञान और
वाणिज्य महाविद्यालय पेण , रायगड़
khotsushma40@gmail.com
मोबाइल नंबर -7276897364

शोध सार-

उर्दू भाषा को तहजीब और अदब का प्रतीक माना जाता है। उर्दू संस्कारों के इस गुलशन में ग़ज़ल को सबसे मुकम्मल स्थान हासिल हैं। ग़ज़ल जिसकी तुलना अक्सर एक घायल हिरण की शोकपूर्ण चीखों से की जाती है, अपने गहन भावों से भरे गीतों के माध्यम से आत्मा के गहराई तक पहुँचती हैं, जिन्हें गायकों की भावपूर्ण आवाजों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। संगीत के अन्य विधाओं के विपरीत श्रोताओं को तुरंत मोहित और कुशलतापूर्वक अपने वश में करने की एक अनोखी क्षमता ग़ज़ल में होती है ,जो धीरे-धीरे अपने जादू को एक कोमल लेकिन शक्तिशाली जहर की तरफ फैलाती हैं। दिल तक असर करने वाले मखमली शब्दों से सजी गीत की यह विधा देश के हिंदी सिनेमा जगत को भी सरोबार किए हुए हैं।अमीर खुसरो को भारत में ग़ज़ल का जनक माना जाता है और कालान्तर में शकील बदायूंनी, हसरत जयपुरी, मजरूह सुल्तानपुरी, साहिर लुधियानवी, जावेद अख्तर, निदा फ़ाज़ली, गुलजार, गोपालदास 'नीरज'आदि। इस शोध आलेख के माध्यम से हिंदी फिल्म जगत को एक- से -एक बेहतरीन गजलें देने वाले ग़ज़लकारों और गीतकारों का अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द- ग़ज़ल विधा, प्रेम के दर्द, रिश्तों की बेबसी, बदलता वक्त, अधूरी यादें, जिंदगी के दर्द, विरह, जिंदगी का गहरा अर्थ, जीवन के उतार-चढ़ाव, दुनिया की नश्वरता, प्रेम की मधुरता, उम्मीद और निराशा, बचपन की मासूमियत, इंतज़ार और विश्वास, देशभक्ति।

प्रस्तावना-

ग़ज़ल का परिचय

कहते हैं कि, सिर्फ दो मिस्रों में जीवन के कटु सत्य का एहसास करा देने की क्षमता अगर किसी विधा में हैं तो, उसे 'ग़ज़ल' कहा जाता हैं। दरअसल यह बहुत ही पुरानी विधा है। ग़ज़ल अरबी भाषा का शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ है-" प्रेमिका से वार्तालाप।"ऐसा कहा जाता है कि, अरबी में भी गजल कोई स्वतंत्र विधा नहीं थी। इसके बारे में विनोद कुमार कहते हैं कि, "ग़ज़ल का जन्म जब सामंती युग में (फारसी) भाषा के अंतर्गत हुआ, उस वक्त बादशाहों के लिए 'कसीदे' लिखें जाते थे और उसका एक भाग 'तश्बबीब'रहता था।इस भाग में कवि को अपने मन की बात कहने का पूरा स्वतंत्र रहता था। इसी कारण वह प्रेम, वियोग , सौंदर्य का वर्णन करता था और कसीदा का यही भाग अलग होकर ग़ज़ल बन गया है।"1

ग़ज़ल का स्वरूप-

गजल स्त्री या प्रेमिका से वार्तालाप उर्दू-फारसी कविता का एक प्रकार का विशेष जिसमें प्रायः 5 से 11 शेर होते हैं और पहला शेर 'मतला' कहलाता है जिसके दोनों मिसरे (पंक्तियाँ) सानुप्रास होते हैं और अंतिम शेर 'मकता' कहलाता है जिसमें शायर का उपनाम (तखल्लुस) आता है।

शोध विस्तार -

दरअसल ग़ज़ल का संगीत से गहरा रिश्ता रहा है, ख़ासकर अमीर खुसरो का भारतीय संगीत में अनुपम योगदान रहा है। उन्होंने फ़ारसी और हिन्दुस्तानी बोलियों को क़रीब लाने का काम बख़ूबी से किया हैं। हालांकि अस्सी के दशक में ग़ज़ल को नए अंदाज में पेश किया जाने लगा। पश्चिमी और भारतीय संगीत के मिलान से संगीत के एक अलग धुन पर ग़ज़ल गाई जाने लगी।बाद में ग़ज़ल गायकी में एल्बम का दौर शुरू हुआ। इस आलेख में हिंदी सिनेमा जगत में गीत और गजलों को लिखने वाले कुछ जाने पहचाने और कुछ सदाबहार कलाकारों को याद किया हैं।कई बार इन गजलकारों के रचे, गीतों को हम गुनगुनाते हैं। जब भी हमारी जिंदगी में , ऐसे पल आते हैं जिनसे गुजरते हुए,अनायास ही हमारे जहन में, कोई भूला - बिसरा गीत,उभर आता है और हम, हमारी संवेदना को उसी गीत में ढालकर , गीत, गुनगुनाने लगते हैं !....ये कितने आश्चर्य की बात है कि, अकसर हमारे मन में चल रही हलचल को, कोई ना कोई गीत, या कोई ग़ज़ल, हूबहू, उसी के अनुरूप, किसी ख़ास अंदाज़ में मिल ही जाती है और अकसर ये गीत साहित्य या हिंदी फिल्मों से सम्बंधित होते है।!

इस आलेख में कई गजलकारों के नाम नहीं लिए हैं क्योंकि ये असंभव सी बात है सभी का नाम लेना और उनके गीत याद करना ! अगर सभी के नाम लिए, तब तो मेरा आलेख बहुत लंबा हो जाएगा। इसीलिए,
संगीत की बगिया से फूल नहीं, महज कुछ पंखुरियां ही चुन कर, प्रस्तुत किए हैं…

मीर तक़ी मीर-

उर्दू के सर्वकालिक महान शायरों में शुमार की मीर तक़ी मीर का जन्म 1724 में आगरा में हुआ था। उनके पिता का मीर के चरित्र निर्माण में बहुत बड़ा योगदान है। पिता के मरणोपरांत पर 11 वर्ष में वह आगरा छोड़कर दिल्ली आ गए। दिल्ली आकर उन्होंने अपनी पढ़ाई पूरी की और शाही शायर बन गए। अहमद शाह अब्दाली के दिल्ली पर हमले के बाद वह अशफ -उद -दुलाह के दरबार में लखनऊ चले गए। अपनी जिंदगी के बाकी दिन उन्होंने लखनऊ में ही गुजारे।

उनके छः काव्य संग्रह मिलते हैं। जिनमें 1836 ग़ज़लें प्राप्त होती हैं।उनकी ग़ज़लों का प्रत्येक शेर एक विशेष प्रभाव रखता है। मीर की ग़ज़लों में जीवन और संगीत की अनुगूँज हैं। उनकी गजलों में भावों की मृदुलता और अनुभूति की तीव्रता का संगम हैं।मीर तक़ी मीर की गजलों को कई हिंदी फिल्मों में खूबसूरती से इस्तेमाल किया गया है-

1972 में प्रसारित फिल्म 'एक नजर' इस फिल्म की ग़ज़ल जो सदाबहार याद हैं -

"पत्ता पत्ता बूटा बूटा हाल हमारा जाने है
जाने न जाने गुल ही न जाने बाग़ तो सारा जाने है।"1

यें ग़ज़ल प्रेम के दर्द को प्रतीकात्मक रूप से व्यक्त करती हैं। जहाँ प्रेम में प्रेमी की दयनीय स्थिति हुई हैं, उसके दर्द का हर कोई गवाह हैं, सिवाय उसके लिए जिसके लिए यह दर्द सहा जा रहा हैं।

1983 में प्रसारित फिल्म 'मंडी' में बदलते वक्त, रिश्तों की बेबसी को दर्शानेवाली उनकी ग़ज़ल जिसमें गहरा व्यंग्य हैं -

ज़बाने बदलते हैं, दिलदार बदलते हैं,
जब वक़्त बदलता है, किरदार बदलते हैं।
ये दुनिया-ए-फानी है, यहाँ क्या किसी का है,
पल में सब कुछ मिटता, सब यार बदलते हैं।2

इस ग़ज़ल में यह विचार दर्शाया गया है कि आज लोग समय के साथ अपनी बातें (वादे ,विचार) और अपने प्रियजनों (दिलदार) को बदल लेते हैं क्योंकि वक्त बदलने पर इंसानों के व्यक्तित्व (किरदार) और व्यवहार में भी बदलाव आ जाता है। यह सब समय का खेल है जहाँ पर हर कोई अपनी भूमिका बदलता है और सच्चाई यही है कि हर बदलाव अस्थायी है।

गुलज़ार -

हिंदी फिल्मों में अपने गीतों और ग़ज़लों के ज़रिए एक अलग ही मुकाम हासिल करने वाले संपूर्ण सिंह कालरा का जन्म 18 अगस्त, 1934 को झेलम जिले (वर्तमान में पाकिस्तान में हुआ था।) उन्होंने 29 वर्ष की आयु में गीतकार के रुप में करियर की शुरुआत की और आज वे हिंदी फिल्मों में बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। उन्होंने कवि , गीतकार, निर्देशक, पटकथा लेखक और संवाद लेखन में भी हाथ आजमाया है। उन्होंने अपना उपनाम गुलजार (फूलों का बाग या उद्यान) इसी उपनाम से वे व्यापक रूप से आज जाने लगे हैं।

उन्होंने एक से बढ़कर एक गीत लिखकर जन-जन के हृदय के तार झन-झनाए और उन्हें भाव -विभोरकर फिल्मी गीत गंगा को समृद्ध किया। उनका लिखा हुआ गीत ऑस्कर पुरस्कार मंच पर भारत वर्ष को 'जय हो' कहकर जयघोष करता है। गुलजार जी को तीन बार राष्ट्रीय पुरस्कार से भी नवाजा जा चुका हैं।इस वर्ष (2025) में गुलज़ार जी को उन्हें 58 वें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

गुलजार जी के गज़लों के बारे में बात करें तो उसमें अक्सर तन्हाई (अकेलापन), प्यार, बचपन की यादें, वक्त(समय की नश्वरता), प्रकृति और समाज की उलझने, जीवन की सच्चाइयाँ जैसी भावनाएँ गहराई से प्रकट होती हैं। गुलजार जी के गजल के बारे में इतना अधिक कह सकती हूँ कि उनकी हर एक ग़ज़ल हर इंसान के एहसास से जुड़ती हैं।

उनकी हिंदी फिल्मों में लिखी हुई कुछ बेहतरीन और सबसे यादगार गजलें-

1987 में प्रसारित फिल्म 'इजाजत' में प्रेम और उसकी समर्पण अनुभूति को उच्चतम सीमा पर ले जाकर मन को एक गहरा ठहराव देने वाली गुलजार द्वारा रचित गज़ल-

"मेरा कुछ सामान तुम्हारे पास पड़ा है

ओ सावन के कुछ भीगे भीगे दिन रखे हैं।"3

इस गजल में एक प्रेमिका अपने गुजरे हुए प्यार की यादें और बिताए हुए उन पलों को वापस चाहती हैं,जो अब प्रेमी के पास पड़े हैं और उसके जीवन का हिस्सा बन चुके हैं।

जिंदगी के दर्द, उसकी उलझनों और मासूमियत पर हैरान होने के भावों को दर्शाने वाली 'मासूम' फिल्म की ये ग़ज़ल-

"तुझसे नाराज़ नहीं ज़िन्दगी, हैरान हूँ मैं
ओ हैरान हूँ मैं
तेरे मासूम सवालों से परेशान हूँ मैं
ओ परेशान हूँ मैं।"4

जहाँ शायर जिंदगी से शिकायत नहीं करता बल्कि उसके अनजाने रास्तों, हर मोड़ पर मिलने वाले दर्द और हर मुस्कुराहट के पीछे छुपे कर्ज को देखकर हैरान और परेशान है, जैसे यह जीवन एक पहेली हो जिसे वह समझने की कोशिश कर रहा है।

1975 में प्रसारित फिल्म 'मौसम' में गुलज़ार साहब की यें मशहूर गज़ल-

"रुके रुके से कदम, रुक के बार-बार चले
करार लेके तेरे, डर से बेकरार चले
सुबह ना आई, कई बार नींद से जागे थी
एक रात की ये जिंदगी, गुजर चले।"5

यह गजल एक रिश्ते में ठहराव और फिर से आगे बढ़ने की चाहत को दर्शाती हैं। प्रेमी के मन की उथल-पुथल और उसके बार-बार अपने प्रिय के पास लौटने की भावना को खूबसूरती से व्यक्त किया हैं।

निदा फ़ाज़ली -

आधुनिक उर्दू शायरी के बहुत ही लोकप्रिय शायर निदा फ़ाज़ली का जन्म 12 अक्टूबर,1938 को दिल्ली में हुआ था।इनका पूरा नाम मुक्तिदा हसन निदा फ़ाज़ली है, जो बाद में निदा फ़ाज़ली के रूप में प्रसिद्ध हुआ। निदा फ़ाज़ली इनका लेखन का नाम है। निदा का अर्थ है स्वर/ आवाज़। फ़ाज़िला कश्मीर के एक इलाके का नाम है जहाँ से निदा के पूर्वज आकर दिल्ली में बस गए थे, इसलिए उन्होंने अपने उपनाम में 'फ़ाज़ली' जोड़ा।

उन्होंने सीधी जुबान के जरिए लोगों तक अपने कलाम पहुंचाएं। नए विषयों, शैलियों और भाषा का प्रयोग करके उर्दू कविता को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया।

निदा फ़ाज़ली की कुछ प्रमुख कृतियाँ -आँखों भर आकाश, मौसम आते जाते हैं, खोया हुआ सा कुछ, लफ़्ज़ों के फूल, मोर नाच, आँख और ख़्वाब के दरमियाँ, सफ़र में धूप तो होगी आदि।

निदा फ़ाज़ली को वर्ष 2013 में भारत सरकार द्वारा उनके साहित्य में योगदान के लिए पद्म श्री सम्मान से नवाज़ा गया था, जो भारत के सर्वश्रेष्ठ पुरस्कारों में से एक हैं।

उन्होंने हिंदी फिल्मों में जैसे-आप तो ऐसे ना थे, सरफरोश, रजिया सुल्ताना, (कवियों/जगजीत सिंह के एल्बम से लोकप्रिय) जैसी कई बेहतरीन ग़ज़लें लिखी हैं -

1999 में प्रसारित हुई फिल्म 'सरफरोश' की गजल जो इतिहास की सबसे ज्यादा सुने जाने वाली गज़लों में से एक है और जो कबीर दास के दोहे -'हमन हैं इश्क मस्ताना' से प्रेरित है।गम हो या उदासी का मौका,मन को तनावमुक्त अवस्था में ले जाने वाली उनके द्वारा लिखित ग़ज़ल प्रस्तुत हैं -

"होश वालों को खबर क्या बेखुदी क्या चीज़ है,
इश्क़ कीजे फिर समझिए ज़िंदगी क्या चीज़ है।"6

यह गज़ल इस विचार को दर्शाती हैं कि आज जो लोग दुनियादारी और होश में रहते हैं वे प्रेम और आत्म-विस्मृति (बेखुदी) के गहन अनुभव को नहीं समझ पाते; असली जीवन का अर्थ प्रेम में डूबने से ही पता चलता है।

1986 में प्रकाशित पुस्तक 'आँख और ख्वाब के दरमियान' में जीवन के उतार- चढ़ावों और संघर्षों में आगे बढ़ते रहने का संदेश देने वाली उनके द्वारा लिखित प्रेरणादायक यें ग़ज़ल-

" सफ़र में धूप तो होगी तो जो चल सको तो चलो,
सभी हैं भीड़ में तुम भी निकल सको तो चलो।"7

यह ग़ज़ल हमें यह सीख देती है कि जीवन की राह आसान नहीं है, इसमें चुनौतियाँ (धूप) तो आएंगी ही, अगर हिम्मत है तो इन मुश्किलों से लड़कर आगे बढ़ो; क्योंकि रास्ते किसी के लिए बदलते नहीं,आपको खुद को बदलना होगा, और भीड़ में खोए बिना अपनी राह खुद बनानी होगी।

दुनिया की नश्वरता, क्षणभंगुरता और असलियत के विचार को दर्शाने वाली उनकी मशहूर गजल जिसे जगजीत सिंह ने आवाज देकर लोकप्रिय बनाया-

"दुनिया जिसे कहते हैं जादू का खिलौना है
मिल जाए तो मिट्टी है खो जाए तो सोना है।"8
(एलबम 'मिर्जा')

मनुष्य को हमेशा सांसारिक चीजों और रिश्तों से मोह नहीं करना चाहिए क्योंकि वे सब नश्वर है और उनका कोई स्थाई मूल्य नहीं है, वे बस आते- जाते रहते हैं।

जावेद अख्तर -

जावेद अख्तर जी का नाम देश का बहुत ही जाना पहचाना नाम है। एक भारतीय मशहूर शायर, फिल्मों के गीतकार और पटकथा लेखक तो हैं ही, सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में भी एक प्रसिद्ध हस्ती हैं।उनका जन्म 17 जनवरी, 1945 को ग्वालियर में हुआ था। उनके पिता जां निसार अख्तर प्रसिद्ध प्रगतिशील कवि और माता सफ़िया अख्तर मशहूर उर्दू लेखिका तथा शिक्षिका थी।

बचपन से ही शायरी से जावेद अख्तर जी का गहरा रिश्ता था। जावेद अख्तर ने जिंदगी के उतार चढ़ाव को बहुत करीब से देखा था, इसलिए उनकी शायरी में जिंदगी के फ़साने को बड़ी शिद्दत से महसूस किया जाता हैं।

उन्होंने अपने लगभग पाँच दशक के करियर में अनगिनत बेहतरीन गीत लिखें हैं,जो आज भी लोगों को प्रेरित करते हैं- 'संदेसे आते हैं'(बॉर्डर), 'यह जो देश है मेरा' (स्वदेश), 'जिंदगी की यही रीत है' (मिस्टर इंडिया), 'हर घड़ी बदल रही है रूप जिंदगी' (कल हो ना हो) आदि फिल्मों में सुनहरे गाने देने वाले दिग्गजों में से एक हैं।

उन्हें कई फ़िल्मफ़ेयर सर्वश्रेष्ठ गीतकार पुरस्कार , राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार, और पद्म भूषण से सम्मानित किया गया हैं।

उनकी हिंदी फिल्मों में लिखी हुई कुछ अविस्मरणीय गजलें जो आज भी गूंजती हैं-

1982 में प्रसारित फिल्म 'साथ- साथ' में जावेद अख्तर द्वारा रचित ख़ूबसूरत ग़ज़ल -

"तुमको देखा तो ये खयाल आया
ज़िंदगी धूप तुम घना साया।"9

यह गजल रोमांस, सादगी और जीवन के उतार-चढ़ाव के भावों को व्यक्त करती हैं।जहां प्रेमी के आने से जिंदगी में सुकून (धूप में घना साया) आता है।

1998 में प्रसारित एल्बम 'सिलसिले' में जावेद अख्तर द्वारा लिखी हुई और जगजीत सिंह द्वारा गाई हुई गजल-

"दर्द के फूल भी खिलते हैं बिखर जाते हैं,
जख्म कैसे भी हों कुछ रोज़ में भर जाते हैं।"10

यह गजल बताती हैं कि जीवन में दुख, पीड़ा और निराशा के क्षण आते तो हैं लेकिन यह सब अस्थाई होते हैं। समय के साथ सब ठीक हो जाता है और हर घाव भर जाता है और यही प्रकृति का नियम हमें सिखाता है।

प्रसिद्ध एल्बम 'ख्वाहिश' में जावेद अख्तर द्वारा लिखी हुई यह गजल-

"मुझको यकीं है सच कहती थी जो भी
जब मेरे बचपन के दिन थे चांद में परियां रहती थी।"11

यें ग़ज़ल बचपन की मासूमियत, मां की बातों में छिपे जीवन के सच और बड़े होने बाद के अकेलेपन के बीच के अंतर को महसूस कराती हैं।

कैफ़ी आजमी-

कवि और गीतकार कैफ़ी आज़मी का जन्म 14 जनवरी, 1919 को उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के छोटे से गांव मिजवान में 'अथर हुसैन रिजवी' के नाम से हुआ था। साहित्यिक पृष्ठभूमि वाले परिवार से होने के कारण कैफ़ी को जन्म से ही

भाषाओं का ज्ञान प्राप्त तथा। लेखन में भी उनकी स्वाभाविक रुचि थी, इसी रुचि के कारण में सज्जाद जहीर द्वारा प्रवर्तित प्रगतिशील लेखक आंदोलन से जुड़ गए।

कैफ़ी आज़मी का हिंदी सिनेमा में प्रवेश भले ही रोजी-रोटी कमाने के लिए हुआ हो, लेकिन इसमें उनके योगदान को कम करके नहीं आंका जा सकता। उन्होंने गीतकार, कथाकार, पटकथा लेखक और संवाद लेखक के रूप में असाधारण ख्याति अर्जित की।

कैफी साहब को कई पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हुए हैं और विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों ने उन्हें सम्मानित किया है।

कैफी आज़मी ने सरल शब्दों के माध्यम से चीजों का बहुत प्रभावशाली ढंग से वर्णन करने की कला में महारत हासिल कर ली थी।

सन 1982 में प्रसारित फिल्म 'अर्थ', जिसमें शबाना आज़मी, स्मिता पाटिल (जिन्हें उस समय आधुनिक युग की मीना कुमारी कहा जाता था), कुलभूषण खरबंदा और राज किरण ने अभिनय किया था। इसका संगीत कुलदीप सिंह ने तैयार किया था। जी ग़ज़ल गायक का नाम हयुग के ग़ज़ल बादशाह: जगजीत सिंह ।

"झुकी झुकी सी नज़र बेक़रार है कि नहीं
दबा दबा सा सही दिल में प्यार है कि नही।"…12

यह ग़ज़ल अधूरी मोहब्बत, छिपे हुए अहसासों और एकतरफा या अनकही मोहब्बत के अहसास को दर्शाती है, जिसमें शायर अपने महबूब से उसके दिल की हालत जानना चाहता है।

जब कैफ़ी आजमी ने चेतन आनंद की 'हकीकत' (1964) के लिए गीत लिखे, जो भारत की अब -तक की सबसे महान युद्ध फिल्म थी, इसमें उन्होंने लिखा हुआ गीत जिसने पूरे देश को रुला दिया-

" कर चले हम फ़िदा जानो-तन साथियो
अब तुम्हारे हवाले वतन साथियो।"

इस गीत में देशभक्ति, बलिदान, कर्तव्यनिष्ठा और मातृभूमि के प्रति अटूट प्रेम के भाव हैं, जिसमें सैनिक मरते दम तक देश की रक्षा करने और अपनी जान न्योछावर करने की बात कहते हैं, ताकि देशवासी उनकी विरासत को आगे बढ़ा सकें और देश की शान, विशेषकर हिमालय की रक्षा कर सकें, जिसमें वीरता, त्याग, और अमरता की भावना भी झलकती है।

निष्कर्ष:

इस प्रकार उपर्युक्त हिंदी फिल्मों में गजलों का महत्व गहरा है, क्योंकि वे प्रेम, विरह, सामाजिक दर्द, और जीवन की विसंगतियों को गहराई से व्यक्त करती हैं, जिससे दर्शक भावनात्मक जुड़ाव महसूस करते हैं; यह कला के रूप में मनोरंजन के साथ-साथ समाज की गहरी सच्चाई को भी उजागर करती है, जिससे आम जनता के दिल में उतरकर मानवीय भावनाओं को सार्थक विचार और संवेदना के साथ पेश करती है।

संदर्भ ग्रंथ-

1. तरकश, जावेदअख़्तर प्रकाशक- राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110 002.
2. हिंदी ग़ज़ल के प्रमुख हस्ताक्षर, डॉ मधु खराटे, प्रकाशक- विद्या प्रकाशन, सी,449, गुजैनी, कानपुर -22 संस्करण-2012 ई.
3.उर्दू व शायरी (कविता संग्रह),निदा फ़ाज़ली प्रकाशक: नई आवाज़, जामिया नगर, नई दिल्ली प्रकाशन वर्ष: 1986
4.गजलकार दुष्यंतकुमार, डॉ० अविनाश वसंतराव कासांडे प्रकाशक- समता प्रकाशन,बजरंग नगर, कानपुर (देहात) 209303: प्रथम 2010 ई0 संस्करण
5. हिंदी ग़ज़ल का उद्भव व विकास ,रोहिताश अस्थाना
6. हिंदुस्तानी संगीत में गजल गायकी, डॉक्टर प्रेम भंडारी
7.साठोत्तरी हिंदी ग़ज़ल, डॉ . मधु खराटे.
8. यू ट्यूब चैनल
9. शोध आलेख में प्रस्तुत हिंदी फिल्में और उनके गीत
10.' यतीन्द्र मिश्र, गुलज़ार सा'ब हज़ार राहें मुड़ के देखीं..., वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,

*****

गज़लों में सामाजिक परिदृश्य

प्रा. प्रतिक्षा शांताराम ठुंबरे
राजाराम महाविद्यालय, कोल्हापूर
मो. 9325674362
pratikshathumbare111@gmail.com

सारांश :

गज़ल विश्व की सबसे लोकप्रिय प्रभावशाली साहित्यिक विधा रही है। यह साहित्यिक विधा सिर्फ प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं करती, बल्कि समाज के हर एक पहलू पर तंज़ (फारसी शब्द) खींचती है। हिंदी ग़ज़ल में 'दुष्यंत कुमार' जी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। उन्होंने गज़ल की भाषा को आम जनमानस की भाषा बनाया है। गज़ल में दिखनेवाले परिदृशों में समाज के हर तक्के का प्रतिबिंब दिखता है। मिर्ज़ा ग़ालिब 'फ़ैज़', अहमद फैजीर, लुधियानवी, दुष्यंत कुमार, अहमद गोंडवी आदि लोकप्रिय गज़लकारों ने गज़ल को लोकप्रिय विधा बनाया है। समाज में होते गए बदलाव के कारण गजल में भी सामाजिक परिदृश्यों का चित्रण किया गया। समाज की स्थिति समान्य मनुष्य तक गज़ल के कारण पहुँचती गई।

बीज शब्द :

गज़ल, समाज, गरीबी, बेरोजगारी, धर्म, भ्रष्टाचार, मानविमूल्य, नैतिकता, रिश्ते, परिवार, इन्सानियत, नारी आदि।

प्रस्तावना :

गज़ल के ऊपर परिस्थितिके अनुसार, आस्था, लिखनेवाले की सोच का असर पड़ा है और वह हर स्तर पर बदलती गई फिर भी गज़ल को हिंदी गज़ल उर्दू गज़ल इस तरह से विभाजन करना ठीक नहीं है बल्कि गज़ल अपने विशिष्ट रूप (शेर, मतला, मक्ता, काफिया, रदीफ़ आदि) के कारण ही गज़ल है। गज़ल में होते गए बदलाव जैसे उर्दू, फारसी शब्दों के अलावा हिंदी के शब्द जैसे माधुर्य, श्रृंगार आदि। आगे चलकर सामाजिक समस्या, राजनीतिक परिपेक्षों ने ली पर इसका मतलब यह नहीं कि, गज़ल ने अपना अस्तित्व खोया बल्कि वह नए रूप, में नए ढंग में और भी लोगों के करीब आ सकी। गज़ल ने अनेक प्रतीकों को अपनाकर अपने आपको और भी समृद्ध बनाया। आज बहुत सारे लोग गज़ल लिख रहे हैं। नए भावों का चित्रण कर अपनी रचनाएँ प्रभावपूर्ण बना रहे हैं। गज़ल का यह बदलता रूप देखकर उसका भविष्य परिपक्व होकर सुंदर रूप में समाज के सामने आएगा इसमें संदेह नहीं।

"गज़ल का शुभारंभ ईरान की भूमि पर हुआ। ईरान में फारस नामक एक प्रांत है। अतः फारसी के नाम पर इस देश को कोप्रास और यहाँ की भाषा को फारसी कहा जाने लगा।"[1]

"दूसरी और ग़ज़ल शब्द का अर्थ है कि औरत या प्रेमिकासे बाते करना। ग़ज़ल की एक खास विशेषता है कि इसमें कशिश भरी द्रवणशीलता होती हैं। इस तरह ग़ज़ल का से सर्वसाधारण से एक अर्थ यह निकाला जाता है कि माशूकासे बातचीत का माध्यम।"[2]

अरबी भाषा में ग़ज़ल का शाब्दिक अर्थ काटना बोलना होता है। शब्दों का कातना और वाक्य में बुनना, पहले गज़ल का प्राथमिक रूप यही रहा होगा जो बाद में स्थलानारूप बदलता गया।

"यूं ग़ज़ल को विभिन्न तहरिकात ने भी प्रभावित किया। अगरचे परंपरा और नएपन के दर्मियान बराबर कश्मकश जारी रहीं है। हमेशा नए और पुरानेपन पर विरोध के सुर उठते रहे हैं मगर ग़ज़ल इन हालात में भी आसमान की बुलंदियाँ छूती चली आ रही है।"[3]

गज़ल का अर्थ और परिभाषा :

ग़ज़ल को परिभाषित करते हुए स्वयं दुष्यंत कुमार ने कहा है...

"में जिसे ओढ़ता बिछाता हूँ
वो ग़ज़ल आपको सुनाता हूँ"[4]

भारत पर बहुत सारे आक्रमण हुए। आक्रांताओं के द्वारा उनकी खुदकी संस्कृति, भाषा, वेशभूषा, खान-पान बहुत सारी चीजें भारत में आयी। समय के साथ-साथ कुछ चीजें यहाँ के लोगों ने भी स्वीकार कर ली या यह भी कहना ठीक रहेगा कि यहाँ की संस्कृति में घुलती गई और अलग मिश्रित संस्कृति उभर कर आयी। गज़ल का मूल रूप और उसका बदलता गया रूप इसी को ही दर्शाता है।

गज़ल में सामाजिक परिवेश का चित्रण :

जब 'समाज' कहते तो उसमें बहुत सारे घटक सम्मिलित हो जाते हैं। नारी समस्या, जाती, रंगभेद, आडंबर, विषमता, उच-नीच, बेरोजगारी, नैतिक-अनैतिकता आदि। गज़ल के बदलते रूप ने समाज के उस हर पहलू पर अपनी छाप छोड़ी है। जितनी बेबाकी से गज़ल समाज के हर तक्के में घुल-मिल गई। उसी तरह समाज ने भी गज़ल को उसी बेबाकी से स्वीकार किया।

गरीबों की दशा :

धनवान, धनवान बनता जा रहा है और गरीब हर वक्त पिसता रहा है। गरीब एक-एक रोटी के लिए तरसता है; गरीबि के चंगुल से छूटने का कोई रास्ता नजर नहीं आता। अखलाल अहमद 'खान' जी ने अपने गजलों में गरीबी की व्यथा को समाज तक पहुंचाने का काम किया है। वह कहते हैं...

"धनवान निर्धनों का लहु चुस-चुस कर
रोटी भी दे रहे तो उपकार की तरह
भूख में आखिर कौन हंसेगा लेकिन वह रे मजदूर
तेरे ही बच्चों का जिगर है और ना वह कोई बात नहीं।"[5]

समाज के गरीब तबके की वह व्यथा जिसे धनवान लोक मेहरबानी समझते हैं कोई उन्हें जाकर यह बताएँ वह उपकार नहीं बल्कि उनसे उनका हक छिनने का कार्य कर रहे हैं। उपकार को महानता समझ रहे जबकी वो उनका हक मार रहे हैं। धनवान लोगों के दिखावटीपन पर तंज खींचते हुए 'विनोद तिवारी' लिखते हैं...

"बाबूजी बोलो गरीब का दुनिया में रखवाला कौन
हमदर्दी की भूख नहीं, देगाहमें निवाला कौन"[6]

गरीबों को हमदर्दी की नहीं, उन्हें उनके मानवीय हक देने की जरूरत है।

बेरोजगारी से नाता :

रोजगार न होना ये त्रासदी किसी एक की नहीं बल्कि की समाज में बसा बहुत बड़ा तबका इससे प्रभावित है। 20वीं सदी हो या आज की 21वीं सदी समस्या कायम है। महेंद्र सक्सेना 'हुमा' जी ने आज से कई सालों पहले लिखी गज़ल आज भी समाज का चित्रण लगता है। वह कहते हैं...

"थे खिलौने और भी दुकान में
हाथ बच्चे का तमंचे पर गधा
बेरोजगारी, टीस, घुटन, दर्द औ' कसक
इन सबको मेरे घर का पता कौन दे गया"[7]

बेरोजगारी अकेले नहीं आती वह अपने साथ दर्द, घुटन ले आती है जो जीवन दुश्वार कर देती है।

धार्मिक उलझने :

धर्म समाज का संवेदनशील भाग है। धर्म की बातें बहुत आसानी से लोगों के भावनाओं को आहत करती है। आहत हुए मन बिना सोचे समझे हाथ में लाठी, तलवार उठा लेते हैं। न बंधु-भाव, प्रेम, दया इन सब का एक ही पल त्याग कर क्रूरता का मुखौटा चढ़ाया जाता है। जो लोग इस पछेड़े में आसानी से पड़ जाते हैं। वह जीवन भर इस नाली में बहते रहते हैं। वह कभी किनारे पर ही नहीं आ पाते क्योंकी उन्हें किनारे का रास्ता ही दिखाया नहीं जाता।

"धर्म के नाम पर रंजना है लूटी
लुट गई मोहसीना मुझको जाने बिना
तीर तलवार से बात बनती नहीं
तन जिगर प्राण मन में शहादत रहे"[8]

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि मानवता के लिए बलिदान, अन्याय विरुद्ध लड़ने की चेतना मन में हमेशा जीवित रखनी चाहिए। इसलिए भावनाओं में बहे बिना समाज में घटित घटनाओं को सूझ-बुझ से सुलझाना जरूरी है, ना की तलवार की धार से।

भ्रष्टाचार की होड़ : आज भ्रष्टाचार अपने चरम पर है। भ्रष्टाचार ने चारों ओर अपने पंख फैलाए हुए हैं। आज का वक्त है उस समस्या को दुलार ने की बजाएँ सच्चाई से आँख मिलाकर भ्रष्टाचार के मुह पर तमाचा मारा जाए। समाज निर्माण, समाज सुधार

और विश्वास इन बातों पर काम करना आवश्यक नहीं बल्कि समाज के इस अंग पर काम करना समय की जरूरत है। 'अक्षय गोजा' कहते हैं...

"मोसम की चर्चा हुई पुरानी, भ्रष्टजनों की बात करें
देश की अखंडता खतरे में, उग्रजनों की बात करे"[9]

नारी की व्यथा :

हर काल के इतिहास में घटित घटनाओं को उठाके देखे तो नारी पर सबसे ज्यादा अत्याचार हुए। आज भी होते आ रहे हैं। शायद 'स्त्री' का समाज को किसी भी परिस्थिती में सबल होना स्वीकार नहीं हुआ। स्त्री ने पढ़ना, नौकरी करना, निर्णय लेना, विचार व्यक्त करना समाज में कुंठित वर्ग को ये कभी मंजूर नहीं हुआ। 'सियाराम प्रहरी' की ये गज़ल इस बात का मार्मिक उदाहरण है।।

"बेटियाँ जल गई या जलाई गई
आपको ज्ञात है और मत पुछिए
सियाह रात में कातिल का भय सताता है
जल न डे कहीं चमन कहो कहाँ जाएं"[10]

रिश्तों में कश्मकश :

रिश्तों में दुरिया आना आम बात हुई है। लोगों के सिर पर उन्माद छाया हुआ है। रिश्तों की कदर करना लोग भूल गए हैं। आपसी संबंधों में दूरियाँ आ गयी हैं। समाज में इससे अराजकता का मंजर दिखाई देता है। सच्चे विचार, मुल्य, प्रेम जैसी पवित्र भावना वासनाधीनता की शिकार बन चुकी हैं। 'गणेशदत्त दशारस्व' की माने

"सबंधों का आज हो रहा राज्य है
सर पर जाने कैसा चढ़ा जुनून है
हर ओर अराजकता ही करती राज्य है
खुदगजी की भेंट हुआ कानून है"[11]

भारतीय संस्कृति में सबसे बड़ी बात है परिवार। आज वो ही खत्म होने के कगार पर है। रिश्तों में प्यार, आदर, सन्मान की भावना का रुझान सामाजिक जरुरत बनी हुई है।

मानवीय मूल्य और नैतिकता :

"संगे अस्वद हो या शिवलिंग सिजदे में तो इन्सान ही है
इन्सानी रिश्ते की पुँजी का कोष कभी लुटे न कोई"[12]

ओमप्रकाश मिश्रा 'कंचन' कहते हैं भगवान की पुजा करो, धर्म में आस्था रखो परंतु इन्सान को इन्सान की तरह देखो मनुष्य के अंदर के भगवान को पूजो, भगवान का वास वहीं होता है जहाँ मानवता, भूतदया, नैतिकता का पालन हो। समाज को एक साथ बांधने का काम नैतिकता करती है। जज़्बातों को खुद पर हावी न होने देना, सच्चाई से चलना समाज को बेहतर बना देता है।

"याद भी ख्वाब भी, हकीकत भी
जिंदगी जाम भी, मुसीबत भी
रहना हो गए है अब दिलों में फासले क्यों इस कदर
मजिलों से भी अहम है रास्ते क्यों इस कदर"[13]

समाज में घटित इन सारी उलझनों के बावजूद जिंदगी कभी रुकती नहीं। समाज में बहुत सारे कुकर्म होते रहते है। गज़लकारों ने बेबाकी से उसपर बात भी की है। उनकी वेदनाओं को भी प्रकट किया है। समाज में बुरी बाते है तो अच्छी बातों का भी जिक्र होना जरूरी है। बुराईओंपर जीत पाना, मानवता, इन्सानियत जिंदा रखना यही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए।

निष्कर्ष :

गजलकारों ने समाज के मुल भावों को गज़ल में पिरोया है। समाज के हर पहलू पर रोशनी डालने का काम किया है। सामाजिक विषमता, सामाजिक विवंचना, अनैतिकता, समाज की गंभीर समस्या हर पहलू पर गज़लों में बाते हुई है। फिर भी जैसे

बुराई पर अच्छाई अपनी छाप छोड़ती है उसी प्रकार गज़ल के बदलते रूप ने सामाजिक समस्याओं के साथ समस्या का समाधान देने की भी कोशिश की है। गजलों का समाज पर अच्छा प्रभाव भी पड़ा है। शायद यही है बुराई पे अच्छाई प्रभाव।

संदर्भ सूची :

1) रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी गज़ल उद्भव व विकास, स्पेस पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण 2018 पृष्ठ 9
2) आइना-ए-ग़ज़ल, संपादक जरीना साहनी, डॉ. विनय वाईकर, बुक गंगा पब्लिकैशन पृष्ठ 242
3) डॉ. कैलाश गुरु स्वामी, गज़ल दुष्यत के बाद, संपादक दीक्षित दनकौरी, वाणी प्रकाशन पृष्ठ XI
4) आर. पी.शर्मा गज़ल दुष्यत के बाद, संपादक दीक्षित दनकौरी, वाणी प्रकाशन पृष्ठ xii
5) अखलाक अहमद खान, गज़ल दुष्यत के बाद, संपादक दीक्षित दनकौरी, वाणी प्रकाशन पृष्ठ 51
6) विनोद तिवारी, गज़ल दुष्यत के बाद, दीक्षित दनकौरी, पृष्ठ गज़ल दुष्यत के बाद, संपादक दीक्षित दनकौरी, वाणी प्रकाशन पृष्ठ 108
7) महेंद्र हुमा, गज़ल दुष्यत के बाद, संपादक दीक्षित दनकौरी, वाणी प्रकाशन पृष्ठ 59
8) सियाराम प्रहरी, गज़ल दुष्यत के बाद, संपादक दीक्षित दनकौरी, वाणी प्रकाशन पृष्ठ 53
9) अक्षय गोजा, गज़ल दुष्यत के बाद, संपादक दीक्षित दनकौरी, वाणी प्रकाशन पृष्ठ 100
10) सियाराम प्रहरी, सियाराम प्रहरी, गज़ल दुष्यत के बाद, संपादक दीक्षित दनकौरी, वाणी प्रकाशन पृष्ठ 53
11) गणेशदत्त सारस्वत, गज़ल दुष्यत के बाद, संपादक दीक्षित दनकौरी, वाणी प्रकाशन पृष्ठ 68
12) ओमप्रकाश मिश्रा 'कंचन' गज़ल दुष्यत के बाद, संपादक दीक्षित दनकौरी, वाणी प्रकाशन पृष्ठ 70
13) लक्ष्मी खन्ना सुमन, गज़ल दुष्यत के बाद, संपादक दीक्षित दनकौरी, वाणी प्रकाशन पृष्ठ 119

*****

आचार्य श्री सत्यनारायण गोयंका के गीतों में जीवन मूल्य

शोधार्थी
मुकुंदा ठोंबरे
हिंदी विभाग ,
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय पुणे 411007
9552012958
mukunda.thombare@gmail.com

शोध निर्देशक
डॉ. अनिल काळे
सहयोगी प्राध्यापक एवं अध्यक्ष , हिंदी विभाग ,
ग्रामोन्नती मंडल संचलित कला,वाणिज्य तथा विज्ञान महाविद्यालय, नारायणगांव, तह . जुन्नर जि. पुणे 410504

शोध सार:

भारतीय समाज में जो प्रज्ञा-पुरुष उत्पन्न हुए उन्होंने अपने सुखपूर्ण परिवेश को त्यागकर जीवन के ऊँचे अनुभवों को प्राप्त किया। ऊँचे अनुभव प्राप्त करने के लिए उन्हें अनेक उपसर्ग सहने पड़े। आज भी व्यक्ति यदि समाज की अनेक समस्याओं को देखकर व्यथित होता है, और समाज में सकारात्मक बदलाव चाहता है तो उसे भी कई प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ता है। सामान्य रूप से यदि मनुष्य समाज में सकारात्मक बदलाव चाहता है तो उसे सबसे पहले खुद को भीतर से बदलना पड़ता है। मनुष्य को भीतर से तभी बदला जा सकता है जब वह स्वयं अपने व्यवहार को एक प्रेक्षक की भाँती देखना आरंभ करें। सामान्य रूप में इसे ही अध्यात्म की भाषा में प्रेक्षाध्यान कहा जाता है।

परोपकार की वृद्धि साहित्य में तभी प्रकट होती है जब रचनाकार की कथनी और करनी एक समान हो। मनुष्य का जीवन तभी मूल्यवान बन सकता है जब वह मानव के रूप में प्राप्त सभी क्षमताओं का उपयोग प्रकृति के कण-कण में उत्साह भरने के लिए करें। समाज में जिन लोगों ने खुद के व्यक्तित्व को औरों के कल्याण में लगाया उन्हें सदियों तक याद किया जाता है। सत्यनारायण गोयनका की सभी रचनाएँ और गीत इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। इन गीतों के शब्दों पर यदि व्यक्ति स्वयं चलने लगे तो निश्चित ही उसका जीवन मूल्य बढ़ सकता है। मनुष्य के जीवन का मूल्य इसी बात पर निश्चित होता है कि उसका जीवन कितनी मात्रा में औरों के लिए काम आया। अतः सत्यनारायण गोयनका द्वारा लिखे गए गीतों में जीवन मूल्य के कई रूप प्रकट हुए हैं।

बीज शब्द: गीत, ग़ज़ल, कविता, जीवन मूल्य, मानवी गुण

सत्यनारायण गोयंका आधुनिक युग में **विपश्यना ध्यान परंपरा** के सबसे प्रभावशाली आचार्यों में से एक थे। उन्होंने भगवान बुद्ध की प्राचीन विपश्यना साधना को सरल, वैज्ञानिक और सार्वभौमिक रूप में पुनः स्थापित कर उसे विश्वभर में फैलाया। सत्यनारायण गोयंका जी का जन्म **30 जनवरी 1924** को **बरमा (वर्तमान म्यांमार) के मांडले शहर** में एक भारतीय मूल के व्यापारी परिवार में हुआ। उनका परिवार राजस्थान के **चूरू (शेखावाटी क्षेत्र)** से **बरमा** जाकर बसा था। सत्यनारायण गोयंका जी का निधन **29 सितंबर 2013** को **मुंबई** में हुआ। उनके निधन को विश्वभर के विपश्यना साधकों ने एक युगांत के रूप में देखा, किंतु उनकी साधना-परंपरा आज भी निरंतर जीवित है। सत्यनारायण गोयंका जी ने बुद्ध की विपश्यना को जाति, धर्म और संप्रदाय से मुक्त रखा। आत्मशुद्धि और मानव-कल्याण का माध्यम बनाया। वे न केवल एक महान विपश्यनाचार्य, बल्कि मानवता के शिक्षक थे। उनका जीवन इस बात का प्रमाण है कि आंतरिक परिवर्तन से ही सामाजिक परिवर्तन संभव है।

भारत में विचार और धर्म-साधना दो अलग-अलग क्षेत्र माने जाते हैं। विचार को सामान्य तौर पर दर्शनशास्त्र के साथ जोड़कर देखा जाता है और धर्म को पंडितों और धर्मशास्त्रों पर आधारित माना जाता है। धर्म शास्त्रों में जो साधनाएँ बताई गई हैं, उन्हें प्रमाणित मानकर भारतीय समाज अग्रक्रमण करता है। सामान्य रूप से यह नज़र आता है कि समाज निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर हो रहा है पर प्रगति के अपने-अपने मानदंड हो सकते हैं। मनुष्य जाति की प्रगति का मूल्यांकन उसकी स्थाई वृत्तियों के परिपेक्ष में करना चाहिए। मनुष्य आज जिस प्रकार के स्वभाव और विचारों पर चलता है उसमें मानवोचित बदलाव होने चाहिए। उसका जीवन अधिकार अधिक करुणामय और मैत्री से युक्त होना चाहिए। मनुष्य और मनुष्यता की दृष्टि से यही मनुष्य जाति की प्रगति है।

भारतीय समाज में जो प्रज्ञा-पुरुष उत्पन्न हुए उन्होंने अपने सुखपूर्ण परिवेश को त्यागकर जीवन के ऊँचे अनुभवों को प्राप्त किया। ऊँचे अनुभव प्राप्त करने के लिए उन्हें अनेक उपसर्ग सहने पड़े। आज भी व्यक्ति यदि समाज की अनेक समस्याओं को देखकर व्यथित होता है, और समाज में सकारात्मक बदलाव चाहता है तो उसे भी कई प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ता है। सामान्य रूप से यदि मनुष्य समाज में सकारात्मक बदलाव चाहता है तो उसे सबसे पहले खुद को भीतर से बदलना पड़ता है। मनुष्य को भीतर से तभी बदला जा सकता है जब वह स्वयं अपने व्यवहार को एक प्रेक्षक की भाँती देखना आरंभ करें। सामान्य

रूप में इसे ही अध्यात्म की भाषा में प्रेक्षाध्यान कहा जाता है। इस देश में प्रेक्षाध्यान की विधि, भगवान महावीर और तथागत गौतम बुद्ध ने मनुष्य जाति को दिया हुआ सबसे ऊँचा वरदान है। मनुष्य जब तक स्वयं में नहीं झाँकता तब तक उसे पूरी दुनिया गलत और केवल खुद के विचार ही योग्य प्रतीत होते हैं। जब मनुष्य तटस्थ होकर अपने ही क्रियाकलापों का मूल्यांकन करने लगता है तो उसे अपने आप ही सारे रहस्य खुलने लगते हैं। मनुष्य को इस प्रकार का प्रेक्षा ध्यान करने की सुविधा बड़ी मात्रा में साहित्य प्रदान करता है। साहित्य का रसास्वादन करते-करते मनुष्य स्वयंके भीतर झाँक सकता है। साहित्य का मूल उद्देश्य भी यही है क्योंकि साहित्य का निर्माण है मनुष्य तब कर पता है जब वह स्वयं में झाँकने की क्षमता रखता है।

गीत, ग़ज़ल, कविता, खंडकाव्य और महाकाव्य इन सभी में जो एक मूलभूत तत्व समान है, वह है- प्रवाह। किसी भी काव्य-रचना में प्रवाह केवल अनुभूति की सच्चाई प्रतिबिंब बनकर रचना में प्रकट होता है। यदि अनुभूति की सच्चाई न हो तो लिखी गई कविता या गीत केवल शब्दों की साँठगाँठ है। कोई भी रचना गीत या काव्य की श्रेणी में तभी आ सकती है जब उसमें मनुष्य जाति को ऊँचा उठाने के भाव विचार और अनुभव भरे हों।

पिछली सदी में भारत में कई विचारक हुए जिनका प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी रहा। उनमें जे. कृष्णमूर्ति, अरविंद घोष, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, ओशो, और इसी श्रृंखला में विपश्यना की ध्यान विद्या संपूर्ण भारत में प्रतिष्ठित करने वाले सत्यनारायण गोयंका जी का नाम उल्लेखनीय है। इस लेख में सत्यनारायण गोयंका जी को केवल एक ध्यान गुरु के रूप में प्रस्तुत करना उद्देश्य नहीं है। जब मनुष्य के जीवन में ध्यान उतरता है तो उसकी प्रत्येक क्रिया ध्यानमय हो जाती है। उसका प्रत्येक कार्य अत्यंत सावधानी और विवेक के साथ संपन्न होता है। जब विवेक मनुष्य का स्थाई भाव बन जाता है तो उस मनुष्य का व्यवहार सभी के लिए आदर्श और अनुकरणीय हो जाता है। पिछली सदी के हिंदी साहित्यकारों में सत्यनारायण गोयनका का नाम कहीं भी लिया नहीं जाता जबकि वे न केवल एक अच्छे साहित्यकार थे बल्कि उनका साहित्य कई साहित्यिक रचनाओं के निर्माण और पुनर्निर्माण की ऊर्जा अपने भीतर समेटे हुए हैं।

सत्यनारायण गोयंका जी का साहित्य मानवीयता का साहित्य है। यह साहित्य हमें अच्छे बुरे का फर्क सीखने का काम नहीं करता बल्कि अच्छा कैसे बन जाता है इसकी विधि सीखाता है। व्यक्ति का अच्छापन उसके द्वारा कही गई बातों से प्रकट नहीं होता। बातें तो हर कोई अच्छी ही करता है परंतु मनुष्य का व्यवहार ही उसके अच्छे या बुरे होने का प्रमाण होता है। मनुष्य जब तक प्रकृति के लिए मैत्री भाव से परिपूर्ण नहीं हो जाता तब तक वह प्रकृति का केवल दोहन ही कर सकता है। कई बार तो मनुष्य को यह भी समझ में नहीं आता कि वह भी प्रकृति का ही एक अंश है और यदि वह प्रकृति को हानि पहुँचाता है तो बदले में वह अपनी झोली में भी हानी ही डाल रहा है। जीवन मूल्य यह शब्द दो शब्दों का जोड़ है। जीवन का जो मूल्य है जीवन की जो कीमत है वही जीवन मूल्य है। जीवन का अर्थ यहाँ केवल मनुष्य जाति के संदर्भ में नहीं है। प्रकृति में जिसमें चेतना है, उसमें ही जीवन है। इस दृष्टि से प्रकृति के कण- कण में जीवन समाया हुआ है। सभी जीव जंतु, प्राणी जगत और वनस्पति जगत के साथ मनुष्य मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित कर सकते है। जिस प्रकार के मैत्रीपूर्ण संबंधों की स्थापना मनुष्य कर सकता है उसी प्रकार की मैत्री कर पाना प्रकृति के अन्य किसी भी जीव के लिए असंभव है। मनुष्य मैत्री भाव के माध्यम से करुणामय बन सकता है। मैत्री और करुणा से ही अहिंसा प्रकट होती है। जब मनुष्य अहिंसा के पथ पर अभय होकर चलने लगता है तो ही वह सभी जीवों का कल्याण भाव रखने में सक्षम हो जाता है। मनुष्य के भीतर सभी जीवों के प्रति कल्याण भाव भरने की क्षमता केवल साहित्य में ही पाई जाती है। साहित्य मनुष्य को केवल सोचने के लिए उद्दीपित नहीं करता बल्कि उसे भीतर झाँकने के अवसर प्रदान करता है।

सत्यनारायण गोयंका के गीत यदि सच्चे अर्थ के साथ ग्रहण किए जाएँ तो वे पढ़ने वाले को वास्तव में बाहर और भीतर से बदलने की क्षमता रखते हैं। गोयनका जी के गीतों में अभिव्यक्त सहज जीवन मूल्यों को इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है। उनके गीतों में अभिव्यक्त मूल्यों को गीतों की पंक्तियों के साथ ही समझना योग्य लगता है।

एक दोहे में वे कहते हैं-

गुरुवर तेरे पुण्य का, कैसा प्रबल प्रताप।
जग दिशा अनित्य का, दूर हुए भावताप।।
धर्म दिया गुरुदेव ने, कैसा रतन अमोल।
मृत्युलोक के जीव को, अमृत का रसघोल।। (पृष्ठ 16)

इस गीत में आचार्य श्री ने मनुष्य के जीवन में गुरु के सहज महत्त्व को समझाया है। गुरु ही मनुष्य को नित्य और अनित्य के फर्क को समझाते हैं। गलत रास्तों पर भटकने से रोकते हैं। धर्म का अर्थ होता है कर्तव्य। मनुष्य को उसका असली कर्तव्य

असली गुरु ही सिखा सकता है। असली गुरु वही है जो स्वयं मानवता के मार्ग पर चलता हो। जो स्वयं मानवीय गुणों से भरा हो। यह काव्य पंक्तियाँ सिखाती हैं कि इंसान को दूसरों से कोई भी अच्छा काम सीखने का अधिकार तभी मिल सकता है जब वह स्वयं उन अच्छे कामों को अपने जीवन में करता हो। जिस व्यक्ति का व्यवहार और बातें अलग-अलग हो वह दूसरों के लिए गुरु बनने का अधिकारी नहीं है। यदि मनुष्य यह चाहता है कि लोग उसे गुरु स्वीकार करें तो उस व्यक्ति को पहले बाहर और भीतर एक समान व्यवहार करना पड़ता है।

वंदना करने योग्य बुद्ध महापुरुष:

भारत बुद्धों से भरा हुआ देश रहा है। इस देश में जितने प्रज्ञा पुरुष हुए जिन्होंने स्वयं को बदलकर दुनिया को बदलने के वास्तविक प्रयास किया है वे सारे पुरुष बुद्ध की श्रेणी में आते हैं। बुद्ध यह किसी व्यक्ति का नाम नहीं है। बुद्ध एक अवस्था है जिसे हर मनुष्य उच्च विचार और व्यवहार से अर्जित कर सकता है। वर्तमान मानव समाज में भी कई बुद्ध पुरुष विद्यमान हैं। बुद्ध पुरुष का एकमात्र लक्षण है कथनी और करनी में एक समान होना। जिस मनुष्य का व्यवहार संपूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिए पूर्ण रूप से समर्पित हो वह व्यक्ति बुद्ध पुरुष होता है। बुद्धत्व मौन में प्रकट होता है। बुद्ध पुरुष कभी भी अपने बुद्धत्व का दावा नहीं करता। बुद्ध पुरुष को उसके आचरण से लोग स्वयं जान जाते हैं। इस संदर्भ में सत्यनारायण गोयंका जी लिखते हैं -

जो सम्यक संबुद्ध है, धर्मभूत भगवंत।
वह पवन है पूज्य है, ब्रह्मभूत अरिहंत।।
जिस जननी की कोख से रत्न होय उत्पन्न।
सफल मनोरथ हो स्वयं, होव लोक प्रसन्न।। (पृष्ठ 21)

जब इंसान के जीवन में किसी बुद्ध पुरुष का आगमन हो जाता है, तब अपने आप ही उस व्यक्ति के जीवन में भी सम्यक आचरण प्रकट होने लगता है। सम्यक आचरण में सारे बाहरी भेदभाव विगलित होने लगते हैं। लिंग भेद, जाति भेद, वर्ण और प्रांत भेद और इसी प्रकार के अन्य भेद जो मनुष्य को उच्च और नीचे बनाने में महत्त्वपूर्ण कारक की भूमिका अदा करते हैं वह गलने लगते हैं। बुद्ध पुरुष अपने उच्च प्रभार के कारण ही सभी के लिए पूज्य होता है। उसका कोई शत्रु नहीं होता। बुद्ध पुरुष जन्म लेकर अपनी माता की कोख को गौरवान्वित कर देता है। बुद्ध पुरुषों का मार्ग मनुष्य को बाहर और भीतर से बदल देता है और मनुष्य वर्तमान में जीने लगता है और अपने आप ही प्रसन्न रहने लगता है। इस गीत में यह भी समझाया गया है कि प्रसन्नता वस्तुओं में नहीं मनुष्य के भाव का विषय है। यदि प्रसन्नता के भाव बनते हैं तो मनुष्य प्रसन्न माना जाता है और यदि उदासी के भाव बनते हैं तो करोड़ों की संपत्ति होने के बावजूद भी मनुष्य भाव से उदास रह सकता है।

धर्म ही कर्तव्य है:

मनुष्य ने अपने कर्तव्यों से कभी दूर भागना नहीं चाहिए। जिस प्रकार मनुष्य के शरीर के सभी अंग एक साथ होते हैं वैसे ही मनुष्य को उसके धर्म अर्थात कर्तव्यों से ही समाज में पहचान प्राप्त होती है। मनुष्य के कर्म यदि अच्छे हो तो उसे सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। मनुष्य के विचार और व्यवहार यदि अच्छे न हो तो समाज में उसकी हर समय निंदा होती है और कभी-कभी उस व्यक्ति के दुर्व्यवहार के लिए सामाजिक दंड भी दिए जाते हैं। सत्यनारायण गोयनका जी प्रत्येक व्यक्ति को धर्म के मार्ग पर चलने का आवाहन करते हैं। स्वयं का हित देखकर दूसरों का और सभी का हित देखने वाला व्यक्ति ही धर्म के ध्येय को पा सकता है।

धर्म हमारे संग हो, ज्यों शरीर के अंग।
बाल ने बांका कर सके, अरि सेना चतुरंग।।
जिससे मन निर्मल बने, उसमें सबका श्रेय।
निजहित परहित सर्वहित, यही धर्म का ध्येय।। (पृष्ठ 49)
संप्रदायों में धर्म नहीं होता:
धर्म न हिंदू बौद्ध है, धर्म न मुस्लिम जैन।
धर्म चित्र की शुद्धता, धर्म शांति सुख चैन।।
यही धर्म की परख है यही धर्म का माप।
जन-जन का मंगल करें, दूर करें संताप।। (पृष्ठ 81)

इस गीत में लौकिक धर्म का उल्लेख किया गया है। हिंदू ,बौद्ध, मुस्लिम, जैन यह सभी धर्म तभी कहलाएँगे जब उनके अनुसार मनुष्य का आचरण भी होगा। अगर उस तरीके का आचरण नहीं होगा तो वह केवल संप्रदाय बनकर उभरते हैं। वर्तमान समय में चित्र यही है कि जब कभी विवाद का विषय आता है तो लोग अपने धर्म की धर्म ग्रंथो की आड़ में दूसरों के धर्म को गलत ठहराने का प्रयास करते हैं। ऐसा करने से धर्म संप्रदाय बन जाते हैं। वास्तविक धर्म जब प्रकट होता है तो वह आचरण का अभिन्न अंग बनता है। धर्म की असली परख यही है कि मनुष्य बाहर भीतर से बदल जाता है। सब के प्रति मंगल भाव व्यक्त करता है और उसी के अनुसार व्यवहार करता है। मनुष्य में मैत्री करुणा अहिंसा सहज ही प्रकट होती है तो धर्म भी अपने आप ही प्रकट होता है। हिंदू बौद्ध मुस्लिम या जैन होना केवल किसी कागज के टुकड़े के साथ संबंध नहीं है। उसके अनुसार आचरण भी होना जरूरी है। यदि आचरण नहीं है तो कागज पर लिखा गया धर्म मात्र संप्रदाय है। मनुष्य के भीतर जब धर्म प्रकट होता है तो उसका चित्त शुद्ध हो जाता है। धर्म मनुष्य के मन को शांति और सुख से भर देता है। धर्म मनुष्य को वर्तमान में जीना सिखाता है। धर्म प्रकृति के कण कण में बसे मंगल भाव को देखने की क्षमता प्रदान करता है। जब व्यक्ति भूतकाल और भविष्य काल की चिंता से मुक्त हो जाता है तो अपने आप ही उसके जीवन के सारे संताप और विलाप खत्म हो जाते हैं। सत्यनारायण गोयनका के गीत मनुष्य को वास्तविक धर्म की ओर अग्रसर करते हैं। संप्रदाय और धर्म के अंतर को समझाते हैं।

निर्मल मन ही शांति का प्रदाता:

सामान्य रूप से यह देखा जाता है कि मनुष्य को दूसरों के क्रियाकलापों में बहुत सारे ऐब नज़र आते हैं। मनुष्य खुद को नहीं देख पाता। खुद की गलतियों को वह नज़रअंदाज कर देता है। मन को निर्मल बनाया जा सकता है, केवल ध्यान से। ध्यान कोई काम नहीं है। ध्यान निरंतर सजगता है। ज्ञान समाज का दूसरा नाम है। ध्यान सतत जागरूकता है। ध्यान गलती होने पर अहंकार से मुक्त होकर क्षमा माँगने और दूसरों से गलती होने पर हृदय खोलकर क्षमा करने का नाम है। ध्यान अहंकार शून्यता की माँग करता है। व्यक्ति अगर अहंकार से शून्य हो जाए तो उसकी माँग अपने आप ही निर्मल हो जाती है। उसमें कोई भी मल अर्थात ' बुराई' शेष नहीं रह पाती है। इस संदर्भ में आचार्य श्री कहते हैं -

सहज सरल मृदु नीर सा, मन निर्मल हो जाए।
त्यागे कुलिस कठोरता, गांठ न बढ़ने पाय।।
चित्त हमारा शुद्ध हो, सदगुण से भर जाए।
करुणा, मैत्री, सत्य से, मन मानस लहराय।। (पृष्ठ 111)

जब मनुष्य का मन निर्मल हो जाता है तो मन में किसी भी व्यक्ति के प्रति कोई दुर्भाव या गाँठ बच ही नहीं सकती है। यदि गाँठ हो तो मनुष्य के मन को निर्मल नहीं कहा जा सकता। मनुष्य के मन में गठन के रहते हुए चित्र में शुद्धता नहीं आ सकती और ना ही मनुष्य सद्गुणों से भर सकता है। सद्गुणों को पाने के लिए मृदु शब्दों का उपयोग करना भी उतना ही जरूरी है। सद्गुणों को पाने के लिए सभी जीवो के प्रति मैत्री भाव हो। सत्य को स्वीकारने की क्षमता हो तो सभी जीवो के प्रति करुणा अपने आप ही मन में प्रकट हो जाती है। करुणा और मैत्री से भरा हुआ मनुष्य अपने मन से भी निर्मल ही हो जाता है। इस जीत पर जितनी गहराई से विचार किया जाए उतने नए तथ्य सहज रूप से प्रकट होकर सामने आ जाते हैं।

स्वानुभूति ही सच्चा ज्ञान है:

दूसरों ने जिया हुआ सच उनके लिए सच हो सकता है परंतु उसे सच पर भरोसा करने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए वह पूर्ण सच नहीं होता। सच वही है जिसका एहसास हम स्वयं करते हैं। सत्य को कभी भी मान्यता से स्वीकार नहीं करना चाहिए। सत्य जानने का विषय है। सत्य तभी प्रकट होता है जब मन में समाए हुए सारे पूर्वगृह, मिथ्या विचार समाप्त हो जाते हैं। दर्शन शास्त्र या दूसरों के अच्छे अनुभव भी मनुष्य को बदलने के लिए काम में नहीं आते हैं। मनुष्य को बदलाव की शुरुआत खुद से ही करनी पड़ती है। मनुष्य को सुनी सुनाई बात पर भरोसा करके आगे नहीं बढ़ना चाहिए। मनुष्य को खुद खोज करनी चाहिए। मनुष्य स्वभाव से ही इस प्रकृति का एक खोजी जीव है। इस संदर्भ में सत्यनारायण गोयनका जी लिखते हैं -

मंथन मिथ्या कथन का, चित्त जगे पाप।
धोखा ही धोखा जगे , जगे ताप संताप।।
दर्शन मत की मान्यता, सुनी सुनाई बात।
निज अनुभव बिन ना मिले, शुद्ध सत्य अवदात।। (पृष्ठ 129)

हमारे संसार में कई प्रकार की मान्यताएँ रूढ़ होती चली गई और उन्हीं से नए-नए दर्शन प्रकट होते गए। जब किसी विचार या अनुभव को दर्शन कहा गया उसे समय के उन लोगों के लिए वह विचार उनके खुद के अनुभव थे। आज के समय में स्वयं अनुभव किए गए ज्ञान को ही शुद्ध सत्य मानना चाहिए। जो सत्य किसी दूसरों के विचारों और अनुभवों पर आधारित हो उसे सत्य नहीं माना जा सकता।

निर्भयता ही मुक्ति है:

मनुष्य निर्भय तभी बनता है जब वह स्वतंत्र हो। उसे अपनी स्वतंत्रता का पूर्ण भरोसा हो। उसे यह बात पता हो कि ना तो वह किसी को गुलाम बनाना चाहता है और ना ही वह किसी की गुलामी करता है। जब मनुष्य किसी और के तंत्र में अपनी हिस्सेदारी दिखाता है तो वह अपने आप ही परतंत्र हो जाता है। स्वाधीन व्यक्ति ही निर्भय रह सकता है। स्वाधीनता ही सुख शांति का मार्ग है।

निर्भय हो निर्वैर हो, सभी होय स्वाधीन।
सुख फैले समृद्धि हो, कोई रहे न दीन।।
दान, शील, श्रद्धा बढ़े, प्रज्ञा बढ़े प्रभुत।
मैत्री जागे, द्वेष से, अंतस रहे अछूत।। (पृष्ठ 260)

मनुष्य द्वारा किया गया सबसे बड़ा दान है ज्ञान का दान। ज्ञान के दान में भी मनुष्य अपने द्वारा प्राप्त किया गया ज्ञान का मार्ग केवल कथन कर सकता है। उस ज्ञान को पाने के लिए दूसरे व्यक्ति को अपना मार्ग खुद चुनना पड़ता है। उस मार्ग के कंकड़ पत्थर खुद उठाने पड़ते हैं। वह मार्ग प्रज्ञा का मार्ग होता है। जब मनुष्य के मन में मैत्री का भाव उत्पन्न होता है तो उसके अंतर मन से अपने आप ही सभी प्रकार के द्वेष भाव समाप्त हो जाते हैं। मैत्री और प्रेम केवल निर्भय की अवस्था में ही प्रकट होते हैं। कुल मिलाकर मनुष्य को ना तो अपनी स्वतंत्रता को खोना चाहिए और ना ही किसी जीव को अपने लिए गुलाम बनाना चाहिए। स्वतंत्रता ही नवनिर्माण का आधार होती है। स्वतंत्रता में ही मनुष्य नई खोज कर सकता है। मनुष्य की यह खोज स्वयं से शुरू होकर स्वयं पर ही खत्म होती है। मनुष्य खुद को यदि पूर्ण रूप से बदल दे तो उसके आसपास का वातावरण और उसके संपर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति अनायास ही उसे ऊर्जा ग्रहण कर लेता है। ऐसे मनुष्य में अपने आप ही सजगता प्रकट हो जाती है।

निष्कर्ष:

सत्यनारायण गोयनका जी हिंदी साहित्य के अग्रणी रचनाकार हैं। भारतीय समाज में उनकी ख्याति विपस्यनाचार्य के रूप में है। विपश्यना मनुष्य को उसके होने का वास्तविक कारण समझाती है। आज तक भारत में करोड़ों लोग भगवान बुद्ध की इस आध्यात्मिक यात्रा से उत्पन्न ध्यान की एक विशेष विधि से लाभान्वित हुए हैं। ध्यान जब मनुष्य के व्यवहार में प्रकट होता है तब वह समाज में अनुकरण करने योग्य व्यक्तित्व बन जाता है। साहित्य का उद्देश्य भी इसी प्रकार के मनुष्यों का निर्माण करना होता है।

परोपकार की वृद्धि साहित्य में तभी प्रकट होती है जब रचनाकार की कथनी और करनी एक समान हो। मनुष्य का जीवन तभी मूल्यवान बन सकता है जब वह मानव के रूप में प्राप्त सभी क्षमताओं का उपयोग प्रकृति के कण-कण में उत्साह भरने के लिए करें। समाज में जिन लोगों ने खुद के व्यक्तित्व को औरों के कल्याण में लगाया उन्हें सदियों तक याद किया जाता है। सत्यनारायण गोयनका की सभी रचनाएँ और गीत इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। इन गीतों के शब्दों पर यदि व्यक्ति स्वयं चलने लगे तो निश्चित ही उसका जीवन मूल्य बढ़ सकता है। मनुष्य के जीवन का मूल्य इसी बात पर निश्चित होता है कि उसका जीवन कितनी मात्रा में औरों के लिए काम आया। अतः सत्यनारायण गोयनका द्वारा लिखे गए गीतों में जीवन मूल्य के कई रूप प्रकट हुए हैं। इन जीवन मूल्य के रूपों को विश्लेषित करने के लिए और भी कई मार्ग अपनाएँ जा सकते हैं।

आधार ग्रंथ:

मंगल हुआ प्रभात- आचार्य श्री सत्यनारायण जी गोयंका, विपश्यना विशोधन विन्यास धम्मगिरी इगतपुरी, महाराष्ट्र, चतुर्थ संस्करण, 2010

संदर्भ ग्रंथ:

1. बरमा में लिखी गई मेरी कविताएँ- आचार्य श्री सत्यनारायण जी गोयंका, विपश्यना विशोधन विन्यास धम्मगिरी इगतपुरी, महाराष्ट्र, प्रथम संस्करण, 2013
2. साहित्य विवेचन- क्षेमचंद्र 'सुमन', योगेंद्रकुमार मल्लिक, आत्माराम एंड संस कश्मीरी गेट दिल्ली 6, तीसरा संस्करण 1963
3. धर्म- दर्शन की रूपरेखा, डॉ हरेंद्र प्रसाद सिन्हा, प्रकाशक- मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली 110007
4. काव्यशास्त्र- डॉ भागीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी, 221001, 16वाँ संस्करण 2005

राहत इंदौरी के 'गूँज' गजल संग्रह में प्रतिरोधी स्वर

डॉ. प्राजक्ता शिवाजी कुरळे
असिस्टंट प्रोफेसर(हिंदी)
महावीर कॉलेज, कोल्हापुर
मो. नं. 8007003317
prajaktakurale1358@gmail.com

सारांश :

उर्दू के आधुनिक गजलकार राहत इंदौरी ने अनेक सशक्त और करारी गजले लिखने का काम किया। इन्होंने अपनी गजलों के माध्यम से सिर्फ भावों का प्रकटीकरण ही नहीं किया बल्कि वे जनता की आवाज बने। उन्होंने समाज, राजनीति, धार्मिक कट्टरता और अन्याय को लेकर तिखा प्रतिरोध किया। गूँज समाज में पिडीत लोगों की आवाज बनने का प्रयास करता है। राहत इंदौरी जी 'डंके की चोट' पर अपनी भावनाएँ और अपने विचारों को गती देते है। प्रस्तुत गजलों के माध्यम से गजलकार सामाजिक संघर्ष, न्याय और अधिकारों का चित्रण किरते है। जिसका उद्देश्य समाज में सुधार और बदलाव लाना, समाज को जागृत करना है।

मुख्य शब्द : गजल, गजलकार, प्रतिरोध, उर्दू, साम्प्रदायिकता, समाज, व्यवस्था, साहित्य, अन्याय, अत्याचार, राजनीति, भावनाएँ, न्याय, धर्मव्यवस्था, जाति, गरीबी, वर्गभेद

प्रस्तावना :

कहा जाता है कि साहित्य समाज का आईना होता है। परंतु आज यह संकल्पना बदल चुकी है। यह दर्पण रुपी साहित्य समाज को सिर्फ उसका चेहरा ही नहीं दिखाता बल्कि उसमें बदलाव लाने का प्रयास भी करता है। हम आज अनेक साहित्यिक विधओं का अध्ययन करते है। जैसे- उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक आदि के माध्यम से समाज में स्थित घटनाओं का काल्पनिक और यथार्थ हमारे सामने आता है। वैसे गजल यह भी एक ऐसा माध्यम है जिसका आधार लेकर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि का चित्रण स्पष्ट होता है। गजल को लेकर गोपालदास नीरज कहते है- "गजल न तो प्रकृति की कविता है, न अध्यात्म की। वह हमारे उसी जीवन की कविता है, जिसे हम सचमुच जिते है।...यदि शुद्ध हिंदी में गजल लिखनी है, तो हमें हिंदी का वह स्वरुप तैयार करना होगा जो दैनिक जिवन की भाषा और कविता की भाषा की दूरी मिटा सके।"[1] समाज में फैली अनिती और विडंबना का चित्रण राहत जी ने अपनी गजलों के माध्यम से किया है। अपनी गजलों में इन्होंने बोलचाल की उर्दू का उपयोग कर सीधे और प्रभावी शब्दों का प्रयोग किया है। देशभक्ति को व्यक्त करते समय सरल और सीधी भाषा का प्रयोग किया है। जिस कारण गजल को समझने के लिए साहित्यिक नजरिए की जरुरत नहीं होती। इन गजलों को भारतीय संगीत और इरानी संगीत इन दोनों के मिश्रित ढाँचे में डालकर गाने के लिए लयबद्ध एवं सुरबद्ध किया जाता है। राहत इंदौरी जी की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि वे गजलकार के साथ ही हिंदी फिल्मकार भी रहे है। हिंदी सिनेसृष्टि में उन्होंने अनेक फिल्मों को लेकर गाने लिखे है। और एक मार्मिक गजलकार सिनेमा के लिए गाने लिखता है तो जायज बात है सुननेवाला और गाने पर थिरकनेवला अपने आप मंत्रमुग्ध होता होगा।

राहत इंदौरी का गूँज यह गजल संग्रह हमारे सामने समाज का वास्तव दर्द और दुख लेकर आता है। आम आदमी के जिवन की पिडाओं का चित्रण बडे मार्मिक ढंग से किया है जो पाठक को प्रतिरोध की याद दिलाता है। प्रतिरोध का मतलब सिर्फ शारीरिक ताकद दिखाकर या किसी बात को लेकर आंदोलन छेडना यही नहीं बल्कि शब्दों के धारदार बाणों से भी समाज में घटित क्रुर घटनाओं में भी हम बदलाव ला सकते है। क्योंकी एक जगह ऐसी होती है जहाँ बातों से काम नहीं चलता परंतु कुछ जगह ऐसी होती है जहाँ शब्द भी घायल करते है। यही कारण है कि राहत इंदौरी ने अपनी गजलों में शब्द भेदी बाण से अनेक बातों का प्रतिरोध किया है। भ्रष्ट व्यवस्था, गंधी राजनीति, नैतिकता का अधपतन, भेदभाव आदि बातों का चित्रण किया है। जिसके प्रधान बिंदू निम्नलिखित है-

1. नेता के संदर्भ में प्रतिरोधी स्वर
2. व्यवस्था के संदर्भ में प्रतिरोधी स्वर
3. समाज के संदर्भ में प्रतिरोधी स्वर
4. राजनीति के संदर्भ में प्रतिरोधी स्वर
5. भ्रष्टाचार के संदर्भ में प्रतिरोधी स्वर

6. पाखंड क संदर्भ में प्रतिरोधी स्वर भेदभाव के संदर्भ में प्रतिरोधी स्वर

1. नेता के संदर्भ में प्रतिरोधी स्वर-

प्रस्तुत गजल संग्रह में गंधी राजनीति और भ्रष्ट नेताओं का चित्रण दिखाई देता है। इस राजनीति को लेकर डॉ. सुषमा चौगले का कहना है- "वस्तुतः राजनीति राज्यशासन व्यवस्था से जुडी अवधारणा है किंतु समाज के नैतिक पतन, भ्रष्ट व्यवस्था और स्वार्थी सोच ने इसे विकृति प्रदान कर 'छल-प्रपंच' और स्वार्थ सिद्धि का स्वरूप प्रदान कर दिया है। यह भ्रष्ट राजनीति का स्वरूप हमारे समाज से लेकर शिक्षा व्यवस्था, फैशन की दुनिया, संस्कृति की अपने अनुकूल व्याख्या, मीडिया, धर्म से लेकर रोजमर्रा की जिंदगी तक फैल गई है।"[2] यहाँ स्पष्ट होता है कि नेता अपनी मर्जी के अनुसार सत्ता का उपयोग कर हर एक क्षेत्र पर अपनी ही सत्ता चाहते है। सत्ता के कारण जनता के प्रति प्रेम जताने वाले ढोंगी नेताओं यही यथार्थ रुप राहत इंदौरी के गूँज इस गजल संग्रह में स्पष्ट होता है। नागार्जुन ने जैसे इंदिरा गांधी, पंडित नेहरु की राजनीति को लेकर करारा प्रहार किया था ठिक वैसे ही राहत इंदौरी जी ने भी अपने गजलों के माध्यम से सत्ता के नाम पर लोगों के साथ भुलभुलैया खेलने वालों की नीति पर करारा प्रहार किया है। प्रस्तुत गजलों के माध्यम से कवि खुद जनता की आवाज एवं जनता का प्रतिनिधि बने है। लोगों की आवाज बनकर नेताओं पर करारा प्रहार करते हुए राहत इंदौरी लिखते है-

"कह दो इस अह्द के बुजुर्गों से
जिंदगी की दुआ न दी जाए"[3]

यहाँ स्पष्ट होता है कि गजलकार ने बडे-बडे व्यक्ति एवं नेताओं पर अपने तेज शब्दों से प्रहार करणे का काम किया है। यह उंचे व्यक्तिमत्त्व के लोग आम लोगों को हमेशा निचा दिखाने का, पिछे खिंचने का काम करते है तो ऐसी अंधकारमय और निराशा से भरी जिंदगी का क्या फायदा। जहाँ इंसान अपनी मर्जी से ना जी सके जो समाज को सिर्फ अंधकार के झुल्हे में झुलाते है ऐसे नेताओं को लेकर इंदौरी जी लिखते है-

"मंजरनामा वही पुराना है लेकिन
नाटक का उन्वान बदलने वाला है"[4]

यहाँ स्पष्ट होता है कि आजकल समाज में भ्रष्टाचारी, गरीबी, बेकारी की हालात वही है परंतु दिखावा किया जाता है की अब परस्थिति बदल चुकी है। आजकल हम देख रहे है रातोरात सत्ता बदलती है, नेता बदलते है परंतु लोकतंत्र की हो रही विडंबना को कोई रोक नहीं सकता, उसमें बदलाव ला नहीं सकता।

2. व्यवस्था के संदर्भ में प्रतिरोधी स्वर-

राहत इंदौरी अपनी गजलों के माध्यम से समाज और संस्कृति का दर्शन तो कराते ही है साथ में राजनीतिक पक्ष, प्रशासकीय व्यवस्था और जनता के भावनात्मक पक्ष का भी चित्रण किया है। भारतीय व्यवस्था लोगों का दमन कैसे करती है, मीडिया इन बातों का फायदा कैसे उठाती है इन बातों का चित्रण किया है। आजकल समाज में साम्प्रदायिक असंतोष बढ रहा है, राजनीतिक भ्रष्ट नीति का चित्रण अधिक मात्रा में दिखाई दे रही है, समाज में गरीबी, जाति और वर्गभेद को लेकर असमानता बढ रही है। जिसका प्रतिरोध हमें राहत इंदौरी की गजलों में दिखाई दे रहा है। गजलकार कहते है-

"ये भूल मत कि अभी सर पे आसमान भी है
किसी के सर का दुपट्टा उतारने वाले"[5]

यहाँ स्पष्ट होता है कि व्यवस्था अपने बल पर सामान्य जनता की अस्मिता, उनके अधिकारों को छिनती है। आम जनता सुख-शांति से जीने नहीं देती। परंतु गजलकार इस व्यवस्था को चेतावनी देते है, वे कहते आपकी इस व्यवस्था के ऊपर संविधान है जो आम आदमी को अधिकार देता है। एक इतिहास है जो आम आदमी के कार्य को जिवित रखता है। एक नैतिकता है जो तुम्हें नीति के पाठ सिखती है। और इन सब बातों की आवाज तुम्हारी सत्ता से बडी है। भ्रष्टाचार से भरी इस व्यवस्था को लेकर डॉ. सरदार मुजावर लिखते है कि- "हिंदी गजल का जन्म ही समाज में फैली विसंगतियों के कारण हुआ है। समाज में व्याप्त भ्रष्ट व्यवस्था जो उस आम आदमी के परिश्रम का शोषण कर रही है। वह मजदूर, किसान शिक्षक, बाबू मध्यम वर्ग व व्यापारी समाज का कोई भी हिस्सा अपने श्रम, अपने पसीने से अपने कार्य के द्वारा इस समाज को इस देश को उन्नत बना रहे हैं।.....ये तमाम वर्ग जो आपस में जुडकर देश की समृद्धि और विकास में अपने पसीने से रंग भर रहे है। यह भ्रष्ट व्यवस्था उसके सारे परिश्रम का उपयोग अपने हित में कर रही है।"[6] यहाँ स्पष्ट होता है कि समाज में जो समाज का प्रतिनिधित्व करनेवाली व्यवस्था है वही व्यवस्था श्रमिक व्यवस्था का

शोषण कर रही है। खुन-पसिना एक कर साधारण जनता देश की उन्नति को लेकर विचार करती है, परंतु हमारे व्यवस्था को सिर्फ मलाई से मतलब है। इसलिए यहाँ राहत इंदौरी लिखते है-

"फूल जैसे मखमाली तलवों में छाले कर दिए
गोरे सूरज ने हजारों जिस्म काले कर दिए"[7]

यहाँ गजलकार स्पष्ट करना चाहते है कि हमारा फूलों से भरा जीवन आज पीडा और दर्द का शिकार बना है जिसका कारण हमारी व्यवस्था और व्यवस्था द्वारा लोगों पर होनेवाला अन्याय और अत्याचार है।

3. समाज के संदर्भ में प्रतिरोधी स्वर-

प्रस्तुत गजल में गजलकार ने सिर्फ व्यक्तिगत ही नहीं बल्कि राजकीय, आर्थिक, सामाजिक, मानसिक आदि अनेक आयामों का चित्रण किया है। समाज में स्थित भय, पाखंड का सख्त विरोध किया है। समाज में बढती विषमता, गरीबों के शोषण पर करारा प्रहार किया है। गजलकार कहते है-

"करोडों साल की उम्रें हैं चाँद-तारों की
नजर ही बुझ गई मंजर नया बनाने में"[8]

यहाँ स्पष्ट होता है समाज दूर-दूर की सोचने के बजाय एक क्षणिक सुख का अनुभव पाने के पिछे भागते है। यहाँ गजलकार उपभोक्तावादी समाज का प्रतिरोध किया है। समाज की खोखली मानसिकता पर आवाज उठाई है।

"मिरी निगाह में वो शख्स आदमी भी नहीं
जिसे लगा है जमाना खुदा बनाने में"[9]

यहाँ स्पष्ट होता है कि समाज में अनेक लोग ऐसे होते है जो लोगों को ठगने का काम करता है उसे ही ईश्वर बनाकर पुजते है। आँखे होने के बावजूद भी अंधे बनते है। गजलकार ने यहाँ सामाजिक सत्ता के प्रति विद्रोह किया है।

4. राजनीति के संदर्भ में प्रतिरोधी स्वर-

राहत इंदौरी जी ने अपनी गजलों के माध्यम से जनता का संघर्ष और राजनीति का सशक्त चित्रण किया है। लेकिन इनकी गजलों में हमें राजनीति एवं नेताओं का स्पष्ट उल्लेख कहीं भी दिखाई नहीं देता। गजलकार यहाँ व्यंग्य और अनेक विविध प्रतिकात्मक रुपों के माध्यम से राजनीति पर करारा प्रहार करते है।

"जो पत्थरों से बुतों को तराशता था कभी
उस आदमी का सुकूँ अब बुतों ही जैसा है"[10]

यहाँ स्पष्ट होता है कि सत्ता मनुष्य की मनुष्यता को नष्ट करती है। जो मनुष्य कभी मानव धर्म को ही ईश्वर मानता था वह आज सत्ता को ही अपना सबकुछ मानता है। राजनीति अपनी सत्ता के बल पर आम जनता को अपने इशारों नचाती है। इसी खोखली राजनीति का गजलकार ने करारा प्रतिरोध किया है।

5. भ्रष्टाचार के संदर्भ में प्रतिरोधी स्वर-

आजकल सभी क्षेत्रों की नींव भ्रष्टाचार पर ही खडी दिखाई देती है। हम जहाँ भी जाते है हर जगह भ्रष्टाचार ही भ्रष्टाचार ही है। समाज की यही दशा देखकर गजलकार ने भी अपनी गजलों का आधार लेकर इस भ्रष्टाचार और भ्रष्टाचारियों की नीति को दुनिया के सामने लाने का काम किया है। यह नेतागण जो भी व्यक्ति इमानदारी के राह पर आगे बढने की कोशिश करता है उसकी राह में हमेशा काटे बिछाने का काम करते है। यहाँ राहत इंदौरी लिखते है-

"ये आज राह में पत्थर का ढेर कैसा है
जरूर कोई पयम्बर इधर से गुजरा है"[11]

समाज में आज अनेक लोग ऐसे है जो सच्चाई की राह पर चलते है, भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठाते है परंतु ऐसे ईमानदार लोगों के साथ चलनेवाले या उनका साथ देनेवाले इस दुनिया में बहुत कम मिलते है, परंतु उनकी हर मंजिल में रुकावट निर्माण करनेवाले कदम-कदम पर मिलते है। यह समाज ईमानदारों का नहीं बल्कि भ्रष्टाचार करनेवालों की ही जयजयकार करनेवालों का है। यहाँ गजलकार ने सत्ताधारी पक्ष, प्रशासकीय वर्ग और संवेदनाहीन समाज का प्रतिरोध किया है।

6. धर्म के संदर्भ में प्रतिरोधी स्वर-

समाज में धार्मिक पाधंड बडी मात्रा में फैला दिखाई दे रहा है। धर्म का नाम आगे कर लोगों को ठगने का, समाज में गलत बाते फैलाने का, लोगों के मन में डर पैदा करने का काम करते है। जिसका प्रमुख कारण है समाज पढ-लिखकर भी अनपढ बनता है,

समज कर भी अनजान बनता है, दिखकर भी अंधा बनता है। जिसके कारण इन पाखंडियों का रास्ता साफ हो जाता है। धर्म के नाम पर बुरे कर्म किये जाते है, जिन कृत्यों से पाखंडियों को लाभ होता है। परंतु उन्हें समाज के लाभ से कोई लेना-देना नहीं है।

"देवताओं और खुदाओं की लगाई आग ने
देखते ही देखते बस्ती को जंगल कर दिया"[12]

गजलकार यहाँ भगवान और खुदा के नाम पर लोगों के बिच सांप्रदायिक दरार खडी करने वालों का प्रतिरोध करते है। यह धार्मिक शांतता कैसी बनी रहेगी, लोगों के मन में सांप्रदायिक दंगे, हिंसा को छोड एकदूसरे के प्रति प्रेम भाव कैसे बडेगा इस बारे में बिलकुल भी विचार नहीं किया जाता। बल्कि लगी हुई आग को हवा देने का काम किया जाता है। इसी वृत्ति का प्रतिरोध राहत इंदौरी जी ने अपनी गजलों में किया है।

7. भेदभाव प्रवृत्ति का प्रतिरोध-

समाज में प्राचिन काल से धर्म, जाति, गरीबी, अमीरी यहाँ तक की वर्ण को लेकर भी भेदभाव किये जाते है। यह भेद समाज में तो दिखाई देता ही है साथ ही सामाजिक और राजकीय पक्ष भी इस बात का फायदा उठाते है। इसी भेदभाव का चित्रण राहत इंदौरी ने अपनी गजलों के माध्यम से किया है। वे अपनी गजल के माध्यम से कहते है-

"मुझको बैसाखियाँ काँधे पे लिए फिरती हैं
इस सवारी से तो अच्छा है मैं पैदल हो जाऊँ"[13]

प्रस्तुत गजल के शेर के माध्यम से गजलकार समाज में सिफारिश के तौर पर बढने वाले भेदभाव का चित्रण किया है।

"शहर की हद ही नहीं आती है
काटते रहते हैं जंगल हम तुम"[14]

गजलकार सभ्य और असभ्य समाज में छिपा भेद खोलने का काम करते है। सभ्य समाज हमेशा संघर्ष करता हुआ आगे बढने की कोशिश में लगा रहता है परंतु असभ्य समाज हमेशा ही उन्हें निचा दिखाने का काम करते है। गरीब, श्रमिक, आम आदमी, कमजोर व्यक्तिमत्त्व वाला व्यक्ति आदि सभी को हमेशा से नीचा दिखाने का काम करता है। लेकिन राहत इंदौरी अपनी गजलों के माध्यम से यही स्पष्ट करना चाहते है कि जिनके सर पर सत्ता का हाथ होता है वही जीवन में आगे बढता है और जीसको आगे बढने के लिए किसी का हाथ नहीं मिलता वह कभी आगे नहीं बढ सकता, यही गजलकार यहाँ सूचित करना चाहते है। जिससे स्पष्ट होता है की संवेदनशीलता एवं स्वाभिमान से ज्यादा यहाँ घूसखोरी को ज्यादा महत्त्व दिया जाता है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध-पत्र के अध्ययन के पश्चात निष्कर्ष के रुप में स्पष्ट होता है कि गूँज गजलसंग्रह में गजलकार ने सामाजिक, राजनीतिक, सामाजिक भेद, व्यवस्था की गंधी नीति आदि अनेक बातों प्रतिरोध किया है। राहत इंदौरी जी ने अपनी गजलों में सिर्फ वैयक्तिक ही नही बल्कि सामाजिक संवेदनाओं का भी चित्रण किया है। नेताओं की पाखंडी वृत्ति, सामाज की गंधी मानसिकता, प्रशासकीय धोकेबाजी आदि बातों को लेकर करारा प्रहार किया है। जिससे गजलकार के मन में समाज को लेकर संवेदनशीलता स्पष्ट होती है। समाज में बदलाव लाने की गजलकार की जीद यहाँ स्पष्ट होती है।

संदर्भ:

1. अनुप वशिष्ठ प्रो.डॉ, हिंदी गजल का स्वरुप और महत्त्वपुर्ण हस्ताक्षर, पृष्ट- 17, विश्वविद्यलय प्रकाशन, वाराणसी, सं 2006
2. डॉ. सुषमा चौगले, राजनीति, पृष्ट- 13, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्रथम सं 2023 .
3. राहत इंदौरी, गूंज, पृष्ट- 35, रेख्ता पब्लिकेशंस, उत्तर प्रदेश, प्रथम सं 2024
4 . वही, पृष्ट- 97
5 . वही, पृष्ट- 113
6 सरदार मुजावर, हिंदी गजल गजलकारों की नजर में, पृष्ट- 99, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम सं 2001
7 . राहत इंदौरी, गूंज, पृष्ट- 39, रेख्ता पब्लिकेशंस, उत्तर प्रदेश, प्रथम सं 2024
8 . वहीं, पृष्ट- 23
9 वहीं, पृष्ट- 23
10 . वहीं, पृष्ट- 28
11 . वहीं, पृष्ट- 28
12. वहीं, पृष्ट- 42
13 . वहीं, पृष्ट- 61
14 . वहीं, पृष्ट- 106

हिंदी फ़िल्मों में गीत और ग़ज़ल का महत्व

समद हबीब जमादार
शोधछात्र Mob- 9881612937
samadjamadar455@gmail.com

सारांश (Abstract)

हिंदी सिनेमा भारतीय समाज और संस्कृति का एक सशक्त तथा प्रभावशाली प्रतिनिधि माध्यम रहा है, जिसमें गीत और ग़ज़ल की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। हिंदी फ़िल्मों में गीत और ग़ज़ल केवल मनोरंजन का साधन नहीं हैं, बल्कि वे कथानक के विकास, पात्रों की मानसिक स्थिति की अभिव्यक्ति तथा भावनात्मक संप्रेषण के प्रभावी माध्यम के रूप में कार्य करते हैं। फ़िल्मी गीतों का संबंध भारतीय साहित्यिक परंपरा, लोकसंस्कृति और शास्त्रीय संगीत से गहराई से जुड़ा हुआ है, जबकि ग़ज़लें उर्दू काव्य परंपरा की सूक्ष्म भावनाओं और दार्शनिक दृष्टि को सिनेमा के माध्यम से जनसामान्य तक पहुँचाती हैं।

प्रस्तुत शोधालेख में हिंदी फ़िल्मों में गीत और ग़ज़ल के ऐतिहासिक विकास, उनके साहित्यिक स्वरूप, कथात्मक भूमिका तथा सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि गीत और ग़ज़ल हिंदी सिनेमा की आत्मा हैं, जिन्होंने प्रेम, विरह, सामाजिक यथार्थ, मानवीय संवेदनाओं और सांस्कृतिक मूल्यों को प्रभावी रूप में प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त, नई शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) के बहुविषयक दृष्टिकोण के अंतर्गत गीत और ग़ज़लों का अध्ययन साहित्य, संगीत, समाजशास्त्र और मीडिया अध्ययन के समन्वय का महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द (Keywords): हिंदी सिनेमा, फ़िल्मी गीत, ग़ज़ल, साहित्य, संस्कृति, सौंदर्यशास्त्र, NEP 2020

1. भूमिका (Introduction)

भारतीय सिनेमा, विशेषतः हिंदी सिनेमा, विश्व सिनेमा में अपनी विशिष्ट पहचान और लोकप्रियता के लिए जाना जाता है। इसकी सबसे प्रमुख विशेषता गीत-संगीत की केंद्रीय भूमिका है, जो इसे अन्य देशों के सिनेमा से अलग बनाती है। हिंदी फ़िल्मों में गीत और ग़ज़ल केवल मनोरंजन का साधन नहीं हैं, बल्कि वे कथानक की संरचना, पात्रों के मानसिक और भावनात्मक पक्ष तथा सामाजिक संदर्भों को प्रभावी रूप में प्रस्तुत करने का माध्यम भी हैं। गीतों के माध्यम से पात्रों की आंतरिक अनुभूतियाँ, प्रेम, विरह, संघर्ष और आकांक्षाएँ दर्शकों तक सहज रूप में पहुँचती हैं।

जहाँ पश्चिमी सिनेमा में संगीत का प्रयोग प्रायः पृष्ठभूमि तक सीमित रहता है, वहीं हिंदी सिनेमा में गीत कथा को आगे बढ़ाने और संवाद का कार्य करने में सक्षम होते हैं। गीत दृश्य और शब्द के संयोजन से भावनात्मक गहराई उत्पन्न करते हैं, जिससे दर्शक कथानक से आत्मीय रूप से जुड़ जाता है। ग़ज़लें विशेष रूप से संवेदनशील भावनाओं, आत्मसंघर्ष और मानवीय पीड़ा को अभिव्यक्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस प्रकार गीत और ग़ज़ल हिंदी फ़िल्मों की आत्मा के रूप में स्थापित हुए हैं, जिन्होंने हिंदी सिनेमा को सांस्कृतिक, साहित्यिक और सौंदर्यात्मक पहचान प्रदान की है।

2. हिंदी सिनेमा में गीतों का ऐतिहासिक विकास

2.1 प्रारंभिक दौर (1931–1949)

हिंदी सिनेमा में गीतों की परंपरा का आरंभ भारत की पहली बोलती फ़िल्म *आलमआरा* (1931) से माना जाता है। इस फ़िल्म की सफलता ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय दर्शक संगीतप्रधान सिनेमा को सहज रूप से स्वीकार करते हैं। इस प्रारंभिक दौर में फ़िल्मी गीतों पर शास्त्रीय संगीत, भक्ति परंपरा, लोकधुनों और नाट्य-संगीत का गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। गीतों की संरचना सरल थी तथा उनमें धार्मिक, नैतिक और सामाजिक संदेशों की प्रधानता थी। उस समय गीत मनोरंजन के साथ-साथ समाज को नैतिक दिशा देने का माध्यम भी माने जाते थे।

2.2 स्वर्णिम युग (1950–1970)

1950 से 1970 का काल हिंदी फ़िल्म संगीत का स्वर्णिम युग कहलाता है। इस दौर में साहिर लुधियानवी, शैलेंद्र, मजरूह सुल्तानपुरी और कैफ़ी आज़मी जैसे संवेदनशील गीतकारों ने फ़िल्मी गीतों को साहित्यिक गरिमा प्रदान की। इनके गीतों में प्रेम, विरह, सामाजिक विषमता, मानवीय संघर्ष और दार्शनिक चिंतन की गहरी अभिव्यक्ति मिलती है। साथ ही नौशाद, एस.डी. बर्मन और शंकर-जयकिशन जैसे संगीतकारों ने शास्त्रीय और लोकसंगीत को लोकप्रिय फ़िल्मी धुनों में रूपांतरित किया। इस काल के गीत आज भी सांस्कृतिक धरोहर माने जाते हैं।

2.3 आधुनिक और उत्तर-आधुनिक काल

1980 के बाद हिंदी फ़िल्मी गीतों पर तकनीकी विकास, बाज़ारीकरण और वैश्वीकरण का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इलेक्ट्रॉनिक वाद्यों, नए संगीत प्रयोगों और सरल भाषा का प्रयोग बढ़ा। यद्यपि गीतों की शैली और विषयों में परिवर्तन आया, फिर भी फ़िल्मों की सफलता में गीतों की भूमिका आज भी निर्णायक बनी हुई है। यह दौर परंपरा और आधुनिकता के समन्वय का प्रतीक है।

3. हिंदी फ़िल्मों में ग़ज़ल की परंपरा

3.1 ग़ज़ल का साहित्यिक स्वरूप

ग़ज़ल उर्दू साहित्य की एक सशक्त और समृद्ध काव्य विधा है, जिसमें प्रेम, विरह, पीड़ा, दर्शन और जीवन की क्षणभंगुरता का सूक्ष्म एवं भावात्मक चित्रण किया जाता है। इसकी संरचना शेर, मतला, मक़्ता, क़ाफ़िया और रदीफ़ जैसे तत्वों पर आधारित होती है, जो इसे अन्य काव्य विधाओं से विशिष्ट बनाते हैं। ग़ज़ल की भाषा कोमल, प्रतीकात्मक और संवेदनशील होती है, जिसके माध्यम से कवि अपने अंतर्मन की अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है। हिंदी फ़िल्मों ने इस साहित्यिक विधा को दृश्य और संगीत के माध्यम से जनसाधारण तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। फ़िल्मी ग़ज़लों के माध्यम से उर्दू साहित्य की सूक्ष्म भावनाएँ व्यापक दर्शक वर्ग तक पहुँचीं, जिससे ग़ज़ल जनप्रिय काव्य रूप के रूप में स्थापित हुई।

3.2 फ़िल्मी ग़ज़लों का महत्व

हिंदी सिनेमा में फ़िल्मी ग़ज़लों का विशेष महत्व रहा है। *पाकीज़ा*, *उमराव जान*, *बाज़ार* और *अर्थ* जैसी फ़िल्मों में ग़ज़लों ने केवल संगीतात्मक सौंदर्य ही नहीं बढ़ाया, बल्कि कथानक को गहराई, गंभीरता और भावनात्मक प्रभाव भी प्रदान किया। इन फ़िल्मों की ग़ज़लें विशेष रूप से स्त्री-वेदना, सामाजिक बंधनों, प्रेम में असफलता और आत्मसंघर्ष को प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करती हैं। ग़ज़लें पात्रों के अंतर्द्वंद्व और मानसिक पीड़ा को दर्शाने का सशक्त माध्यम बनती हैं।

फ़िल्मी ग़ज़लों ने शास्त्रीय और उपशास्त्रीय संगीत पर आधारित रचनाओं को लोकप्रिय बनाया तथा बेगम अख्तर, तलत महमूद, जगजीत सिंह और ग़ुलाम अली जैसे गायकों के माध्यम से ग़ज़ल गायकी को नई पहचान मिली। इस प्रकार ग़ज़ल हिंदी फ़िल्मों में साहित्यिक गंभीरता और सांस्कृतिक संवेदनशीलता का प्रतीक बनकर उभरी है।

4. गीत और ग़ज़ल: कथानक के संवाहक

हिंदी फ़िल्मों में गीत और ग़ज़ल कथानक को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे केवल मनोरंजन का साधन न होकर कथा-विकास का सशक्त माध्यम होते हैं। प्रेम गीत पात्रों के बीच भावनात्मक संबंध, आत्मीयता और आकर्षण को स्थापित करते हैं, जिससे दर्शक कथा से जुड़ जाता है। विरह गीत पात्रों के संघर्ष, पीड़ा और अंतर्द्वंद्व को स्वर प्रदान करते हैं, जिससे कथा में संवेदनात्मक गहराई आती है। वहीं सामाजिक विषयों पर आधारित गीत समाज में व्याप्त असमानता, शोषण और विद्रोह की भावना को अभिव्यक्त करते हैं। इस प्रकार गीत और ग़ज़ल संवाद की भाँति कार्य करते हुए दृश्य माध्यम को भावात्मक और वैचारिक गहराई प्रदान करते हैं।

5. सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव

हिंदी फ़िल्मों के गीत और ग़ज़ल ने भारतीय समाज की भाषा, सोच और जीवन-शैली को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। अनेक फ़िल्मी गीत समय के साथ लोकजीवन का अभिन्न हिस्सा बन गए हैं और जनसामान्य की अभिव्यक्ति का माध्यम बने हैं। देशभक्ति गीतों ने राष्ट्रीय चेतना को सशक्त किया तथा समाज में एकता और देशप्रेम की भावना को प्रोत्साहित किया। सामाजिक विषयों पर आधारित गीतों ने सामाजिक कुरीतियों और समस्याओं के प्रति जनमानस को जागरूक किया। वहीं फ़िल्मी ग़ज़लों ने संवेदनशीलता, करुणा और आत्मचिंतन को बढ़ावा देकर समाज में भावनात्मक परिपक्वता विकसित की है।

6. सौंदर्यशास्त्र और काव्यात्मकता

फ़िल्मी गीतों में भारतीय काव्य परंपरा के रस सिद्धांत, अलंकार, बिंब और प्रतीकों का प्रभावी प्रयोग इन्हें साहित्यिक गरिमा प्रदान करता है। श्रृंगार, करुण, वीर और शांत रस की सशक्त अभिव्यक्ति फ़िल्मी गीतों को भावनात्मक रूप से समृद्ध बनाती है। ग़ज़लों की शायरी ने हिंदी सिनेमा को विशेष काव्यात्मक ऊँचाई और सौंदर्यात्मक पहचान प्रदान की है।

7. NEP 2020 के संदर्भ में गीत और ग़ज़लों का अध्ययन

नई शिक्षा नीति 2020 बहुविषयक अध्ययन और भारतीय ज्ञान परंपरा पर बल देती है। इस संदर्भ में हिंदी फ़िल्मों के गीत और ग़ज़ल साहित्य, संगीत, समाजशास्त्र और मीडिया अध्ययन के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इनके अध्ययन से छात्रों में सांस्कृतिक चेतना, भाषाई संवेदनशीलता और आलोचनात्मक दृष्टि का विकास होता है।

8. निष्कर्ष (Conclusion)

हिंदी फ़िल्मों में गीत और ग़ज़ल न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि वे कथानक, पात्रों की भावनाओं और सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों के प्रभावी वाहक हैं। प्रारंभिक दौर से लेकर आधुनिक युग तक, फ़िल्मी गीतों ने भारतीय संगीत, साहित्य और लोकपरंपरा को एकीकृत करते हुए सिनेमा को सांस्कृतिक पहचान प्रदान की है। ग़ज़लें अपनी सूक्ष्मता, प्रतीकात्मकता और दार्शनिकता के माध्यम से हिंदी सिनेमा को भावनात्मक और साहित्यिक गहराई देती हैं।

गीत और ग़ज़ल केवल व्यक्तिगत भावनाओं को व्यक्त करने तक सीमित नहीं हैं; उन्होंने सामाजिक जागरूकता, देशभक्ति और सांस्कृतिक मूल्यों के संवर्धन में भी योगदान दिया है। शास्त्रीय संगीत, रस सिद्धांत, अलंकार और प्रतीकात्मक भाषा के प्रयोग ने फ़िल्मी गीतों और ग़ज़लों को साहित्यिक तथा सौंदर्यात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण बनाया है। इसके साथ ही, फ़िल्मी गीत और ग़ज़ल समाज में संवेदनशीलता, करुणा और आत्मचिंतन को भी विकसित करते हैं।

नई शिक्षा नीति 2020 के बहुविषयक दृष्टिकोण के संदर्भ में गीत और ग़ज़लों का अध्ययन साहित्य, संगीत, समाजशास्त्र और मीडिया अध्ययन को जोड़ने का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह विद्यार्थियों में सांस्कृतिक चेतना, भाषाई संवेदनशीलता और आलोचनात्मक दृष्टि विकसित करने में सहायक है।

अंततः यह स्पष्ट है कि हिंदी फ़िल्मों में गीत और ग़ज़ल सिनेमा की आत्मा हैं। उन्होंने कथानक, पात्र और दर्शक को एक सशक्त भावनात्मक एवं सांस्कृतिक अनुभव प्रदान किया है। इनकी भूमिका केवल फ़िल्मी मनोरंजन तक सीमित नहीं है, बल्कि वे साहित्यिक, सामाजिक और सौंदर्यात्मक दृष्टि से भारतीय सिनेमा के अभिन्न अंग बन चुके हैं। इस प्रकार हिंदी फ़िल्मों में गीत और ग़ज़ल का अध्ययन शैक्षणिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत मूल्यवान है।

संदर्भ-सूची (References / Citations)

1. दत्त, सत्यजीत – *भारतीय सिनेमा का इतिहास*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, *2013*
2. भारद्वाज, मधुकर – *फ़िल्मी गीतों का समाजशास्त्र*, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, *2005*
3. लुधियानवी, साहिर – *साहिर की शायरी*, ओरिएंट लॉन्गमैन, मुंबई, *1996*
4. नामवर सिंह – *साहित्य और सिनेमा*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, *2002*
5. भारत सरकार – *National Education Policy 2020*, शिक्षा मंत्रालय, *2020*

*****

हिंदी फिल्मों में गीत और गजल का महत्व

प्रा.अपर्णा संभाजी कांबळे
दत्ताजीराव कदम आर्ट्स, सायन्स अँड कॉमर्स कॉलेज, इचलकरंजी।
मो.नं 7709683122
aparnakamble282@gmail.com

शोध सार;

हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि कथानक, भावना और विचारधारा के संवाहक हैं। गीत और ग़ज़ल ने हिंदी सिनेमा को जनमानस से जोड़ा और उसे सांस्कृतिक पहचान प्रदान की। इनके बिना हिंदी फिल्में अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं कर सकतीं। अतः यह कहना उचित होगा कि गीत और ग़ज़ल हिंदी सिनेमा की आत्मा हैं।

बीज शब्द : हिंदी सिनेमा, फिल्मी गीत, ग़ज़ल, साहित्य और सिनेमा, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति, भावात्मक संप्रेषण, काव्यात्मकता.

प्रस्तावना :

हिंदी सिनेमा भारतीय जनजीवन और संस्कृति का सशक्त माध्यम रहा है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता इसका गीत-संगीत पक्ष है, जिसने इसे विश्व सिनेमा में विशिष्ट पहचान दिलाई। भारतीय साहित्यिक परंपरा में काव्य, गीत और ग़ज़ल का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। हिंदी फिल्मों ने इसी परंपरा को अपनाकर गीतों और ग़ज़लों के माध्यम से कथा-वस्तु, भावनाओं और सामाजिक यथार्थ को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

शोध आलेख का विश्लेषण :

फिल्मी गीत और ग़ज़ल केवल मनोरंजन का साधन नहीं हैं, बल्कि वे दर्शकों की संवेदनाओं से सीधा संवाद स्थापित करते हैं। इस शोध पत्र में हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल के महत्व का साहित्यिक, सांस्कृतिक और भावनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया गया है।

हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल का बहुत गहरा और महत्वपूर्ण स्थान है। ये दोनों ही कला रूप फिल्म की भावनाओं, कथानक और पात्रों को व्यक्त करने के महत्वपूर्ण माध्यम होते हैं। इन दोनों के महत्व को विस्तार से समझते हैं

हिंदी सिनेमा केवल दृश्य माध्यम नहीं है, बल्कि यह संगीत, कविता और भावनाओं का समन्वित रूप है। गीत और ग़ज़ल हिंदी फिल्मों की आत्मा रहे हैं। इन्होंने न केवल कथानक को आगे बढ़ाया है, बल्कि पात्रों की भावनाओं, सामाजिक परिवेश और सांस्कृतिक मूल्यों को भी प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त किया है। फिल्मी गीत कथा को सरल, रोचक और प्रभावशाली बनाते हैं। प्रेम, विरह, उल्लास, पीड़ा, देशभक्ति जैसे भाव गीतों के माध्यम से सहज रूप में व्यक्त होते हैं। कई बार गीत संवादों से अधिक गहराई से पात्रों की मनःस्थिति को उजागर करते हैं।उदाहरणतः प्रेम प्रसंगों में मधुर गीत, संघर्ष के क्षणों में प्रेरक गीत और सामाजिक संदेश देने वाले गीत दर्शकों से सीधा भावनात्मक जुड़ाव स्थापित करते हैं। इसके अतिरिक्त, गीत फिल्मों की लोकप्रियता और व्यावसायिक सफलता में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

हिंदी फिल्म में ग़ज़ल का महत्व :

ग़ज़ल हिंदी फिल्मों में साहित्यिक गरिमा और संवेदनशीलता जोड़ती है। इसकी भाषा कोमल, भावपूर्ण और काव्यात्मक होती है। ग़ज़लें प्रेम, तन्हाई, विरह और जीवन-दर्शन को गहराई से प्रस्तुत करती हैं।फिल्मों में प्रयुक्त ग़ज़लें दर्शकों को सोचने और महसूस करने का अवसर देती हैं। ये शास्त्रीयता और आधुनिकता के बीच सेतु का कार्य करती हैं तथा उर्दू-हिंदी साहित्यिक परंपरा को सिनेमा के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाती हैं।

सांस्कृतिक और सामाजिक प्रभाव :

गीत और ग़ज़ल ने भारतीय संस्कृति, भाषा और परंपराओं को जीवित रखने में योगदान दिया है। इन्होंने सामाजिक मुद्दों पर जागरूकता बढ़ाई और विभिन्न वर्गों के बीच सांस्कृतिक एकता स्थापित की।

संक्षेप में, हिंदी फिल्म में गीत और ग़ज़ल का महत्व अत्यंत व्यापक है। ये केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि भावनात्मक अभिव्यक्ति, सांस्कृतिक संरक्षण और कथानक की सशक्त प्रस्तुति के प्रभावी माध्यम हैं। इनके बिना हिंदी सिनेमा की कल्पना अधूरी प्रतीत होती है।

इस शोध अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है-

- हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल की भूमिका का विश्लेषण करना।
- फिल्मी गीतों के माध्यम से व्यक्त भावनात्मक और सामाजिक संदेशों का अध्ययन करना।
- हिंदी सिनेमा में ग़ज़ल की साहित्यिक महत्ता को स्पष्ट करना।
- गीत और ग़ज़ल के माध्यम से सिनेमा और साहित्य के पारस्परिक संबंध को समझना।
- हिंदी फिल्मों में गीत-संगीत के सांस्कृतिक प्रभाव को रेखांकित करना।

हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल केवल सहायक तत्व नहीं हैं, बल्कि वे फिल्म की आत्मा के रूप में कार्य करते हैं। इनके बिना हिंदी सिनेमा की कथात्मक, भावनात्मक और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति अधूरी रह जाती है।
यह भी माना गया है कि गीत और ग़ज़ल ने हिंदी सिनेमा को लोकप्रिय बनाने में निर्णायक भूमिका निभाई है।

हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल का महत्व

हिंदी फिल्मों में गीत कथा को आगे बढ़ाने, पात्रों की मानसिक स्थिति व्यक्त करने तथा दर्शकों से भावनात्मक जुड़ाव स्थापित करने में सहायक होते हैं। प्रेम, विरह, सामाजिक विषमता, दर्शन और राष्ट्रप्रेम जैसे विषय गीतों के माध्यम से प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किए गए हैं।
ग़ज़लें विशेष रूप से संवेदनशील, गंभीर और आत्मविश्लेषणात्मक क्षणों में प्रयुक्त होकर फिल्म को साहित्यिक गरिमा प्रदान करती हैं। साहिर लुधियानवी, मजरूह सुल्तानपुरी, शकील बदायूंनी और गुलज़ार जैसे रचनाकारों ने फिल्मी गीतों और ग़ज़लों को उच्च साहित्यिक स्तर प्रदान किया।

1. गीत (Songs) :

1.1) भावनाओं की अभिव्यक्ति :

गीत हिंदी फिल्मों में मुख्यतः पात्रों की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए होते हैं। चाहे वह प्रेम, दुःख, खुशी, या किसी विशेष स्थिति का उत्सव हो, गीत इन भावनाओं को शब्दों और संगीत के माध्यम से गहरे रूप में व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए, "तुम ही हो" (आशिकी 2) या "तुम से ही" (जब वी मेट) जैसे गीत प्रेम और रोमांस को व्यक्त करते हैं।

1.2) कहानी को आगे बढ़ाना :

कभी-कभी गीत केवल भावनाओं का ही नहीं, बल्कि फिल्म के कथानक को भी आगे बढ़ाते हैं। जैसे "मेरा जूता है जापानी" (श्री 420) या "दिल है कि मानता नहीं" (दिल है कि मानता नहीं), ये गीत दर्शकों को फिल्म की कहानी में एक नया मोड़ देने में मदद करते हैं।

1.3) सांस्कृतिक और सामाजिक प्रभाव :

हिंदी फिल्म गीत समाज की सोच और संस्कृति का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें कई बार समाजिक संदेश होते हैं, जैसे "आज़ादी की राह में" (लाहौर) या "वो सुबह कभी तो आएगी" (कभी कभी) जैसे गीत देशभक्ति और संघर्ष को दर्शाते हैं।

1.4) संगीत और नृत्य:

हिंदी फिल्म गीतों का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि वे नृत्य और संगीत के साथ जुड़े होते हैं। नृत्य और गीत एक दूसरे के पूरक होते हैं, जो दर्शकों को एक समग्र अनुभव प्रदान करते हैं।

2. ग़ज़ल (Ghazals)

2.1) गहरी भावनाओं और सूफी दर्शन की अभिव्यक्ति:

ग़ज़ल एक विशेष प्रकार की कविता है, जो आमतौर पर प्रेम, विरह, और सूफी दर्शन से संबंधित होती है। ग़ज़ल में गहरे और जटिल विचार होते हैं, जो व्यक्ति की आत्मा को छूते हैं। फिल्मों में ग़ज़ल अक्सर उन दृश्यों को और गहरे बना देती हैं जो प्यार, अकेलापन, और दुःख को व्यक्त करते हैं। जैसे "चुपके चुपके रात दिन" (रबीआ) या "हमें तुमसे प्यार कितना" (तुम्हारी यादें) जैसी ग़ज़लें।

2.2) अर्थपूर्ण और भावनात्मक शब्दों का प्रयोग: ग़ज़ल में शब्दों का चयन बहुत सावधानी से किया जाता है, और यह शब्दों के माधुर्य और भावनाओं को प्रभावशाली तरीके से व्यक्त करता है। ग़ज़ल के बोल बहुत गहरे और एक शेर के माध्यम से पूरी गहरी भावना व्यक्त कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, "रात भर जो साथ बिताया" (तुमसा नहीं देखा) में ग़ज़ल का खास प्रभाव होता है।

2.3) दर्शन और संवेदनाओं का मिलाजुला:

ग़ज़ल केवल प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं होती, बल्कि इसमें जीवन के और गहरे पहलुओं पर भी चर्चा होती है, जैसे कि विरह, तन्हाई, और आत्मा की यात्रा। यही कारण है कि ग़ज़लें हिंदी फिल्मों में एक खास संदर्भ में इस्तेमाल होती हैं, जैसे "दिल ढूंढ़ता है" (मंज़िल) या "तुम आ गए हो" (अमर अकबर एंथनी)।

संक्षेप में, हिंदी फिल्म गीत और ग़ज़ल दोनों ही फिल्म की कास्ट और कहानी को गहरे और जीवंत तरीके से दर्शकों तक पहुंचाते हैं।

गीत जहां फिल्म की गति और भावनाओं को व्यक्त करते हैं, वहीं ग़ज़ल एक और गहरे, सूक्ष्म और व्यक्तिगत अनुभव को व्यक्त करती है। दोनों मिलकर फिल्म के मनोरंजन और भावनात्मक प्रभाव को अद्वितीय बना देते हैं।

हिन्दी कविता में अब तक अनेक आन्दोलन और वाद आये और चले गये। नयी कविता, अकविता, अगीत, विचार कविता आदि। गीतात्मक काव्य में आज नवगीत के अतिरिक्त केवल गजल ही एक विशिष्ट प्रभाव के साथ हिन्दी में प्रचलित है।गजल यह उर्दू-फारसी से आयातित विधा है। यह उर्दू ग़ज्जल के कथ्य और शिल्प से प्रभावित है। फिर भी उसका अपना अलग स्थान है और उर्दू ग़ज्जल की औपचारिकता की अपेक्षा अत्याधिक अनौपचारिक हो गई है।

गजल विधा के बारे में डॉ. सरदार मुजावर कहते हैं -

"दरअसल गजल काव्य की एक ऐसी विधा है जिसमें लताफत के साथ नफासत भी पायी जाती है। एक बहुत एक बहुत ही नाजुक काव्य विधा की हैसियत से हर कोई ग़ज़ल की ओर देखता है। यों तो गजल विधा अपने अनुभवों एवं जज्बातों को अभिव्यक्ति देने का एक बेहतरीन जरिया है। गजल एक ऐसी काव्य-विधा है जो कम से कम शब्दों में बहुत बड़ी बात कहने की अहमियत रखती है। बुनियादी तौर पर गजल विधा "गागर में सागर" भर देने का काम करती है। इसलिए तमाम शायरों ने इसे बड़े प्यार और आत्मीयता से अपनाया है। काव्य की विधाओं में गजल ही एकमात्र ऐसी विधा है जिसने पुराने दौर में अपना मकाम कायम किया था और आज भी अपने मक़ाम पर बरकरार रही है।"।

गजल शब्द के विभिन्न अर्थ :

"गजल का शाब्दिक अर्थ मुहब्बत के जज्बात व्यक्त करना है। अच्छी गजल वह है, जिसमें इश्को-मुहब्बत की बातें सच्चाई तथा असर के साथ जाहिर की जाती हैं। गजल को प्रभावात्मकता उसके भाव और भाव प्रदर्शन की शैली में है।"

"यह अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है स्त्री से बातें करना।"

"गजल के माने उस कराह से है जो गजाला तीर चुभने के बाद बेकसी के आलम में निकालता है।"

"डॉ. सरदार मुजावर- "गजल शब्द का अर्थ है औरत से बातचीत करना। औरत से बातचीत कई तरह की होती है। यह बातचीत इश्क मुहब्बत की हो सकती है या दिल की तड़पन की भी हो सकती है। इसलिए हम निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि औरत से गुफ्तगू करना ही "ग़जल" है। गजल का औरत और प्रेम से गहरा ताल्लुक रहा है। इश्क-मुहब्बत की बुनियाद पर ही गजल खड़ी हुई है।"

हिंदी फिल्मों में उर्दू ग़ज़लों की बढ़ती हुई लोकप्रियता :

ग़ज़ल उर्दू कविता का सर्वश्रेष्ठ अनूठा और सशक्त काव्य-रूप है। इसका जन्म फारसी भाषा में हुआ। फिर उर्दू वालों ने अपनाया और इसने हमारे देश में आकर अपने रचनात्मक स्वरूप के शिखर-बिन्दुओं को छुआ।"

गजल ने देश काल एवं मानवीय विचारधाराओं में आये परिवर्तन आत्मसात करते हुए अपनी विकास यात्रा जारी रखी है। मध्ययुग में मुसलमान शासकों के दरबार में ग़ज़ल नृत्यांगनाएँ प्रस्तुत करती थीं। उसी वक्त सूफियों की धार्मिक सभाओं में भी इश्क मजाजी से सराबोर गजलों ने धूम मचा दी थी।

गजलों ने थके-हारे मानव को मुस्कराने की प्रेरणा दी है। संगीत-सम्मेलनों, पत्र-पत्रिकाओं तथा रेडियो कार्यक्रमों में भी ग़जलों का बोलबाला है।

इस तरह उर्दू की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखते हुए हिन्दी पत्रिकाओं ने उर्दू गजलों को देवनागरी में प्रकाशित करना आरम्भ किया। हिन्दी कवियों ने और पाठकों ने भी इसमें रुचि लेना आरम्भ किया। सामान्य लोगों तक में लोकप्रिय होने से आज के हिन्दी कवियों ने इसे प्रयासपूर्वक अपनाया है।

सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि एक जमाना था, जब गजलें कोठों एवं राजा-महाराजाओं के दरबारों में ही गायी जाती थीं। पर आज ग़ज़लें दरबारों से निकलकर गली-नुक्कड़ तक पहुँच गयी हैं। आज तो फिल्मी, गैर-फिल्मी ग़ज़लों ने धूम मचा दी है।

हिन्दी में प्रयोगवादी कवियों ने उर्दू ग़ज़ल की लोकप्रियता से ग़ज़ल में भावों को व्यक्त किया।

ग़ज़ल में निहित संक्षिप्तता एवं अनुभूति की तीव्रता के कारण हिन्दी में ग़ज़लों का आरम्भ :

अनुभूति की तीव्रता और संक्षिप्तता को ग़ज़ल के प्राण कहा गया है। ग़ज़ल एक समर्थ एवं सशक्त विधा है जिसकी केवल दो पंक्तियों में ही कवि अपने मन में उद्भूत तीव्रानुभूति को अत्यन्त कुशलता से जनमानस तक संप्रेषित कर सकता है।जिस प्रकार बिहारी के दोहे "गागर में सागर" भरने में समर्थ हुए उसी प्रकार उर्दू में ग़जल के शेर। ग़ज्जल के अलग-अलग शेरों में प्रतीकों एवं मुहावरों के माध्यम से अधिक से अधिक भावों को संक्षिप्तता के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

आज के व्यस्तता के युग में ग़ज़ल ही कम से कम समय में व्यक्ति की मानसिक थकावट को दूर करती हैं।

निष्कर्ष :

अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि कथानक, भावना और विचारधारा के संवाहक हैं। गीत और ग़ज़ल ने हिंदी सिनेमा को जनमानस से जोड़ा और उसे सांस्कृतिक पहचान प्रदान की। इनके बिना हिंदी फिल्में अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं कर सकतीं। अतः यह कहना उचित होगा कि गीत और ग़ज़ल हिंदी सिनेमा की आत्मा हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. वर्मा, रामकुमार - हिंदी फिल्म और उसका संगीत
2. दत्त, सत्यदेव - हिंदी सिनेमा का इतिहास
3. गुलज़ार - कुछ और बातें
4. आधुनिक हिंदी कविता में गजल - प्रा. सुश्री लता गुरुव वही, पृ 35,वही, पृ 36, वही पृ 37

*****

हिंदी गीत और ग़ज़ल में प्रगतिशील चेतना

मीरा सिन्हा
शोधार्थी
(s.n.d.t University, Pune)

शोध आलेख का सारांश :

हजारों प्रश्न जैसे बच्चे काम पर क्यों जाते हैं ? हमारा देश एक प्रजातांत्रिक देश है फिर कुछ बच्चे और बाकी बच्चों के बीच खाई क्यों बढ़ती जा रही है? आजादी के इतने सालों बाद भी स्त्रियां असुरक्षित क्यों हैं? जल स्रोत प्रदूषित और सूखती क्यों जा रही हैं? खेत खलिहान सिकुड़ते क्यों जा रहे हैं?शोर है पर अपनों की आवाज किधर है? भीड़ तो है फिर अकेलापन क्यों है? इत्यादि से आहत होकर जब हमारी संवेदना घनीभूत होती है, तब जो चेतना का स्वर उभरता है वही परिष्कृत होकर जनभाषा में गीत और ग़ज़ल में ढलकर जीवनदायिनी जलस्रोतों की तरह जन-जन तक पहुँच कर जीवंतता प्रदान करती है। जन- जन को उठा कर चलने पर बाध्य करती है। जन- जन को सपने रोपने और काटने का हौसला प्रदान करती है । तब यही चेतनशीलता को आत्मसात कर साहित्यकार प्रगतिशीलता में विश्वास करते हुए एक दर्शन विशेष के सहारे आगे बढ़ते हैं और यही साहित्यकार प्रगतिशील साहित्यकार कहलाये।

उदाहरण के तौर पर साहिर लुधियानवी के ये गीत प्रगतिशील चेतना से ओतप्रोत है -

"रात के राही थक मत जाना, सुबह के मंजिल दूर नहीं
धरती के फैले आंगन में
पल दो पल है रात का डेरा
जुल्म का सीना चीर के देखो
झांक रहा है नया सवेरा
ढलता दिन मजबूर सही, चढ़ता सूरज मजबूर नहीं
रात के राही थक मत जाना, सुबह के मंजिल दूर नहीं।
सदियों तक चुप रहने वाले
अब अपना हक लेके रहेंगे
जो करना है खुल के करेंगे
जो कहना है साफ करेंगे
जीते जी घुट घुटके मरना, इस जग का दस्तूर नहीं
रात के राही थक मत जाना, सुबह की मंजिल दूर नहीं"

बीज शब्द : प्रगतिशील ,चेतना ,मनुष्यता ,प्रजातंत्र आजादी ,यथार्थबोध ,साम्यवादी आस्था ,प्रेम ,एकता लोकपक्षधरता।

शोध आलेख का विश्लेषण:

सर्वविदित है कि साहित्य जीवन का सर्वाधिक संवेदनशील अंश है। साहित्य और समाज का संबंध अद्वैत है। दोनों के मूल में मनुष्य की जिजीविषा जीवंत है। अतः स्पष्ट है कि जीवन की भांति साहित्य भी तम और प्रकाश का गतिशील समुच्चय है ।

यही गतिशीलता जब एक विशिष्ट दिशा में आगे बढ़ती है, लक्ष्य सापेक्ष बढ़ती है तब यही गति 'प्रगति' शब्द का अर्थ प्रकट करने में समर्थवान हो जाती है। और गुलामी, अत्याचार, अन्याय का प्रतिकार कर संसार में शांति प्रस्थापित करना इसका मूल मकसद बन जाती है।

इस तरह प्रगतिशीलता एक जन कल्याणकारी भावना है । यह संसार में हमेशा से रही है । व्यक्ति में भी, समष्टि में भी, जीवन में भी, और साहित्य में भी ।

हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रगतिशील चिंतन की यह धारा आदिकाल से ही प्रवाहित रही है। मानवतावाद के रूप में हमारे संतों और कवियों ने कमोबेश हर काल में इसे हिंदी साहित्य में प्रवाहित करते रहे हैं। लेकिन प्रगतिशील लेखक आंदोलन (1936) से इसका सशक्त प्रसार हुआ। इस समय के लेखकों में प्रेमचंद, नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ सिंह, निराला इत्यादि प्रमुख थे, जिन्होंने प्रगतिशील चेतना को स्पष्ट स्वर में जन- जन तक पहुंचाया।

प्रेमचंद ने प्रगतिशील साहित्य के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहा था कि -

" हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते, हमारी कसौटी पर वही साहित्य खड़ा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो - जो हममें गति और बेचैनी पैदा करें, सुलाए नहीं क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है। " 1

इसी प्रकार डॉ. रांगेय राघव प्रगतिशीलता की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि -

"प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रतिक्रिया मात्र नहीं है, वरन् आजतक की विरासत की मानवीयता के उदात्त स्वर को लेकर नए मानव की प्रतिष्ठा में लगा हुआ संगीत है, जो आगे के लिए पथ प्रशस्त करता है।"2

अतः उपयुक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि प्रगतिशील साहित्य अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार कर संपन्नता और शांति के लिए लड़ने वाला साहित्य है। इसका दृष्टिकोण वैज्ञानिक होने के कारण यह इतिहास, तर्क, समाजशास्त्र, तथा मनोविज्ञान के आधार पर चलता है। प्रगतिशील चेतना युक्त साहित्य उन अंध परंपराओं का विरोध करता है जो प्रगति को अवरुद्ध करती दिखती है।

प्रगतिशील साहित्य लोक कल्याण की भावना से घनीभूत होता है। इस तरह प्रगतिशीलता का प्रमुख मानदंड समाज की महत्वपूर्ण इकाइयों का यथार्थ चित्रण है। प्रगतिशील चेतना के मानदंड केवल राजनीति में ही नहीं समाप्त होते वरन् मनुष्य जीवन की व्यापकता को स्पर्श करते हैं जिनमें – मानवतावाद, सामाजिक यथार्थ, परिवर्तनकारी दृष्टि, रुढ़िविरोध, वैज्ञानिक चेतना, लोकपक्षधरता विशेष रूप से निहित है।

"मानव के मुक्ति और एकता के साथ- साथ प्रगतिशील साहित्य वर्ग संघर्ष को न मानकर मनुष्य के सर्वांगीण चित्र को प्रस्तुत करने वाला नया मानवतावाद है जो दूध का दूध और पानी का पानी करके दिखाता है पुराने मानवतावाद की तरह केवल समन्वय नहीं करता।"3

प्रगतिशील साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता निरंतर परिवर्तन रही है। साहित्य को मनुष्य के जीवन के वास्तविक चित्रण का आईना माना जाता है। जीवन निरंतर बदलता रहता है, इस कारण साहित्य में भी परिवर्तन अनिवार्य है। प्रगतिशील साहित्य शोषण का विरोध करता है। "शोषण केवल आर्थिक हो तो ही विरोध करता, ऐसा नहीं है बल्कि मानसिक शोषण, सामाजिक शोषण या पेट की मजबूरी में जब बुद्धि को बेचना पड़ता है तब हुए बौद्धिक शोषण का विरोध भी प्रगतिशील साहित्य करता है।"4 प्रगति के चरण हमेशा विगत के विकर्षण से आगत के आकर्षण की ओर गतिशील हो उठते हैं। प्राचीनता और नवीनता के संघर्ष से जागृत चेतना जनजीवन की प्रगति में सहायक होती है। इस चेतना में मानसिक और बौद्धिक प्रवर्धना की सघनता आती रहती है। लोक जीवन की सापेक्षता प्रगतिशील साहित्य की शाश्वतता को प्राप्त होती है। इसी शाश्वतता के प्रचार के लिए साहित्य का निर्माण हो जाता है। "साहित्य में जीवन के प्रति आस्थावान होने का दृष्टिकोण ही प्रगतिशीलता है।" 5

उदाहरण के तौर पर सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी राम प्रसाद विस्मिल की गज़ल की ये पंक्ति जन-जन को जगाने में अहम भूमिका निभाती रही है, और हजारों की आवाज को एक दमदार आवाज में बदलने में सफल हो सकी है।

"सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है जोड़ कितना बाजू-ए- कातिल में है"

इसी तरह दुष्यंत कुमार बड़ी सहजता से अपने मकसद को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि -

"सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं
मेरी कोशिश है कि सूरत बदलनी चाहिए। "

जागरण का संदेश देते हुए गीतकार शैलेंद्र कह उठते हैं -

"नींद में गवां बैठेगा
अपने आप लुटा बैठेगा
फिर कुछ नहीं बनेगा
चाहे लाख मचाये शोर
मुसाफिर जाग जरा.. "

सामाजिक विषमता पर शैलेन्द्र कहते हैं कि -

"चारों तरफ लगा हुआ मीना बाजार

धन की जहाँ पर जीत गरीबों की हार
इंसानियत के भेष में फिरता है लुटेरा.. "

तो मज़हरू सुल्तानपुरी कहते हैं-

"सौ रूप धरे जीने के लिए, बैठे हैं हज़ारों ज़हर पिए
ठोकर न लगाना हम खुद हैं गिरती हुई दीवाड़ों की तरह"
(फ़िल्म ममता 1966)

अकेलापन पर त्रिलोचन कहते हैं-

"आज मैं अकेला हूँ
अकेला रहा नहीं जाता । "

और इस अकेलापन पर शैलेंद्र कहते हैं कि -

"है दर्द ऐसा के सहना है मुश्किल
दुनिया वालों से कहना है मुश्किल ।"

तो मजरूह सुल्तानपुरी का कहते हैं -

"साथी न कोई मंजिल
दीया है न कोई महफ़िल
चला मुझे ले के, ऐ दिल, अकेला कहाँ ?
गलियां है अपने देश की, फिर भी हैं जैसे अजनबी
किसको कहें कोई अपना यहाँ?
पत्थर के आशना मिले, पत्थर के देवता मिले
शीशे का दिल लिए, जाऊं कहाँ ?
साथी न कोई मंजिल.. "

असमानता पर कैफ़ी आज़मी की एक नज्म की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है -

'औरत'

कद्र अब तक तेरी तारीख ने जानी ही नहीं
तुझमें शोले भी हैं बस अश्कफ़िशानी ही नहीं
तू हकीकत भी है दिलचस्प कहानी ही नहीं
तेरी हस्ती भी है इक चीज़ जवानी ही नहीं
अपनी तारीख का उनवान बदलना है तुझे
उठ मेरी जान ! मेरे साथ ही चलना है तुझे"

मानवता को लक्ष्य करते हुए शैलेंद्र कहते हैं -

"किसी की मुस्कुराहटो पे हो निसार,
किसी का दर्द मिल सके तो ले उधार
किसी के वास्ते हो तेरे दिल में प्यार
जीना इसी का नाम है।"

जन-जन में विश्वास भरने के लिए शैलेंद्र लिखते हैं कि-

"ये गम के और चार दिन
ये सितम के और चार दिन
ये दिन भी जाएंगे
गुजर गए हज़ार दिन
(न्योता और चुनौती)

राष्ट्रीयता पे शैलेन्द्र कहते हैं-

"मेरा जूता है जापानी
ये पतलून इंग्लिशतानी
सर पे लाल टोपी फिर भी
मेरा दिल है हिंदुस्तानी।

और जिंदगी के प्रति आस्थावान होने के लिए साहिर लुधियानवी के ये गीत-

"एक रास्ता है ज़िन्दगी जो थम गए तो कुछ नहीं
ये कदम किसी मुकाम पर जो रुक गए तो कुछ नहीं
(फ़िल्म काला पत्थर)

तो हसरत जयपुरी कहते हैं-

" जिंदगी एक सफर है सुहाना
यहाँ कल क्या हो किसने जाना
(फ़िल्म अंदाज)

इसी तरह

"ज़िन्दगी की न टूटे लड़ी
प्यार कर लो घड़ी दो घड़ी
में प्रेम के महत्व को बताया गया है।

इसी तरह जीवन पर यकीन के सारे रूप लिये यह गीत है -

"ज़िन्दगी प्यार का गीत है, इसे हर दिल को गाना पड़ेगा
जिंदगी गम का सागर भी है, इसके उस पार जाना पड़ेगा
जिंदगी एक आशा भी है, जिंदगी एक निराशा भी है
जिंदगी एक तमाशा भी है सबको करके दिखाना पड़ेगा। "
(फ़िल्म सौतन गीतकार- सावन कुमार)

कवि हरिवंश राय बच्चन जीवन में आए निराशा को हटाकर जीवन में आशा भरते हुए कहते हैं कि -

"जीवन में एक सितारा था, माना बहुत ही प्यारा था
पर उस टूटे तारे पर अंबर कब शोक मनाता
जो बीत गई सो बात गई। ...

इसी तरह संघर्षरत मनुष्यों के लिए हरिवंश राय बच्चन की ये कविता सदा से प्रेरणा देती रही है -

वृक्ष हो भले खड़े
हो घने हो बड़े
एक पत्र छाँव भी
मांग मत, मांग मत, मांग मत,
अग्निपथ, अग्निपथ, अग्निपथ।

निष्कर्ष :

इस तरह गीत और ग़ज़ल केवल भावनात्मक या सौंदर्य परक अभिव्यक्ति ही नहीं है बल्कि ये अपने समय के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृति यथार्थ को भी प्रतिबिंबित करती है। ये गीत और ग़ज़लें समाज की रूढ़ियों, असमताओं और शोषणों के विरुद्ध स्वर उठाती है तथा मानवीय मूल्यों, समानता और न्याय की बातें करती है। इस तरह प्रगतिशील चेतना के संवाहक के रूप में सैकड़ों कवियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिनमें कबीर, केदारनाथ सिंह, त्रिलोचन, निराला, नागार्जुन, शैलेंद्र, साहिर, कैफ़ी आज़मी, दुष्यंत कुमार, धुमिल इत्यादि का योगदान सदा स्मरणीय रहेगा।

अतः प्रगतिशील चेतना वह वैचारिक और संवेदनात्मक दृष्टि है जो समाज को न्याय, समानता, मानव मूल्यों और परिवर्तन की दिशा में ले जाने की आकांक्षा रखती है और इसे फलित होने में प्रगतिशील कवि और साहित्यकार अपना सारा जीवन समर्पित कर देते है।

संदर्भ :

1 डॉ राग्य राघव प्रगतिशील साहित्य की मानदंड ‘1’ pg 326 ‘2’पग 303
2 कबीर और तुकाराम के काव्य में प्रगतिशील चेतना डॉ सुनील कुलकर्णी
‘3’pg 80
‘4’pg 80
‘5’pg 81
3 प्रगतिशील हिन्दी आलोचना विवाद विमर्श मृत्युंजय से
4 गीतों का जादूगर: शैलेन्द्र
5 समकालीन हिन्दी ग़ज़ल संग्रह: माधव कौशिक
6 आज के प्रसिद्ध शायर: कैफी आजमी
7 लोकप्रिय शायर और उनकी शायर मज़रुहन सुल्तानपुरी: प्रकाश पंडित द्वारा संपादित

*****

हिंदी ग़ज़ल में सौंदर्य एवं प्रेम का चित्रण

नम्रता पंडित मोहिते (शोधार्थी)
प्रा.रामकृष्ण मोरे आर्ट्स कॉमर्स एंड साइंस कॉलेज,
आकुर्डी-पुणे. सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय,पुणे
E-mall:- namu1489@gmall.com
संपर्क: 7666533164

सार (Abstract)

विविध शब्दकोशों में ग़ज़ल को 'प्रेमिका से वार्तालाप', नारियों से प्रेम की बाते करना, प्रियतमा से इश्क की बात करना', 'हुस्न की गुफ्तगू करना', 'औरतों से इश्क की तारीफ' कहा गया है। ग़ज़ल रसपूर्ण काव्य शैली है जिसके सौंदर्य प्रभाव सभी स्तर के लोगों पर दिखाई देता है। गजल जैसी विधा आज के कवि सम्मेलनों तक की शोभा बनी हुई है। ग़ज़ल की विकास का सफर फारसी से शुरू होकर उर्दू में पहुँचकर प्रधान काव्य विधा के रूप में विराजमान हो गई है। ग़ज़ल अरबी-फारसी की देन रही है परंतु भारतवर्ष में यह विधा अत्यंत लोकप्रिय है। हिंदी साहित्य में हिंदी ग़ज़ल सशक्त विधा के रूप में गौरव प्राप्त कर रही है। वर्तमान युग में हिंदी ग़ज़ल विद्वानों और लेखकों के लिए आलोचना और चर्चा का विषय बन गई है। हिंदी गज़ल उर्दू भाषा से आया है किन्तु आज की हिंदी ग़ज़ल में सर्वव्यापकता दिखाई देती है। जिसके अंतर्गत राजनीतिक सांस्कृतिक, सामाजिक एवं विभिन्न भाव बोध के दर्शन होते है। हिंदी ग़ज़ल में प्रेम विषयों की अभिव्यक्ति के साथ सामाजिक समस्याओं को लेकर आधुनिक युग की विसंगतियों का चित्रण प्रस्तुत करती हैं। ग़ज़ल ने नई ऊर्जा के साथ अर्थवत्ता प्रदान की है। हिंदी गजल में एक समृद्ध धारा निरंतर विकास के पथ पर अग्रसर है। भारतवर्ष में ग़ज़ल की लम्बी एवं उज्वल परंपरा रही है। उर्दू-फारसी के समान हिंदी ग़ज़ल की मौजुदगी आदिकाल में भी दिखाई देती है। हिंदी ग़ज़ल का प्रारंभ अमीर खुसरो से ही माना जा सकता है। ग़ज़ल भारतेंदु काल में पल्लवित हुई है। भारतेन्दु हरिशचंद्र को गजल ने आकर्षित किया तथा उनके समकालिन कवियों ने ग़ज़ल विधा में योगदान दिया है। युगप्रर्वतक महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा उनके समकालीन कवियों ने ग़ज़ल-शैली में काव्य लिखा। छायावादी काल में ग़ज़ल की विकास यात्रा जारी रही है। गजल का आदर्श रूप 1960 के पश्चात शुरू हुआ दृष्टिगोचर होता है। जिसमें शमशेर, दुष्यंत कुमार, डॉ. कुँअर बेचैन, चंद्रसेन 'विराट', भवानी शंकर, गोपालदास सक्सेना 'नीरज' आदि ने राज़ल क्षेत्र में पदार्पण करके योगदान दिया है। ग़ज़ल गेय मुक्तक विधा है जिसके अंतर्गत प्रेम की विभिन्न स्थितियों और परिणामों का प्रभावशाली वर्णन किया है। ग़ज़ल का अपना एक शिल्प-विधान है। इसमें गजल के अंग, भाषा, अलंकार विधान, रस परिपाक, प्रतीक विधान, छंद-विधान गेयता, आदि महत्त्वपूर्ण है।

बीज शब्द : वार्तालाप, सम्मेलन, विराजमान, भारतवर्ष, आलोचना, सर्वव्यापकता, अभिव्यक्ति, विसंगतिया, पल्लवित, युगप्रर्वतक,आदिकाल

प्रस्तावना:

ग़ज़ल' का शब्द का शाब्दिक अर्थ है- प्रेमिका से वार्तालाप। गजल मूलतः एक ऐसा काव्यरूप है जिसमें प्रेम पर बल दिया जाता है। इसीलिए ग़ज़ल को प्रेम की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम माना जाता रहा है। प्रेम एक वृहद शब्द है। उर्दू-फारसी ग़ज़लों में प्रेम की कथ्य का अनिवार्य तत्व माना गया है। उर्दू-फारसी के शायरों ने इश्क, मोहब्बत, उल्फत, हुस्न, तनहाई, जुदाई, मिलन, गम आदि पर आधारित कई ग़ज़लें प्रस्तुत की हैं। फारसी ग़ज़लों में शुरुआत में सांसारिक प्रेम का वर्णन उससे भी अधिक पैमाने पर हुआ। प्रेम व्यक्ति-मन का सबसे मृदु मनोभाव है और वह स्वयं से ज्यादा निकट है। प्रेम में सबसे अधिक निजपरता दिखाई पड़ती है। हिन्दी गज़लों में प्रेम-भाव की अभिव्यंजना मिलती है लेकिन हिन्दी ग़ज़लकारों ने ग़ज़लों के द्वारा सामाजिकता को अधिक उभारा है। जितना भी चित्रण हिन्दी गजलकारों ने अपनी ग़ज़लों में प्रेम-भाव का किया है, बहुत ही मार्मिक ढंग से किया है। प्रेम की अनेक भाव-भूमियों एवं विविध आयाम हमें हिन्दी ग़ज़लों में परिलक्षित होते है। सन् 1960 के बाद काव्य में प्रेम और श्रृंगार को अपेक्षाकृत कम स्थान प्राप्त हुआ। साठोत्तरी हिन्दी ग़ज़लकारों ने भी आधुनिक परिवेश को मूल कथ्य बनाया। अतः उनकी ग़ज़लों में प्रेम-निरूपण अपेक्षाकृत कम हुआ है। फारसी और उर्दू ग़ज़लों में जिस प्रेम और श्रृंगार को मूल कथ्य माना गया था, उसे साठोत्तरी हिन्दी ग़ज़लकार पूर्णरूपेण नजरअंदाज नहीं कर सके एवं मानव जीवन की इस केन्द्रीय भावनाको उन्होंने ग़ज़लों के माध्यम से अभिव्यक्त किया।

शोध आलेख का विश्लेषण:

हिन्दी ग़ज़लकारों ने अलौकिक प्रेम की अपेक्षा लौकिक प्रेम का ही चित्रण अधिक किया है। प्रेम के दो पक्ष होते है- संयोग और वियोग। साठोत्तरी हिन्दी ग़ज़लकारों ने इन दोनों पक्षों का निरूपण अपनी ग़ज़लों में किया है। किन्तु हिन्दी ग़ज़लों में वियोग पक्ष की तुलना में संयोग पक्ष के बहुत कम चित्र दिखाई देते है। लेकिन कुछ ऐसे गजलकार भी है जिन्होंने संयोग की अनूभूति के आधार पर अपनी गजलों में कुछ शेर कहे हैं। जब मनुष्य किसी के प्रति आकर्षित होता है तो उसके मिलने की इच्छा और उत्कंठा उसके मन में स्वाभाविक है। हृदय जिसके प्रति आकर्षित होता है, उसके साहचर्य में आनंदपूर्ण प्रत्येक क्षण व्यतीत करना चाहता है। प्रिय के बिना उसे चैन नहीं मिलता है जीवन बेमानी लगता है-

"जब से नजरों में कोई समाया लगा
मैं भी अपने को कितना पराया लगा।
ज़िन्दगी की चिलचिलाती कड़ी धूप में,
जब ख्याल आया उनका तो साया लगा।"[1]

प्रेम समर्पण है। प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिए अपना संपूर्ण जीवन समर्पित करने के लिए तत्पर रहता है। इस समर्पण में उसे आनंद की अनुभूति होती है। बलवीर सिंह 'रंग' की ग़ज़ल में यही भाव परिलक्षित होता है-

"सारा जीवन गँवाया तुम्हारे लिये
तुमको अपना बनाया तुम्हारे लिये।
चाहे मानो न मानो तुम्हारी खुशी
'रंग' महफिल में आया तुम्हारे लिए।"[2]

साठोत्तरी हिन्दी ग़ज़ल के प्रमुख हस्ताक्षर दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लों में प्रेम का चित्रण ज्यादा मात्रा में नहीं हुआ है। कहीं-कहीं प्रेम का चित्रण अवश्य है जहा पर दुष्यन्त कुमार ग़ज़ल के माध्यम से अपनी प्रिया के सात्विक सौन्दर्य को आँखों से पीना चाहता है। वह उस सौन्दर्य को छूना नहीं चाहता, अपितु प्रिया के रूप-सौन्दर्य को निहारने में ही आनन्द प्राप्त करता है और इस आनन्द की अनुभूति में उसका मन अतृप्त ही बना रहता है-

"तुमको निहारता हूँ सुबह से ऋतम्बरा,
अब शाम हो रही है, मगर मन नहीं भरा"[3]

दुष्यन्तकुमार प्रेम रूपी ग़ज़लों के माध्यम से वासना का चित्रण नहीं करते, वासनारूपी प्रेम का चित्रण करने से सदा दूर ही रहे दिखाई देते हैं। इसीलिए सात्विक प्रेम का चित्रण करते हुए वे लिखते है-

"चाँदनी छत पे चल रही होगी अब अकेली टहल रही होगी।"[4]

त्रिलोचन ग़ज़लों में लिखते है कि प्रेम की अनुभूति भी बड़ी अजीब होती है। प्रिय के मिलन से पूर्व दिल में तरह-तरह के जज्बात अँगड़ाईयाँ लेने लगते हैं। कल्पना में तो कहकहे लगते हैं, लेकिन वो पास आ जाये तो जुबान खामोश हो जाती है। बहुत कुछ कहने के लिए दिल मचलता रहता है, किन्तु बात जुबान तक आ नहीं पाती। इन भावों को त्रिलोचन ने अपनी गज़ल में प्रभावी शब्दों में अभिव्यक्त किया है।

'य' कहूँगा 'व' कहूँगा, 'व' जरा आएँ तो,
हर्फ आधा भी मगर होंठ पै लाया न गया"[5]

हिंदी ग़ज़लों में श्रृंगार वर्णन में प्रिय के सौन्दर्य को विशेष महत्व है। ग़ज़लकारों ने भी आलंबन के सौन्दर्य का सूक्ष्मता से चित्रण किया है। काली जुल्फों के लिए अँधेरी रात को उपमान बनाना बहुत पहले से चला आ रहा है। हिन्दी ग़ज़लकार गौतम 'अजीज' ने भी इसका प्रयोग करते हुए लिखते है-

"उसके चेहरे पे जहाँ जुल्फ बिखर आयी है
आसमानों से वहीं रात उतर आयी है।"[6]

हिन्दी के ग़ज़लों में नायिका का वर्णन बहुत तन्मयता के साथ किया है। सुखचैनसिंह भण्डारी ने नायिका के सौन्दर्य का वर्णन अपनी एक ग़ज़ल में अलंकारिक शैली में किया है-

हौले-हौले हँसती हो गुलाबी गालों में
गढ़ा पड़ने वाली वो गाल दिखाओं"[7]

हिन्दी के ग़ज़लकारों ने श्रृंगार रस में से वियोग वर्णन को अधिक महत्व दिया है। विरह की पीर का चित्रण हिन्दी ग़ज़लकारों ने मार्मिक रूप से किया है। वियोग की दशा में प्रिय की स्मृति जीवन का आधार बन जाती है। विरह में प्रियतमा प्रिय की स्मृतियों में निस-दिन आकुल-व्याकुल रहता है। यह स्मृतियाँ कभी उसे रुलाती है, तो कभी उसे हँसाती है। कभी वह प्रिय की कठोरता पर दुःखी होती है-

"जब तेरी याद ने सीने से लगाया मुझकों
याद आकर भी कोई याद न आया मुझको"[8]

प्रियतम की यादों में प्रेमी का दिल तड़पता रहता है। आँसूओं के सागर उमड़ पड़ते है। डॉ. कुँअर बेचैन ने इन भावों को अभिव्यक्त करते हुए यादों को समुंदर की लहरें कहा है-

"तेरी यादों में सुलगता रहा दिल चंदन-सा
जब पिये अश्क, लगा शहद की बूँदे पी हैं।"[9]

हिंदी ग़ज़ल साहित्य में औंकार गुलशन ने विरह की वेदना का वर्णन गज़ल के माध्यम से किया है वे लिखते है की याद सताने पर आँसू बहाने के अतिरिक्त क्या शेष रहता है, दिन गुजरते गये किन्तु शाम होते ही यादे आने लगी है। शाम के साथ-साथ याद भी धीरे-धीरे पास आने लगती है, जिससे गम और बढ़ जाता है। इस बात को अपनी गज़ल में इस तरह अभिव्यक्त किया है-

"साँझ ढले जब सन्नाटा मेरे घर का मेहमान हुआ,
तेरी यादों का मेरी तनहाई पर अहसास हुआ।"[10]

प्रिय को प्रियतम कि यादे आती रहती है। प्रिय की स्मृति से तन-मन की जो अवस्था होती है, उसकी सटीक अभिव्यक्ति मृदुला अरुण की गजल में हुई है-

"याद तेरी जब भी आ जाती है मेरे हमनवा,
फूटने लगता है कुछ, तन-मन में छालों की तरह।"[11]

अपने प्रिय व्यक्ति के याद में मन कि अवस्था का चित्रण प्रस्तुत ग़ज़ल में हुआ है। प्रिय को अपने आसपास प्रिया की उपसिथति का अहसास होने लगता है। प्रिया की यादें मन को झकझोर देती है। इस दशा का चित्रण करते हुए ओंकार गुलशन लिखते हैं-

"ऐ मेरे गमशनास कमरे में
है बहुत दिल उदास कमरे में
तेरी यादें पहन के आती है।"[12]

कुँअर बेचैन कहते है कि किसी के स्मृतियों में डूबे हुए दिल को चैन नहीं मिलता। रातों की नींद को यादें चुराकर ले जाती हैं। दिन का चैन और रातों की नींद नष्ट हो जाती है। दिल में अकुलाहट और बेचैनी छा जाती है। एक पीड़ा सी महसूस होने लगती है, इसी भावना को व्यक्त करते हुए लिखते है -

"वो मेरी रातें मेरी आँखों में आकर ले गयी,
याद तेरी चोर थी नींदे चुराकर ले गयी।[13]

रामावतार त्यागी वियोग श्रृंगार का वर्णन करते हुए कहते है कि कुछ वस्तुएँ एवं दृश्य सामने आ जाते है, जिनकी वजह से विगत की स्मृतियाँ तरोताजा हो उठती हैं। फिर चाहे वह जगमगाते दीप हो, समंदर का किनारा हो या चाँदनी रात हो-

"कभी जब जगमगाते दीप गंगा पर टहलते हैं,
किसी सुकुमार सपने का मुकद्दर याद आता है।"[14]

प्रियतम से मिलने की संभावना समाप्त हो जाने पर जिन्दगी व्यर्थ-सी लगती है। क्योकि प्रियतम की स्मृति से आकुल-व्याकुल मन छटपटाता रहता है। दिल में दर्द का छा जाता है। इन भावों को बालस्वरूप राही ने अपनी ग़ज़ल में इस तरह व्यक्त किया है-

"दिल की हर आरजू नाकाम हुई जाती है,
ज़िन्दगी दर्द का पैगाम हुई जाती है। "[15]

हिन्दी गज़ल में श्रृंगार के चित्रण में प्रकृति को उद्दीपन के रूप में अपनाया गया है। प्रकृति संयोग श्रृंगार में सुखात्मक एवं वियोग में दुखभरी जान पड़ती है ओम रायजादा इस संदर्भ में कहते है -

"बार-बार मन को तड़पाती ये तनहाई सावन में
तन में इस बैरी बरखा ने आग लगाई सावन में।"[16]

जीवन में प्रिय के वियोग में विरही को ज़िन्दगी अधूरी-सी लगती है। ज़िन्दगी का सफर अकेले तय करना कठिन लगता है। गजलकार गिरिधर गोपाल इस संबंध में लिखते है-

`"कोई ये बोझ उतारो, सफर नहीं कटता
अरे किसी को पुकारो, सफर नहीं कटता।"[17]

किसी के प्रति प्रेम में लीन व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार अपनी प्रेमिका के लिए ही होते हैं प्रेम समर्पण है। वह लगातार अपनी प्रेमिका को खुशहाल देखना चाहता है। इसी में उसे संतोष एवं आनन्द की अनुभूति होती है। इन भावों को बलवीर सिंह 'रंग' ने सुन्दरता से व्यक्त किया हैं-

"सारा जीवन गँवाया तुम्हारे लिये
तुमको अपना बनाया तुम्हारे लिए।"[18]

प्रेम रूपी भाव के लिए दिल का होना काफी महत्वपूर्ण होता है। जो व्यक्ति जीवन में दिल कि बात समझता है वही असल में प्रेम कि भावना को समझ पाता है । क्योकि प्रेम में समर्पण की भावना निहित होती है। प्रेम एक हृदयगत भाव पाया जाता है। प्रेम की सर्वश्रेष्ठता त्याग पर निर्भर है। जो लोभी है, जो प्रेम को आडम्बर समझते है, उनको प्रेम करने का कोई हक नहीं होता। इसीलिए आत्मप्रकाश शुक्ल अपनी एक ग़ज़ल में लिखते है-

"आग पीकर पचाने को दिल चाहिए
इश्क की चोट खाने को दिल चाहिए
राख होकर शलभ ने शमा से कहा,
अपनी हस्ती मिटाने को दिल चाहिए।"[19]

प्रेम इतना गहरा होता है कि इसका थाह लगाना मुश्किल होता है। प्रेम का संसार ही बड़ा अद्भुत जान पड़ता है, इसमें दूर और पास रहने का अन्तर नहीं समझ में आता है। उर्मिला ने इसे भावपूर्ण अभिव्यक्त किया है-

"तुम तो जल-जल के दिल को बुझाते रहे मु
झको बुझ-बुझ के दिल को जलाना पड़ा।"[20]

मनुष्य जीवन में मीठापन या मधुरता किसी कारन आती है तो वह प्यार है । प्रेम के आभाव में जीवन निरर्थक जान पड़ता है। प्यार में हृदय सदैव कोमल भावनाओं के प्रति संवेदनशील होता है। संयोग की दशा में जो बातें आनंदमयी जान पड़ती हैं, वही वियोग की दशा में दुःख दायी जान पड़ती है, वियोग में फूलों की खुशबू उड़ जाती है, लेकिन संयोग में मुरझाये फूल खिल उठते है। विरह की स्थिति में उदासी का भाव होता है इस भाव का वर्णन कुमार अनिल की एक ग़ज़ल में है-

"मीठी नजरों ने तुम्हारी छू लिया जब भी मुझे
कितनी क्वारी हसरतों के हाथ पीले हो गए।"[21]

विरह के भाव में प्रेमी को ऐसा महसूस होने लगता है कि संसार में सभी का अपने-अपने प्रिय से मिलन हो चुका है, बस एक वही है जिसकी प्रतीक्षा की घड़ियाँ अभी पूरी नहीं हुई हैं। इस वजह से उसका विरह की अग्नि में जलने वाला मन हताश, निराश और उदास हो उठता है। प्यार में इन्तजार की घड़ियाँ बड़ी मुश्किल होती है। विरह में अपने प्रिय का इंतजार करती रहती है लेकिन प्रियतम का दर्शन नहीं कर पाती है। प्राकृतिक के माध्यम से अपनी भावना को व्यक्त करते हुए बलवीर सिंह 'रंग' लिखते हैं-

"धरा पर थम गयी आँधी गगन में काँपती बिजली
घटाएँ आ गयी अमराईयों तक तुम नहीं आये।"[22]

विरह कि भावना जीवन में क्यों आती है इस के कुछ कारन लिखते हुए हिंदी ग़ज़लकार स्पष्ट करते है कि प्रेम में प्रेमिका का उपेक्षापूर्ण व्यवहार प्रियकर को दुःख पहुँचाता है। प्रेमी उदास, निराश और वेदना शून्य होने लगता है, फिर भी प्रेमिका खुद में मस्त रहती है। सारी रात हमने उसकी याद में बितायी है, पता नहीं अब सुबह कब होगी। इन भावों को 'रंग' ने इस तरह व्यक्त किया है-

"रात कटी तेरे ख्यालों में,
अब न जाने सहर कहाँ होगी।"[23]

कभी-कभी प्रेम में विरह निर्माण होने का कारन बेवफ़ाई भी होता है। सच्चिदानंद तिवारी 'सजल' ने अपनी एक ग़ज़ल में प्रियतम की बेवफाई के कारण प्रेमी के मन की दशा का चित्रण करते हुए लिखा-

" तुम्हारी बेवफाई पर, अब हमारा दम निकलता है
हुए हम खाक लेकिन, क्या हमें जीना भी आता है।"[24]

हिंदी ग़ज़लों में दिखाया गया है कि प्रेम में प्रेमिका की बेवफाई की चोट से प्रियकर तड़पता रहता है। प्रेमी जब प्रेम में नाकाम हो जाता है, तब वह निराशा के पल में जीने लगता है, और उसका मन दुःखी हो जाता है। इस भाव की अभिव्यक्ति ग़ज़ल के माध्यम से की गयी है-

"जख्म वही दे गई है प्यार की कटार
मुश्किल से हमने जोड़े थे कई टूटे हुए ख्वाब"[25]

हिन्दी के ग़ज़लकारों ने आधुनिक समय में दिखाई दे रहे प्रेम के सयोग और वियोग रूप का चित्रण अपनी-अपनी ग़ज़लों में किया है। प्रेम में धोखा, झूठ अविश्वास आदि दुर्गुणों का समावेश हो चुका है। वासना प्रधान प्रेम आज के समाज में अपनी पकड़ मजबूत कर चुका है। प्रेम में तन तथा मन दोनों की प्रधानता होती है। जहीर कुरेशी ने अपनी एक ग़ज़ल में इसी यथार्थ को उजागर किया है-

"धीरे-धीरे समझ गई लड़की,
तन भी होता है प्यार में शामिल ।"[26]

चंद्रसेन विराट अपनी गज़ल 'धार के विपरीत' में लिखते है कि वर्तमान भोगवादी युग में भावनाओं का विशेष महत्व नहीं है। इस समय पवित्र प्रेम का कोई महत्व नहीं, मूल्य नहीं है। प्यार में पवित्र प्रेम कि जगह वासना का भाव निहित हो गया है। इस भावना को इन पंक्तियों में अभिव्यक्त करते है -

"प्राण को प्राण कहाँ मिलता है
स्नेह का दान कहाँ मिलता है।"[27]

निष्कर्ष: वास्तव में हिंदी ग़ज़ल का मूल कथ्य श्रृंगार ही रहा है। अतः हिंदी ग़ज़ल साहित्य में प्रेम को व्यापक रूप से विशद किया गया है। श्रृंगार और प्रेम को उर्दू गजलकारों ने मुख्य विषय वस्तु मानकर उसकी सशक्त रूप से अभिव्यक्ति की है, उसीप्रकार हिंदी गज़लो में भी श्रृंगार रस का चित्रण दिखाई देता है । हिंदी गजल साहित्य में संयोग श्रृंगार से अधिक वियोग श्रृंगार पर बल दिया है। प्रेमी की वेदना, पीड़ा, तड़प, व्याकुलता आदि भावों का चित्रण प्रमुखता के साथ किया गया है। हिन्दी ग़ज़ल संवेदना की दृष्टि से सब से आगे है। हिन्दी ग़ज़ल में प्रेम कि अभिव्यक्ति के साथ आधुनिक भावबोध, सर्वहारा वर्ग की पीडा, संघर्षशील जीवन आदि विभिन्न संवेदनाओं को अभिव्यक्त किया है। हिन्दी ग़ज़ल में संप्रेषणियता, प्रभोत्पादकता, वर्ण्य विषय की व्यापकता, संक्षिप्तता, मौलिकता, अनुभूति की तीव्रता दिखाई देती है। अर्थात हिन्दी ग़ज़ल आम जनता कि संवेदनशील जीवन शैली से जुड़ गई है। जिस के कारन जीवन के विभिन्न पहलू हिन्दी गजल में उद्घाटित हुए है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. रस्सियाँ पानी की, डॉ. कुँअर बेचैन, पृ. 22.
2. हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लें, सं. डॉ. गिरिराज अग्रवाल, पृ. 113.
3. दुष्यंत कुमार, साये में धूप, पृ. 46.
4. दुष्यंत कुमार, साये में धूप, पृ. 28.
5. गुलाब और बुलबुल, त्रिलोचन, पृ. 22.
6. आधुनिक हिन्दी ग़ज़ल ओर आधुनिक बोध-प्रतिमा सक्सेना, पृ. 136.
7. ग़ज़ल तेरे प्यार की, सुखचैन सिंह भंडारी, पृ. 24.
8. महावीर इतजारों का, डॉ. कुँअर बेचैन, पृ. 72.
9. रस्सियाँ पानी की, डॉ. कुँअर बेचैन, पृ. 28.
10. हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लें, सं. डॉ. गिरिराज अग्रवाल, पृ. 32.
11. बहुरंगी हिन्दी गज़लें, सं. डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, पृ. 99.
12. हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ गज़लें, सं. डॉ. गिरिराज अग्रवाल, पृ. 33.
13. रस्सियाँ पानी की, डॉ. कुँअर बेचैन, पृ. 34.
14. गुलाब और बबूल वन, रामावतार त्यागी, पृ. 103.

15. ग़ज़लें ही ग़ज़लें, सं. शेरगंज गर्ग, पृ. 116.
16. हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लें, सं. डॉ. गिरिराज अग्रवाल, पृ. 40.
17. हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लें, सं. डॉ. गिरिराज अग्रवाल, पृ. 57.
18. हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ गजलें, सं. डॉ. गिरिराज अग्रवाल, पृ. 113.
19. हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ गज़लें, सं. डॉ. गिरिराज अग्रवाल, पृ. 24.
20. हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लें, सं. डॉ. गिरिराज अग्रवाल, पृ. 29
21. हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लें, सं. डॉ. गिरिराज अग्रवाल, पृ. 50.
22. राग-रंग, बलवीर सिंह 'रंग' स्मृति अंक, पृ. 17.
23. आधुनिक हिन्दी ग़ज़ल ओर आधुनिक बोध-प्रतिमा सक्सेना, पृ. 145.
24. नवीनतम हिन्दी ग़ज़लें, डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, पृ. 106.
25. ग़ज़ल तेरे प्यार की, सुखचैन सिंह भंडारी, पृ. 80.
26. चाँदनी का दुःख, जहीर कुरेशी, पृ. 31.
27. धार के विपरीत, चन्द्रसेन विराट, पृ. 15-16.

*****

हिंदी ग़ज़लों में राजनीतिक परिदृश्य

प्रा. हसीना मालदार,
प्रमुख, हिंदी विभाग
डी. आर. माने महाविद्यालय कागल
मो.नं. 9284901919
hasinamaldar25@gmail.com

सारांश :

हिंदी ग़ज़लें अपने आरंभ से ही भावात्मक अभिव्यक्ति की सशक्त विधा रही हैं, परंतु आधुनिक काल में इनकी विषय-वस्तु में उल्लेखनीय विस्तार हुआ है। पहले ग़ज़ल का संसार प्रेम, विरह, श्रृंगार या आत्मानुभूति तक सीमित माना जाता था, किन्तु बदलते सामाजिक और राजनीतिक माहौल ने इस विधा में नई संवेदनाओं को जन्म दिया। समकालीन हिंदी ग़ज़लों में राजनीतिक चेतना, सत्ता-व्यवस्था के प्रति विडंबना, भ्रष्टाचार की आलोचना, जन-आकांक्षाओं का स्वर, लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा तथा आम नागरिक के संघर्ष का यथार्थ अत्यंत प्रभावशाली ढंग से उभरकर सामने आया है। यह लेख हिंदी ग़ज़लों में राजनीतिक परिदृश्य के उभार, उसकी अभिव्यक्ति शैली, भाषा, प्रतीक, व्यंजनाओं और चिंतन-प्रवाह को व्यापक और गहन रूप में प्रस्तुत करता है। यह शोध इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि ग़ज़ल अब केवल भावनाओं का नाजुक फूल नहीं, बल्कि सामाजिक प्रणालियों पर टिप्पणी करने वाली धारदार विधा बन चुकी है। हिंदी ग़ज़लकारों ने राजनीतिक स्थितियों के बहुआयामी पहलुओं शासन की नीतियों से लेकर जनता के असंतोष तक को अत्यंत मार्मिक तथा कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया है। इस आलेख का उद्देश्य इन्हीं राजनैतिक धारणाओं के साहित्यिक स्वरूप का विश्लेषण करते हुए यह दिखाना है कि हिंदी ग़ज़ल आज आम आदमी की आवाज़, उसकी पीड़ा, उसकी आकांक्षाओं और उसके संघर्षों का दर्पण बन गई है।

बीज शब्द : हिंदी ग़ज़ल, राजनीतिक चेतना, समकालीन राजनीति, लोकतांत्रिक मूल्य, सत्ता-विमर्श, जन-संघर्ष, भ्रष्टाचार,

प्रस्तावना :

राजनीति मनुष्य के जीवन का वह आधार है जो उसकी सामाजिक संरचना, आर्थिक स्थिति और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को अनेक स्तरों पर प्रभावित करती है। साहित्य, समाज और राजनीति का संबंध हमेशा से घनिष्ठ रहा है। साहित्य समाज के यथार्थ को न केवल देखता है बल्कि उसे एक नए दृष्टिकोण से पुनर्गठित भी करता है। ऐसे में ग़ज़ल जैसी सूक्ष्म और कलात्मक विधा राजनीति के प्रभाव से कैसे अछूती रह सकती थी? उर्दू से हिंदी में आई ग़ज़ल ने भाषा और भाव दोनों स्तरों पर समय के साथ व्यापक विस्तार पाया। हिंदी कवियों ने इस विधा को केवल प्रेम और संवेदना का माध्यम न रहने देकर इसे सामाजिक-राजनीतिक कटु यथार्थ की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। विशेषतः पिछले पाँच–छह दशकों में ग़ज़लकारों ने राजनीतिक विडंबनाओं, जनतांत्रिक मूल्यों की गिरावट, सांप्रदायिक तनाव, आर्थिक विषमता और सत्ता की चालाकियों पर तीखे परंतु सौंदर्यपूर्ण व्यंग्य किए। हिंदी ग़ज़लों में राजनीतिक परिदृश्य केवल आलोचना तक नहीं सीमित, बल्कि यह जनता के सपनों, संघर्षों और उम्मीदों से भी भरी हुई है। ग़ज़लकार सत्ता की गलत नीतियों को चुनौती देते हैं, लेकिन साथ ही लोकतंत्र के मूल्य, मानव अधिकार और सामाजिक न्याय जैसी अवधारणाओं को भी मजबूती से रेखांकित करते हैं। यही कारण है कि आज हिंदी ग़ज़ल राजनीतिक चेतना की बेहद प्रभावी विधा बन चुकी है।

मुख्य विश्लेषण :

हिंदी ग़ज़लों में राजनीतिक परिदृश्य का निर्माण किसी एक दिशा से नहीं होता। यह एक जटिल और बहुमुखी संरचना है जिसमें सत्ता, समाज, जनता, संघर्ष, भ्रष्टाचार, विद्रोह, विवेक और मानवीय मूल्य सभी एक साथ चलते हैं। ग़ज़लकार जब राजनीतिक दुनिया की बात करते हैं तो वे केवल प्रशासनिक गलियारों को नहीं देखते, बल्कि वे उन जन-मन की पीड़ाओं को भी सुनते हैं जो राजनीतिक तंत्र के कारण उत्पन्न होती हैं। ग़ज़ल की अभिव्यक्ति सूक्ष्म, तीक्ष्ण और अत्यंत सांकेतिक होती है, जिससे राजनीतिक टिप्पणी और भी प्रभावशाली बन जाती है। राजनीतिक ग़ज़लों का पहला स्वर आम जनता के संघर्ष और उसके अपूर्ण सपनों से शुरू होता है। जब लोकतंत्र केवल कागज़ों में रह जाता है और जनप्रतिनिधि जनता से कट जाते हैं, तब ग़ज़लकार उस बेचैनी को अपनी पंक्तियों में पिरो देता है। वह कहता है कि लोकतंत्र का मंदिर तभी अर्थपूर्ण है जब उसमें जनता की आवाज़ सुनाई दे। डॉ आलोक वर्मा के अनुसार, "जब जनता की आवाज़ दब जाती है या उसे अनसुना कर दिया जाता है, तब ग़ज़लें इस विसंगति पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं।" राजनेताओं के वादों और उनके कार्यों के बीच की दूरी ग़ज़ल में बड़े व्यंग्यात्मक अंदाज़ में उभरती है, जहाँ

शब्द चाबुक की तरह सत्ता की आत्ममुग्धता को विचलित करते हैं। दूसरा महत्वपूर्ण स्वर भ्रष्टाचार की समस्या है। यह ऐसी समस्या है जो राजनीति के हर कोने में अपनी जड़ें फैलाती है और जनता के विश्वास को तोड़ देती है। ग़ज़लकार इस भ्रष्ट राजनीतिक ढांचे को उजागर करते हैं। वे यह दिखाते हैं कि किस प्रकार सत्ता के शीर्ष पर बैठे लोग आम नागरिक की मेहनत, अधिकार और उम्मीदों को लूट लेते हैं। भ्रष्टाचार केवल आर्थिक शोषण नहीं, बल्कि यह जनता की आत्मा पर प्रहार है। ग़ज़ल इसे अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है कभी करुणा में, कभी व्यंग्य में और कभी प्रतिरोध के तेजस्वी स्वर में।

हिंदी ग़ज़लों में राजनीतिक परिदृश्य का तीसरा आयाम शासन की नीतियों और राज्य की इकाइयों पर केंद्रित है। कई ग़ज़लकारों ने लिखा है कि राज्य वह संरचना है जो जनता की रक्षा करता है, परंतु वही संरचना जब जनता को डराने लगे, उसकी स्वतंत्रता छीनने लगे, उसकी आवाज़ को दबाने लगे, तब ग़ज़लकार उसकी आलोचना के लिए आगे आता है। ग़ज़लें राज्य की शक्ति के दुरुपयोग पर सीधे वार करती हैं। इसमें कभी-कभी व्यंग्यात्मक संकेतों का सहारा लिया जाता है ताकि सत्ता की कठोरता को कलात्मक ढंग से उद्घाटित किया जा सके। सांप्रदायिक तनाव और सामाजिक विभाजन भी ग़ज़लों का केंद्रीय विषय बनते हैं। राजनीति जब धर्म, जाति या समुदाय के नाम पर विभाजन उत्पन्न करती है, तब ग़ज़लकार उसकी इस नीति को बेनकाब करते हैं। ग़ज़ल की रचनात्मक शैली सांप्रदायिकता के खिलाफ एक प्रभावशाली हथियार साबित होती है। प्रेम, मानवता और सद्भावना ग़ज़ल के मूल मूल्य हैं, इसलिए ग़ज़ल सांप्रदायिक भेदभाव के विरुद्ध स्वाभाविक रूप से विद्रोही हो जाती है। इस संदर्भ में विनोद निर्भय लिखते हैं कि, "धरम के नाम पर यू आशियां हर दिन जलाओ मत हमें मिलकर नई बस्ती बसाने की जरूरत है।" कई ग़ज़लों में यह स्वर स्पष्ट सुनाई देता है कि राजनीति का सबसे बड़ा दायित्व समाज को जोड़ना है, न कि तोड़ना। जब राजनीति यह दायित्व भूल जाती है, तब ग़ज़लें इस भूल को याद दिलाती हैं। राजनीतिक विडंबनाओं को उजागर करने में ग़ज़लकारों ने प्रतीकों और उपमानों का अद्भुत प्रयोग किया है। कभी वे राजनीति को एक टूटी हुई नाव बताते हैं, कभी इसे रास्ता भटक गया कारवां कहते हैं, कभी इसे अँधेरी सुरंग, कभी झूठे वादों की पोथी। प्रतीक ग़ज़ल की शक्ति हैं और राजनीति की आलोचना इन प्रतीकों के माध्यम से और भी तीक्ष्ण बन जाती है। ग़ज़लकार के लिए राजनीति एक कठोर यथार्थ होते हुए भी कलात्मक संकेतों से ढले हुए सत्य की तरह सामने आती है।

जनता की आकांक्षाएँ ग़ज़लों में बड़े भावुक और मार्मिक ढंग से व्यक्त होती हैं। ग़ज़ल केवल शिकायत नहीं करती, वह उम्मीद भी जगाती है। उसमें राजनीतिक सपनों का उजाला भी है—एक ऐसा समाज जहाँ न्याय हो, समानता हो, अवसर हो, और शासन जनता के हित में कार्य करे। हिंदी ग़ज़लकार अक्सर इस आदर्श लोक की छवि को अत्यंत कोमलता और सौंदर्य से चित्रित करते हैं। यह छवि जनता के मन की वह छुपी आकांक्षा होती है जो राजनीतिक अंधकार के बीच भी आशा का दीप जलाए रखती है। समकालीन ग़ज़लों में आर्थिक असमानता और वर्गीय शोषण भी राजनीतिक परिदृश्य का हिस्सा बन जाते हैं। राजनीति जब पूँजीपतियों के हित में कार्य करती है और गरीबों को हाशिये पर धकेल देती है, तब ग़ज़लकार इस असंतुलन पर सवाल उठाते हैं। कृषि संकट, बेरोजगारी, मजदूरों का पलायन, गरीबी और भूख जैसी व्यथाएँ राजनीतिक निर्णयों से जुड़ी होती हैं, इसलिए ग़ज़लें इन्हें संवेदनात्मक रूप में प्रस्तुत करती हैं। डॉ रामनाथ शोधार्थी इस संदर्भ में लिखते हैं कि,

" सभी को एक दिन मरना है लेकिन,
सभी करने से पहले मर रहे हैं।"

ग़ज़ल का एक महत्वपूर्ण रूप लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा से भी जुड़ा है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, मानव अधिकार, समानता, संविधानिक आदर्श—ये सभी ग़ज़लों में प्रतिरोध के स्वर को दिशा देते हैं। जब सत्ता आलोचना को दबाने की कोशिश करती है, तब ग़ज़लें अपना स्वर और बुलंद करती हैं। ग़ज़लकार आलोचना को देशभक्ति का हिस्सा मानते हैं, न कि अपराध। वे कहते हैं कि देश को प्रेम करना है तो उसकी समस्याओं पर आँखें बंद नहीं की जा सकतीं। ग़ज़लें इसी सच को सौंदर्य और संवेदना में पिरोकर जनता के बीच रखती हैं। समकालीन ग़ज़लकारों ने राजनीति के नये रूप मीडिया, चुनावी प्रबंधन, सोशल मीडिया की राजनीति, प्रचार और दुष्प्रचार को भी विषय बनाया है। आज राजनीति का बड़ा हिस्सा छवियों, भाषणों और प्रचार अभियानों से निर्मित होता है। ग़ज़लकार बताते हैं कि राजनीति वास्तविकता से अधिक दिखावे पर आधारित हो चुकी है। नेता जनता के बीच कम और स्क्रीन पर अधिक दिखते हैं। ग़ज़लें इस परिवर्तन को सूक्ष्मता से पकड़ती हैं और दिखाती हैं कि किस प्रकार यह नई राजनीति जनता की असली समस्याओं से दूर होती जा रही है। इस विश्लेषण का अंतिम महत्वपूर्ण पहलू यह है कि ग़ज़लों में राजनीतिक परिदृश्य केवल आलोचना ही नहीं, बल्कि परिवर्तन की आशा भी प्रस्तुत करता है। ग़ज़ल में राजनीति का स्वर संघर्ष

और उम्मीद दोनों को साथ लेकर चलता है। ग़ज़लकार जनता के साथ खड़े होकर उसके लिए बोलता है। ग़ज़ल राजनीतिक चेतना का वह दर्पण बनती है जिसमें समाज अपना चेहरा साफ़-साफ़ देख पाता है।

निष्कर्ष :

हिंदी ग़ज़लों में राजनीतिक परिदृश्य का विस्तार इतना व्यापक हो चुका है कि यह विधा अब केवल सौंदर्य और प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं रह गई, बल्कि यह समकालीन राजनीतिक चेतना की सबसे प्रभावशाली विधाओं में से एक बन चुकी है। हिंदी ग़ज़लकारों ने राजनीतिक जीवन की विडंबनाओं को जिस भावनात्मक, सांकेतिक और कलात्मक शैली में प्रस्तुत किया है, वह ग़ज़ल को नई ऊँचाइयों पर ले जाती है। यह स्पष्ट है कि आधुनिक हिंदी ग़ज़ल राजनीति की केवल आलोचक नहीं, बल्कि सुधारक भी है। वह सत्ता को आईना दिखाती है और जनता को उसकी शक्ति का बोध कराती है। ग़ज़ल लोकतंत्र, समानता, न्याय और स्वतंत्रता के मूल्यों को पुनर्जीवित करती है। यह समाज के सांप्रदायिक विभाजन, आर्थिक विषमता और भ्रष्टाचार जैसे मुद्दों को बड़े साहस और संवेदना के साथ व्यक्त करती है। हिंदी ग़ज़लों में राजनीतिक परिदृश्य का यह विकास साहित्य के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण है। आज की ग़ज़ल समाज की नब्ज़ पर हाथ रखकर चलती है। वह दर्द भी सुनती है और उम्मीद भी जगाती है। वह आलोचना भी करती है और समाधान की राह भी दिखाती है। इस दृष्टि से हिंदी ग़ज़ल समकालीन राजनीति का सबसे कलात्मक, सबसे संवेदनशील और सबसे सच बोलने वाला साहित्यिक माध्यम बन चुकी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1) डॉ आलोक वर्मा, समकालीन गजल करो में राजनीतिक चित्रण, स्वरूप प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2019, पृष्ठ क्रमांक 92
2) अविनाश भारती, अदम्य, श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली वर्ष 2022, पृष्ठ क्रमांक 16
3) वही, पृष्ठ क्रमांक 71

*****

इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में चित्रित आदिवासी लोकगीतों का अध्ययन

प्रा. रविदास एस पाडवी
हिंदी विभाग, सहयाक प्राध्यापक,
महावीर महाविदयालय,कोल्हापुर
मो.न. 8275250020
ravidasp@rediffmail.com

सारांश

लोकगीत भारतीय साहित्य की एक अत्यंत महत्वपूर्ण और प्राचीन परंपरा है। यह केवल संगीत या मनोरंजन का माध्यम नहीं है, बल्कि समाज, संस्कृति, इतिहास और जीवन का दर्पण भी है। भारतीय आदिवासी समाज में लोकगीत विशेष महत्व रखते हैं। आदिवासी समाज के लोकगीत सामाजिक, धार्मिक,और सांस्कृतिक जीवन के सभी पहलुओं में गहरे पैठे हुए हैं। आदिवासी लोकगीत मुख्यत: मौखिक परंपरा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित होते रहे हैं। इस लोकगीत में आदिवासी समुदाय के जीवन की दैनिक घटनाओं, सामाजिक मूल्य, धार्मिक आस्थाएँ, सुख-दुःख,आशा-अपेक्षाएँ, संघर्ष और प्राकृतिक परिवेश की अभिव्यक्ति करते हैं। इक्कीसवीं सदी के हिंदी आदिवासी उपन्यासों में लोकगीतों का समावेश न केवल साहित्यिक सौंदर्य बढ़ाता है, बल्कि सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक संरक्षण और आदिवासी जीवन की यथार्थ छवि प्रस्तुत करते हैं।

बीजशब्द : आदिवासी, लोकगीत, समाज, समुदाय, संस्कृति, मौखिकता, परंपरा

प्रस्तावना

लोकगीत भारतीय आदिवासी समाज की सांस्कृतिक धरोहर का अभिन्न अंग हैं। यह केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि आदिवासी जीवन के अनुभवों, आस्थाओं, संघर्षों और सामाजिक मूल्यों का जीवंत दस्तावेज भी हैं।आदिवासी समाज में लोकगीत मौखिकता परंपरा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित होते आए हैं और यह उनके सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण माध्यम हैं। इक्कीसवीं सदी के हिंदी आदिवासी उपन्यासों में लोकगीत का प्रयोग विशेष महत्व रखता है। आधुनिक हिंदी आदिवासी उपन्यासकारों ने लोकगीत को केवल पारंपरिक स्वरूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि उसे कथानक, पात्रों के भाव और सामाजिक चेतना को उजागर करने के लिए सृजनात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। लोकगीत पात्रों के मनोभाव, आदिवासी समुदाय की एकता और सामाजिक संघर्ष को अभिव्यक्त करने में सहायक हैं।

विवेचन

तेजिंदर का उपन्यास 'काला पादरी' में आदिवासी जीवन की कठिनाइयों और सामाजिक संघर्षों के चित्रण के साथ-साथ लोकगीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। उपन्यास में पात्र उत्सव और श्रम के समय लोकगीत गाते हैं। यह लोकगीत फसल काटने या शादी के अवसर पर गाए जाने वाले लोकगीत न केवल उत्सव-त्यौहार की भावना को प्रदर्शित करते हैं, बल्कि पात्रों की भावनाओं और सामाजिक समरसता को भी उजागर करते हैं।

"धरती मां के अंगना में, हम बीज बोएंगे,
पसीने की धार से, सुख-खेत सजाएंगे।"[1]

लोकगीत पात्रों की भावनाओं और कथानक के विकास में योगदान देते हैं। पात्रों के गीत उनकी आशाएँ, पीड़ा और उत्साह को दर्शाते हैं, जिससे पाठक आदिवासी जीवन की यथार्थता अनुभव कर पाता हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में कबुतरा आदिवासी जनजाति के लोगों के लोकगीतों का चित्रण किया गया है। यह समुदाय अत्यंत गरीब है। चोरी, डकैती करना, शरब बनाकर बेचना जो इनका रोजाना जीवन का क्रम है। परंतु सुख-दुःख, पर्व, त्यौहार के अवसर पर बस्ति के सब मिलकर संपन्न करते हैं। होली के अवसर पर बस्ति में ढोल, मांदल के अवसार पर गाँव तथा बस्तीवालों के मन थिरक उठते हैं। औरते हँस रही थी। बच्चे नाच रहे थे। मर्दों और औरतों के गोल घेरे में गीत गा रहें हैं.....कज्जा अपनी आदिवासी बोली भाषा में देवता को प्रार्थना करती है कि हम कष्ट में है, और हमारे दुःख को दूर करों.....

"मोरी चंदा चोकर काजर लगा कें आ गई भोर ही भोर,
मोरी चंदा चोकर, छतिया पे तोता, करिह पै मोर,
मोरी चंदा चोकर, चोली में निबुआ घँघरा घुमेर"।[2]

साथ ही उपन्यास में जंगलिया का मृत्यु होती है तब सारे कबूतरियों मिलकर जंगलिया के पास बैठकर सिसक- सिसकर लोकगीत गाती हैं।

"आजो तो जाजो तो पनफूटे मत जातो रे
घोड़ों घोड़ो घूमती, मोर आवती। फुलवादी फेवड़ा
आवतीं, आवतीं हमीर दे, वीर दे.....।"[3]

यह गीत चुनाव और सामाजिक आयोजन के समय गाया जाता है। लोकगीत पात्रों की सामूहिक चेतना, अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता और सामाजिक संघर्ष को व्यक्त करता है। आदिवासी समाज में लोकगीतों की परंपरा काफी पुरानी रही है।आदिवासी समाज में लोकगीत प्रत्येक त्योहार तथा पर्व के अवसर पर अलग-अलग मौखिक रूप में प्रचलित है। इन गीतों के माध्यम से आदिवासी समाज में सामूहिकता, एकता, बधुता के दर्शन होते हैं। हिंदी आदिवासी उपन्यासों में लोकगीत का भी रचनाकारों ने अपने रचना में चित्रित किया है। आदिवासी समाज प्रकृति के गोद में प्राचीनता से निवास करता आया है। दिनभर की थकान दूर करना, सुख-दुःख की समय, पर्व, त्यौहार, शादी-ब्याह, फसल की कटाई आदि अवसर पर आदिवासी समाज लोकगीत का गीत सुनने को मिलते है। राकेश कुमार सिंह द्वारा लिखित 'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में पराजय के वक्त उरांव आदिवासी समुदाय द्वारा लोकगीत का चित्रण मिलता है। रोहतास गढ़ के पतन की पीड़ा उराँव स्त्रियों रोहतास गढ़ की पराजय के प्रतिकार का पर्व सभी उराँव समुदाय प्रतिक पर्व 'जनीशिकार' अब आखेट पर्व.....'जनीशिकार'!

"ओरे छूँ गंगा, पारे छूँ जमुना, धारे-धारे तुरका आवै रेSSS
हाथा में तरवारे, खाँदा में बंदूक, धारे-धारे तुरका आवै रे।
गाछा केरा मैना लिरो झोरा कान्दाय
नदी तीर-तीर घोड़ा दाडय रे .....।"[4]

आदिवासी समाज प्रकृति के नियमन पर चलनेवाला है। जब भी ऋतु परिवर्तित होता है तो तब कोई ना कोई त्योहार, पर्व आता है। आषाढ़ के पहली फुहार के सात बाघामुंडी में मानो नवजीवन खिल उठता है। जब तक आसाढ़िया पूजा नहीं होती तब तक कोई फसल नहीं काटते। इस अवसार पर ढोल, मांदल के धमक से बौराया संथाल बाहा पर्व का वासंती गीत गाती है।

"धरती तांग तिस काबा
दत्ते धरती ओदा तिस ओदा
बादुर देन बादुर
बादुर अतान तेतांग लगाईSSS।"[5]

'हूल पहाड़िया' उपन्यास में गाँव के सारे युवक-युवती रात को युवागृह में इक्कठा होते हैं। उसे घोटुल भी कहते है। यह घोटुल आदिवासी समुदाय का एक शिक्षा या संस्कार का केंद्र माना जाता है। जिसमे में आचार-विचार, नैतिक कुछ शिक्षा भी प्राप्त होते हैं। इस केंद्र में आदिवासी लड़का-लड़की रात भर नाचना-गाना, ढोल-मांदल के ताल पर गीत गाना आदि कार्य संपन्न होते है। उपन्यास में लेखक ने मांदल के थाप के ताल पर युवागृह में अपनी बोली भाषा में प्रस्तुत किया है।

"केरो केमो कूटा हो गुड़िया,
किड़े पीठे नी,
हेसो गति किड़े सात सागाड़,
काना जारेत हेन हुई तान,
केनो कूटा हो गुड़िया,
किड़े पीठे नी....."।[6]

'हूल पहाड़िया' राकेशकुमार सिंह के उपन्यास में 'वाघबुरु' गाँव के 10 दिन के मेले का वर्णन किया गया है। मेले की भीड़ से बहार मांदल की आवाज आ रही थी। जबरा नाच-गान की ओर आकर्षित होता है। युवक-युवतियाँ गोलाकार रूप में नृत्य के साथ गीत गाते नृत्य हो रहा है। बड़ा-सा गोल घेरा बनाए नाच रही थी वनजाएँ। हरेक के बाएँ हाथ में दूसरी लड़की का हाथ था और दायाँ हाथ बगल लड़की की कमर से लिपटा था। पारंपरिक वेश-सज्जा में सजी बालाएँ घेरे में झूमर नाच रही थी। गा रही थी।

"चैतन पूनो की रात में,
मत बजाओं बांसुरी,

ओ बांसुरी वाले, डरता है मन,
कहीं पति-गृह छोड़कर,
जहाँ बज रही,
तेरी चितचोर बासुरी।"[7]

संथाल आदिवासी समुदाय में आषाढ़ के माह में 'जाहेर आयो' (धानदेवता) की पूजा की जाती है। 'जाहेर आयो' का मतलब है संथालों के सर्वेश्वर, सर्वव्यापी और सृष्टिकर्ता अच्छी फसल आये। इनकी पूजा करने से जीवन की आवश्यकताएं पूरी होती है ऐसी मानताएं हैं। इस पूजा के अवसर पर धरती माता को प्रसन्न करने के लिए 'जाहेर आयो' की विधिवत पूजा की जाती है। इस अवसर पर मांदल के धुन के साथ.... गीत का गया जाता है।

"अतांग दा-दिंग.....धातिंग-धातिंग
"धरती कएतम इंग
दात्ते तेतांग लगाई तिंग
धरती अबाबो दा केतान मेना आ
दात्ते धरती ताबो सोना रेSSS"।[8]

'मरंग गोड़ा नीलकंठ' हुआ महुआ मांझी के उपन्यास आदिवासी जीवन की आंतरिक संरचना को उजागर करता है, जहाँ लोकगीत केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ का साक्ष्य हैं। जंगल कटाई, खेती, महुआ बीनने और सामूहिक श्रम के अवसर पर आदिवासी लोकगीत..... यह गीत श्रम की लय, सामूहिकता और प्रकृति के साथ सहजीवन को रेखांकित करते हैं।

"कुल्हाड़ी की ताल में गीत उठे,
पसीने से धरती मुस्काए"।[9]

साथ ही उपन्यास में पारंपरिक अनुष्ठान एवं धार्मिक के अवसर पर लोकगीत बीमारी, अकाल, फसल और ग्राम-कल्याण के लिए सामूहिक प्रार्थनात्मक गीत वर्णित हैं।

"मरंग गोड़ा, आओ गाँव,
दुख हर लो, खेत हरे हो जाएँ"[10]

यह लोकगीत सामूहिक आस्था और संकट-निवारण की लोक-मान्यता के वाहक हैं।

निष्कर्ष :

इक्कीसवीं सदी के हिंदी आदिवासी उपन्यासों में लोकगीत केवल पारंपरिक संगीत या मनोरंजन का साधन नहीं हैं। वे आदिवासी जीवन, सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक पहचान को व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम हैं। जो आदिवासी समाज के जीवन-संघर्ष, सांस्कृतिक पहचान और ऐतिहासिक अनुभवों को सशक्त रूप उजागर हुआ। लोकगीत पात्रों की भावनाओं, संघर्ष और सामाजिक चेतना को व्यक्त करते हैं, उपन्यास की कथानक संरचना और भाषा को समृद्ध बनाते हैं और पाठक को आदिवासी जीवन की वास्तविक अनुभूति प्रदान करते हैं।

संदर्भ सूची :

1. तेजिंदर, काला पादरी, पृष्ट सं 42 साहित्य भंडार, इलाहाबाद
2. मैत्रेयी पूषा, अल्मा कबूतरी, पृष्ट सं 42 राजकाल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. वही पृष्ट सं. 26
4. राकेश कुमार सिंह, जो इतिहास में नहीं है, पृष्ट सं.31 भारतीय ज्ञानपीठ, लोधी रोड, नई दिल्ली
5. वही पृष्ट सं.115
6. राकेश कुमार सिंह, हूल पहाड़िया, पृष्ठ सं.70 सामयिक बुक्स, दरियागंज, नई दिल्ली
7. वही पृष्ट सं.77
8. राकेश कुमार सिंह, जो इतिहास में नहीं है, पृष्ट सं.116, भारतीय ज्ञानपीठ, लोधी रोड, नई दिल्ली
9. महुआ मांजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ,142
10. वही पृष्ट सं. 160

*****

हिंदी साहित्य के गज़ल विधा में चित्रित नारी

नामदेव ज्ञानदेव शितोळे
हिंदी विभाग प्रमुख
सावित्रीबाई कला महाविद्यालय
पिंपळगाव पिसा तहसील- श्रीगोंदा
जिला –अहिल्यानगर महाराष्ट्र
पिन कोड - ४१३७०३
भ्रमणध्वनी- ९४०३३३८५१३
ndshitole76@gmail.com

सभी कलाओं में काव्य कला को सर्वोपरी स्थान दिया जाता है. गज़ल भी काव्य कला का ही एक रूप है. वर्तमान मे गझल विधा का विकास बहुत हो चुका है. पहले गजले राज दरबार एवं कोठियों तक सीमित थी लेकिन आज गज़ल जनसामान्य तक पहुंच गयी है. शताब्दी पहले गजलों का विकास अरबी- फारसी भाषा में हुआ था लेकिन जैसे ही समय बदलता गया गजलों ने अपना क्षेत्र विस्तार करते हुए हिंदी साहित्य मे भी अपना स्थान बना लिया आज गजलों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक समस्या को स्थान मिलने लगा है जिसे गजलें राज दरबार व कोठियों से निकल कर समाज के सामान्य लोगों तक पहुंचकर हिंदी साहित्य की एक सक्षम विधा के रूप में उभरकर आइ है.हिंदी साहित्य के गज़ल विधा में नारी विमर्श पर विस्तार से लिखा है. हिंदी गज़लकारो ने नारी को संघर्षशील बनने का महत्वपूर्ण संदेश दिया है. डॉ गज़लकार अपनी गज़ल के माध्यम से सामाजिक खोखलेपन और पुरुष की स्वार्थी प्रवृत्ती के विरुद्ध आवाज उठाई है.साथ ही नारी मन के प्रत्येक दशा का चित्रण किया है.नारी की संवेदना ,दर्द ,पिडा,पिडाओं को गज़ल के माध्यम से वाणी दी है.

गज़ल को हिंदी मे लाने का प्रयास अनेक विद्वान द्वारा किया गया जिसमें कुछ नाम अग्रलेखित है- अमीर खुसरो, कबीर, श्रीधर पाठक, जानकी वल्लभ शास्त्री, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', भारतेंदु हरिचंद्र, जयशंकर प्रसाद आदी. लेकिन गजलों को सर्वप्रथम प्रतिष्ठित करने का कार्य दुष्यंतकुमार जी ने किया है गजलों के विषय में जानकारी के लिये उसे असली रूप का समझना आवश्यक है. गज़ल का भी अपना एक विशेष रूप होता है. अपनी कोमल और श्रृंगारिकता के कारण गजले सबका मन मोह लेती है. गजलों में मानवी भावनोओं को व्यक्त करने की पूर्ण क्षमता होती है. गजलो मे संक्षिप्तता और गहराई बहुत अधिक है. गझल अरबी भाषा का शब्द है. मोहब्बत के जज बात को व्यक्त करना अरब देश मे पहले गज़ल को कसिता कहते थे कसिता अर्थात किसी की शान में कुछ कहना. गज़ल शब्द के शाब्दिक अर्थ बहुत है. गजले अपने अपने साहित्य की एक धनी विधा हैसामान्यत: सन्मानपूर्वक जीवन जिने का अधिकार समाज में रहनेवाले हर व्यक्ति को होता है. महिला और पुरुष दोनों ही समाज के अभिन्न अंग है,अत: समाज में पुरुषो के समान ही महिलाओको भी समान अधिकार मिलना चाहीये. लेकीन वास्तव में अनेक महिलाओको उनका उचित अधिकार नहीं मिल रहा है. मूलतः प्रेमिल काव्य विधा ग़ज़ल अब वैयक्तिक प्रेम और विरह वेदना का मन बहलाने वाला मृदुल मंद्र सप्तकी गान भर नहीं है। अपितु अपने समय और समाज से रूबरू समकालीन हिंदी ग़ज़ल सामयिक विद्रूप व्यवस्था से उपजी समस्याओं और चुनौतियों का दिल के संग दिमाग को झकझोरने वाला झंझावती तार सप्तकी स्वर है।हिंदी ग़ज़ल अब साम्प्रतिक दौर में राजनीतिक-प्रशासनिक,सामाजिक, आर्थिक क्षेत्र में विद्यमान समस्याओं व चुनौतियों को न केवल स्पष्ट रूप में उजागर करती है। वरन उन समस्याओं के मूल कारकों व कारणों को बेनकाब करते हुए उनके उन्मूलन का क्रांतिकारी संदेश भी देती है।

आजादी के बाद हमारे देश ने आधारभूत संरचना के विकास के साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, विज्ञान, अंतरिक्ष, सामाजिक कल्याण आदि विभिन्न क्षेत्रों में काफी तरक्की की है। लेकिन यथेष्ट उन्नति अभी तक नहीं हुई है तथा आजादी के पचहत्तर वर्षों बाद भी भारतीय लोकतांत्रिक समाज के समक्ष भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता, आतंकवाद, सामाजार्थिक विषमता, गरीबी, बेरोजगारी एवं महँगाई जैसी कई गंभीर समस्याएँ है.

इक्कीसवीं सदी में उदारीकरण व भूमंडलीकरण के कारण भारतीय समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में क्रांतिकारी विचलन आया है। यह परिवर्तन भारतीय समाज में पूँजीवादी, बाजारवादी व उपभोक्तावादी संस्कृति के आगमन व उसके आत्सातीकरण के रूप में आता है, जिसके कारण जीवन मूल्यों को महत्व
देने वाला हमारा समाज येन केन प्रकारेण धन प्राप्ति को ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य मान बैठा है। इसके

दुष्प्रभावस्वरूप मानवीय मूल्यों का ह्रास हुआ है तथा समाज में अपराध वृति की निरन्तर बढ़ोतरी हुई है।
पूँजीवाद व उपभोक्तावाद ने आज व्यक्ति की नजर व नजरिए को दाम (पैसा) और काम (सेक्स) पर ही केंद्रित कर दिया है, जिसकी परिणतिस्वरूप बलात्कार, अपहरण, हत्या, डकैती, लटपाट, हिंसा जैसी आपराधिक घटनाएँ हर नगरगाँव की हर दिन की आम कहानी हो गई है। तमाम कानूनी प्रतिबंधों व कार्रवाइयों के बावजूद लगातार बलवती एवं बेलगाम होती यह अपराध प्रवृत्ति संगठित अपराध का रूप धर उद्योग(व्यवसाय) बनती जा रही है। अपराधियों के संगठित गिरोह(गैंग) बनते जा रहे हैं, जो पुलिस प्रशासन की नाक के नीचे खुलेआम दिनदहाड़े इन आपराधिक प्रवृत्तियों को अंजाम दे रहे हैं। बलात्कार एवं हत्या जैसी आपराधिक घटनाएँ चुनाव मुद्दा बनने लगी है जो इन आपराधिक घटनाओं के प्रसार एवं इनके बेकाबू होने का संकेत हैं। इसके साथ ही अपराधियों ने तकनीक के सहारे अपराधों का डिजीटलाइजेशन भी कर लिया है, और अदृश्य रूप में ही साइबर अपराधों को अंजाम दे रहे हैं, जिनकी गिरफ्त में आज हर स्मार्टफोन यूजर(उपयोगकर्ता) है। यह अपराधवृति आज के दौर की उभरती हुई चुनौती है, जिस पर नियंत्रण किया जाना आवश्यक है। हिंदी ग़ज़लकार समाज में बढ़ती आपराधिक घटनाओं एवं अराजकता के प्रति चिंता व्यक्त करते है

'दिनदहाड़े रैप, हत्याकांड, डाके
आजकल सड़कें ये मंजर देखती हैं'[1]

आजादी के 75 वर्ष बाद भी स्त्रियों व दलितों के प्रति समानता की मानसिकता का विकास नहीं होपाया है। अशिक्षित व दूरदराज इलाकों की बहुसंख्यक महिलाएं आज भी परंपरागत स्त्रियों की भांति शोषित व उपेक्षित जीवन जी रही हैं। यद्यपि पढ़ी लिखी स्त्रियों ने आज घर की दीवारों से बाहर निकल नौकरियों व राजनीति में भी कदम बढाए हैं, लेकिन इसके बावजूद उनकी स्थिति स्वतंत्र निर्णय की न होकर पुरुषों की अधीनता की ही है। पुरुषों का स्त्री के प्रति भोगवादी व वासनात्मक दृष्टिकोण आज भी बरकरार है। इसी तरह दलितों की स्थिति में भी काफी सुधार हुआ है, फिर भी आज भी दूर दराज के इलाकों में उनके प्रति अस्पृश्यता व असमानता की मानसिकता बरकरार है। औद्योगीकरण व अन्य कारणों से अपने परंपरागत प्राकृतिक संसाधन जल- जंगल, जमीन से बेदखल आदिवासी समुदाय का विस्थापन भी एक बड़ी समस्या है।

ताजा आंकडों के अनुसार भारत में 10 मिलियन से अधिक बाल श्रमिक है। उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण उपजे स्वार्थी दृष्टिकोण ने वृद्धों के जीवन को असहाय व दर्दनाक बना दिया है। जिनकी पुष्टि बढ़ते वृद्धाश्रमों से होती हैं। इन वंचित समुदायों- स्त्री, दलित, बाल, वृद्ध की समस्याएं भी वर्तमान भारतीय समाज के समक्ष एक चुनौती है। हिंदी ग़ज़लकार इन वर्गों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए लिखते हैं-

' हिंदुस्तानी औरत यानी
घर भर की ख़ातिर कुर्बानी
गृहलक्ष्मी पद की व्याख्या है
चौका- चूल्हा-रोटी -पानी।'[2]

नारी को जन्म के बाद तो हर पल अनेक परेशानियो का सामना करना पडता है.जन्म लेने से पहले ही उस पर अत्याचार शुरू हो जाता है. बेटी के जन्म पर सन्मान नहीं होना एवं शादी के खर्च की जिम्मेदारी की समस्या के कारण उसे कोख में मार देते है या किसी कुडेदान में फेंक देना यह सामाजिक मानसिकता हमे कहा ले जाती है? मुन्नवर राना ऐसी सामाजिक विषमता पर प्रहार करते हुए लिखते है-

'फिर किसी ने लक्ष्मि देवी को ठोकर मार दी
आज कुडेदान में फिर एक बच्ची मिल गई'[3]

आजकल नैतिकता नाम की कोई बात नाहीं है. लोग अतिमहत्वकांक्षी हो गए है. हिंदी गज़ल साहित्य में पुरुष के चारीत्रिक पतन को उजागर किया गया है. जहीर कुरेशी समस्त महिलाओंका की विवशता का चित्रण करते हुए लिखते है-

'महत्वकांक्षी पति के इशारे पर
गई थी कल भी वो साहब के बिस्तर पर'[4]

नारी की समस्याएँ कभी भी खत्म न होने वाला सिलसिला है. उसे आजीवन समस्या का सामना करना पडता है. भारतीय नारी विवाह के पश्चात भी शोषण से मुक्त नहीं हो पाती अपितु कही बार तो वह शोषण का शिकार होते होते अपनी जिंदगी ही खतम कर देती है,या उसकी हत्या कर दी जाती है. ससुराल वाले उसे प्रताडीत एवं अपमानित करते है. हिंदी गज़लकार बल्ली

सिंह 'चिमा' पराधीन एवं दर्द से पीडित भारतीय स्त्री को जगाने का प्रयास करते है. रूढीवादी समाज मे पति से प्रताडीत होने के बाद पति को परमेश्वर मानने वाले स्त्री को जागृत करणे का वह प्रयास करते है-

'गुम सुम ,गुम सुम मुरझायी सी
क्यों रहती हो तुम मर्द की गाली,जूते बोलो
क्यो सहती हो तुम
मर्द तुम्हारा घोर शराबी और जुआरी है|
उसको अपना परमेश्वर
फिर क्यो कहती हो तुम|'[5]

महिलाओं के कंधे पर अपने घर- परिवार की अनेक जिम्मेदारीयाँ होती है. कुछ महिलाओं के लिए ससुराल जिसे उसका अपना घर कहा जाता है, वह चुनौतियाँ भरा होता है ऐसे में जब कभी भी वह उदास या मायूस होती है तो उन्हे अपने मैके की याद आती है.तब वह यह विचार करती है-

'अनपड धनिया की पाजेबे आज भी हसती- रोती है,
मिट्टी वाले घर से अब भी बाकी कुछ तो रिश्ता है.'[6]

रचनाकार चाहे जो को भी कोई भी हो अपने आसपास के घटनाक्रम पर अपनी पैनी निगाहे रखता है. तेजपाल सिंह 'तेज' भी ऐसे ही एक सजक रचनाकार है जिन्होने महाभारत के द्रोपदी स्वयंवर का उदाहरण लेकर क आज समाज में घटित घटनाओऔ पर तीखा व्यौग किया है. आज हम ऐसे घटनाकों देखकर विचलीत नहीं होते है. लोक इतने संवेदनाहीन हो गये है कि कुछ लोग तो पीडित की मदत करने की बजाए है उस घटना का व्हिडिओ बनाने मे ही अपनी धन्यता मानते है. समाज की इस संवेदनाहिनताको रेखांकित करते हुए तेजपाल सिंह लिखते है-

'लाज धनिया की महफिल में लुटती रही,
लोग बैठे रहे गाफिलों की तरह.
कि गरिबी सडक पे खडी रह गई,
लोक छटते रहे बादलों की तरह.'[7]

समुचे हिंदी साहित्य मे विविध विधाओं मे से गज़ल विधा के अंतर्गत जितना भी साहित्य लाखा गया उसमें जीवन का कोई भी पहलू अच्युत नहीं छोडा है. हिंदी गज़लकारोने नृत्यांगनाओं एवं वेश्याओं के दुःख, पीडा, संताप को भी गज़ल के माध्यम से सशक्त रुप में व्यक्त किया है. भूक, गरिबी, बेरोजगारी, अर्थाभाव मजबुरी के कारण आज अनेक महिलाएँ नृत्यांगना या वेश्या बनने को मजबूर है. विषम परिस्थितीयो ने उसे घृणित काम मे डखेल दिया है. गज़लकार जहीर कुरेशी ऐसी स्त्रीयों के जीवन संघर्ष के बारे मे लिखते है-

'धीरे -धीरे व कुशल नृत्यांगना बन गई|
वक्त ने उस औरत को नचाया है बहुत|'[8]

नारी उत्पीडन पर अनेक से गज़ल कारोंने अपनी लेखनी बहुत बेखुबी हे चलाई है. आधुनिक पिढी के युवा गझलकार डॉ.उर्मिलेश भी इससे परे कैसे रह सकते हैं. स्त्री के संपूर्ण जीवन को कुछ शब्द मे पिरोया है .स्त्री के दर्द, पीडा, घुटन, संत्रास भरे जीवन को व्यक्त करती हुई उनकी गझल हमे दिखाई देती है -

मजबुरियोंका का जाल है औरत की जिंदगी|
कितना बडा सवाल है औरत की जिंदगी|
एक जुल्म,बलात्कार तो चॅटिंग की तरह है|
सहलाया हुआ गाल है औरत की जिंदगी|
जो चाहे जिसके सामने इसको परोस दे|
सुविधा से भरा थाल है औरत की जिंदगी|
चुनर की जगह इसको कफन तो न दीजिए|
पैसे ही तंग हाल है औरत की जिंदगी|'[9]

संपूर्ण हिंदी साहित्य स्त्री को संघर्षशील बनाने का संदेश देता है. हिंदी के गज़लकारोंने भी यहीं काम अपने गजलो के माध्यम से किया है. अपनी गजलो में सामाजिक खोखलेपन और पुरुष की स्वार्थ परतता के विरुद्ध आवाज उठाई है. गज़लकारोऔने नारी मन की प्रत्येक दशका सूक्ष्मता से चित्रण करने का सक्षम प्रयास किया है. समसामायिक हिंदी गज़ल में नारी की संवेदना, दर्द, पिडाओं को सशक्त अभिव्यक्ती देने का यथार्थ प्रयास गज़लकारोंने किया है. कन्या भ्रूण हत्या, बालविवाह, बेमेल विवाह, शारीरिक शोषण, बलात्कार मान-मर्दन,दहेज प्रथा, तरुण विधवा, देवदासी, वेश्या, गुलाम परिवार मे शोषित की भूमिका पाव की जुती के समान समझने की भावना आदि विषयों के वर्णन के साथ साथ उस पर होने वाले अत्याचार व शोषण का वास्तववादी चित्रण किया है. वर्तमान युग मे नारी सशक्तिकरण की भावना के साथ साथ उनको समान अवसर अधिकार देने की आवश्यकता है. साथ ही सभी प्रकार की भेदभाव पूर्ण व्यवस्था को समाप्त करने की भी उतनीही आवश्यकता महसूस होती है. औरत इसी माध्यम से लैंगिक समानता एवं आर्थिक तरक्की को प्राप्त कर सकती है. हिंदी गज़लकारोंने नारी के शोषण और दमन का चित्रण कर समाज को नारी के प्रति संवेदनशील होने का महत्वपूर्ण संदेश दिया है. यही इस विधा की महत्वपूर्ण उपलब्धी है.

संदर्भ –

1) ज़हीर कुरेशी, एक टुकड़ा धूप, विद्या प्रकाशन कानपुर, द्वितीय संस्करण 2016, पृ. 24
2) शिव ओम अंबर, विष पीना विस्मय मत करना, पांचाल प्रकाशन, फर्रुखाबाद, 2018, पृ. 7
3) मुनव्वर राना , वाणी प्रकाशन , दरियागंज , नई दिल्ली, संस्करण -2002 , पृ. -90
4) डॉ.सरदार मुजावर, हिंदी गज़ल की भाषिक संरचना, वाणी प्रकाशन, दरियागंज,नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010 पृ. 47
5) बल्ली सिंह 'चिमा', हादसा क्या चीज है,समय साक्ष्य प्रकाशन,फालतू लाईन,देहरादून, द्वितीय संस्करण.-2017,पृ. 13
6) तेजपाल सिंह ‘तेज’ ट्रॅफिक जाम है, शेष साहित्य प्रकाशन, शहादरा दिल्ली, प्रथम संस्करण.2012, पृ. 41
7) तेजपाल सिंह ‘तेज’ ट्रॅफिक जाम है, शेष साहित्य प्रकाशन, शहादरा दिल्ली, प्रथम संस्करण.2012, पृ. 44
8) डॉ.सरदार मुजावर, हिंदी गज़ल की भाषिक संरचना, वाणी प्रकाशन, दरियागंज,नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010 पृ. 41
9) डॉ. रोहिदास अस्थाना, हिंदी गझल: उद्भव और विकास, सुनील साहित्य सदन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण- 2017, पृ. 340

*****

हिंदी ग़ज़ल में सामाजिक परिदृश्य

प्रा. डॉ. प्रकाश महादेव निकम
फोन नं 9970721377
ईमेल: prkashnikam0979@gmail.com

शोधसार :

आधुनिक हिंदी ग़ज़ल की बढ़ती परंपरा पूर्ण गजल लेखन से पूर्णता अलग है। इसमें यथार्थ के तत्व है। सामान्य जनता की समस्याओं को सामने रखकर हिंदी गजल ने अपना तेवर बदल दिया है। साहित्य के अन्य विधाओं जैसा गजल ने भी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा अन्य विद्रूपताओं को उजागर किया है। गजलकार हर विषय को लेकर परिवर्तन की आशा के साथ अपनी अभिव्यक्ति आवाज को सशक्त बना रहे हैं। यही उनकी गजल लेखन की सृजनशीलता है। यही आधुनिक गजलकारों का विचार तथा भाव बहुत ही स्तुत्य, विलोभनिय और सत्यप्रिय है।

बीज – शब्द :

काव्य, अंतरात्मा, अभिव्यक्ति, माध्यम, गजल, पैठना, विषय, विषयी, गजलकार, शबनम, चिंगारियाँ, चरागा, शोरीदा सर, खूगरे तूफॉ, शिराजे आदि।

शोध पद्धति :

विश्लेषणात्मक पद्धति, विवेचनात्मक पद्धति, ऐतिहासिक पद्धति।

प्रस्तावना :

काव्य एक अभिव्यक्ति का साधन है। जिसमें कवि अपने अंतरात्मा में प्रवेश करता है। अपने अनुभव और भावनाओं से प्रेरित होता हैं । अपने प्रतिपाद्य विषय को ढूंढ निकालता है। दूसरी बात यह कि वह अपनी अंतरात्मा से बाहर जाकर सांसारिक कृत्यों और रागों में पैठता हैं। वहां भी कुछ ढूंड निकलता है। अपनी अभिव्यक्ति का वह साधन बनता है। वह अभिव्यक्ति विषय और विषयी प्रदान होती है। यही अभिव्यक्ति ग़ज़ल के माध्यम से होती है। काव्य का ग़ज़ल एक प्रकार है जो इसी अभिव्यक्ति का माध्यम है।

ग़ज़ल-साहित्य रूप :

गजल का प्रथम स्वरूप प्रेम भावनाओं का चित्रण बना है। सांसारिक प्रेम के अलावा भक्ति का रसपूर्ण वर्णन, देशप्रेम, पारिवारिक प्रेम गज़ल का विषय बना है। आधुनिक युग में गजल को मनोरंजन के कटघड़े से निकालकर जीवन के हर पहलू को छूकर गजल को सामान्य व्यक्ति के पीड़ा के साथ समाज जीवन के हर एक कोने को झाकने का प्रयास गज़लकार गजल द्वारा करता है।

अनुभूति की अभिव्यक्ति ही साहित्य है। इसीलिए शुल्क जी साहित्य की परिभाषा करते कहते हैं कि, "कविता वह है जो मानव हृदय को उसकी संकुचित परिधि से ऊपर उठाकर उसे लोकमान्य भावभूमि पर ले जाती है। जहाँ जगत के ना–ना रूपों और व्यापारों के साथ उसके हृदय के प्रकृत संबंध का सौंदर्य दिखाई देता है।"[1] गजल आज मानवी हृदयभाव को उसकी परिधि से ऊपर उठाकर लोकमान्य भाव भूमि के हर स्तर पर ले जाकर जगत के हर एक व्यापार के साथ हृदय के प्रकृत संबंध और सौंदर्य को दिखाने का काम कर रही है। इसी बात को प्रोत्साहित रूप से गज़लकार दिनेश ठाकुर कहते हैं,

"सारे नाम हमारे लिख लो,
शबनम श्याम शरारे लिख लो।
अपने शेर है मिट्टी पानी,
चॉद, चरांगों, तारे लिख लो ।
गम की धुन ही सच्ची धुन है,
गजल कहो या नारे लिख लो।
शोरीदा सर है परवाने,
इनको रब के प्यारे लिख लो।
खुगरे तूफॉ है जी, हम पर,
शोर हवा के सारे लिख लो।

शिराजे दिल के फिर बिखरे
क्या जीत क्या हारे लिख लो।"[2]

इस ग़ज़ल द्वारा दिनेश कहते हैं कि, गज़लकार अपने अस्तित्व की प्रार्थना करता है। उसके गजल में प्रतीकात्मकता, कोमलता है जिसमें समर्पण की भावना होती है। जैसे ईश्वर के प्रति भक्त की होती है। और गज़लकार अपनी लेखनी से ईश्वर की सेवा करता है। उसके शेर नैसर्गिक मिट्टी से जुड़े हैं। उसमें मिट्टी,पानी, चाँद,तारों के तत्वों का मूल है। प्रेम, स्वप्न, सौंदर्य, रोशनी का समावेश है। मार्गदर्शन,ज्ञान और उजाला फैलाने की ताकत हैं। पीड़ा जीवन का वास्तविक सच है वह जीवन के सृजन और गहराई को जन्म देता हैं। जो खुशियों से अधिक प्रभावशाली है। गज़लकार दीवाने,परवाने होते हैं, सत्य के प्रेम में पागल है, दिखने में साधारण लेकिन वास्तव में ईश्वर के प्रिय होते हैं। जीवन में कितने भी तूफान आने के बाद गज़लकार अपनी परिस्थिति पर अडीम रहकर भावना को दर्शाता है। दिल बिखरने के बाद भी हार जीत को लिखते रहता है। वही सच्चा गज़लकार हैं। इसमें दिनेश ठाकुर, मनोज सोनकर, जहीर कुरैशी, दुष्यंत कुमार प्रभावी रूप से हमारे सामने आते हैं।

शोधा लेख :

आधुनिक हिंदी साहित्य में लोकप्रियता और उपयोगिता के कारण नई गजल कारों की ग़ज़ल रचना का उदय बड़ी तेज गति से हुआ हैं। गजल एक ऐसी साहित्यिक काव्योंचित विधा है, जो अपनी जिम्मेदारी की परिपूर्णता की तरफ आगे बढ़ रही है। गजल का यह विकास अमीर खुसरो, कबीर, बिहारी से आधुनिक युग तक हजारों गजलकारो को पीछे छोड़कर दुष्यंत कुमार तक आकर खड़ा हुआ है। वर्तमान में तो जाहिर कुरैशी, दिनेश ठाकुर, मनोज सोनकर जैसे गजलकारों ने नए भावबोध से गजल को नया रूप प्रदान किया। इससे गजल के विविध पहलू और विषय पाठकों को ज्ञान रूप में समझ में आए हैं।

1) सत्य :

समाज जीवन में सत्य की दशा बहूत ही भयानक है सत्य की सिर्फ कहानी बन गया है।

"सत्य ही जब कहानी लगे,
तब तो गंगा ही ज्ञानी लगे।
आज के लोक–व्यवहार में,
कुछ अधिक सावधानी लगे।
काले पैसों को दिल खोलकर,
देने वाला ही दानी लगे।"[3]

प्रस्तुत ग़ज़ल का शेर रदीफ रूप में है, जिसमें जहीर कुरैशी कहते हैं कि आज सत्य समाज में मनगढ़ंत किस्सा बन गया है। उसमें कल्पनिकता निर्माण हुई है। सत्य पर बोलने वाला उपहास पात्र बन जाता है। समझदार वही समझा जा रहा है जो इस पर चुप्पी साधता है। लेकिन यह निराशाजनक है। इसलिए समाज जीवन में हर समय विचार करके आगे कदम रखना आवश्यक है। सत्य विचार से किसी पर भरोसा करना कठिन है।

मनोज सोनकर अपनी ग़ज़ल में कहते हैं कि,

"साजिश के इस दौर में, सत्य बड़ा मजबूर
नेक-नाम रोते खड़े, छान रहे हैं घूर।"[4]

प्रस्तुत शेर से वह समाज में यह सामने रखना चाहते हैं कि सत्य की पीड़ा क्या है। सत्य साजिशो के घेरे में फंसा हुआ है। आज के इस युग में ईमानदारी और नैतिकता का पतन हो रहा है। साजिशें करने वाले खुश हैं। ईमानदार लोग सत्य विचार की वजह से दूर्दशा झेल रहे हैं। वह अपने ईमानदारी को बचाने के लिए बेहाल है। यहां गजलकार सत्य के प्रति भाव सामने रखते हैं।

2) नैतिकता का पतन :

आज के युग में सत्य और न्याय दमनकारी शक्तियों के नियंत्रण में है। जहां सच्चे इंसान की आशा लुप्त हो गई है। जनमानस पर भारी संकट निर्माण होकर यहां अंधकारमय, तानाशाही का राज बना है। इसलिए मनोज सोनकर गजल के जरिए कहते हैं कि,

"सूरज कैंदी हो गया, गया कहीं वह दूर,
छाती पर पत्थर गिरे, खतम न होवे रात।"[5]

आगे वह यह कहते हैं कि सामाजिक, नैतिकता का पतन हो रहा है इसी कारण वह लिखते हैं,

"नंगे तो 'हीरो' हुए घेर धरे अखबार
थके बदन जो चल रहे, उनकी ना औकात।"[6]

सही रूप में जो आज वैचारिक रूप से हीरो है वह अखबार के घेरे में फंस चुके हैं। और जो सादगी और प्रमाणिकता का ढोंग करते हैं उनकी कोई औकात नहीं होती फिर भी वह अपनी मिजासी पर खुद को काबिल समझते हैं। यही पीड़ा प्रस्तुत विचार से सामने आती है। इससे समाज के नैतिकता का आपना विचार दिखाने का काम गजलकार करता है।

3) स्वार्थ :

कुछ लोग अपने स्वार्थ के लिए मन में कुटिलता रूप हथियार लेकर समाज में घूमने वाले सभी को झूठी मुस्कान के साथ मिलकर, अपना स्वार्थ साधते हैं। जो यश के हकदार होते हैं उनका हक उन्हें नहीं मिलता। गुणी लोगों का हक कौवे जैसे लोग हथियाते हैं, ऐसी स्थिति पर मनोज सोनकर यह ग़ज़ल का शेर लिखते हैं,-

"कपट कटारी धार कर, निकालूं में बाजार,
इनसे,उनसे हँस मिलू, स्वार्थ साधता यार।
यश तो मुझको ना मिला, गया गैर की ओर,
कौवे तो राजा हुए, हंसो का हक मार।"[7]

4) ढोंगी समाज :

आज के समाज में व्यक्ति सफलता की बावजूद भी व्यक्ति अंदर से टूट जाता है। उसको जो जीत मिलती है वह संघर्ष की वजह से इसका कोई लाभ भी उसको नहीं होता, उसका फायदा दूसरों को ही होता है। इसका मानसिक दुख झेलना पड़ता है। इसलिए गजलकार कहता है, -

"जीत बहुत भाती रही, हाथ लगी न यार!
दूजो के ही संग गई, गई करेजा फार।
शान सहन मुश्किल बड़ा रहें बड़ा झकझोर
ढोंगी बैठे मंच पर भरा करें हुंकार।"[8]

आज के इस जमाने में बेईमानी को सहन करना कठिन है। समाज को ऐसी स्थिति नें हिला डाला है। कामयाबी के मंच पर बैठे लोग पाखंड और बेईमानी से हासिल कर रहे हैं। घमंड, झूठे दावे का ऊंची आवाज में हुंकार भर रहे हैं।

5) धार्मिकता :

आज समाज में धार्मिक व्यावसायिकता बढ़ती गई है इसी आधार पर ग़ज़लकार कर लिखते हैं।

"दान धरम धंधा हुआ, धंधा भी पुरुजोर,
कई आखाड़े दीखते, दीखे, भरी बजार।"[9]

धार्मिक बाजारीकरण में भावनाओं को बेचकर पैसा कमाया जा रहा है। निस्वार्थ भाव से ईश्वर की सेवा नहीं की जाती। तीर्थ स्थलों पर धर्म के नाम पर स्वार्थी लोग आज भी पैसा कमाने के लिए सक्रिय है। यह स्थिति गजल से सामने दिखाई पड़ती है।

6) विधवा की अवस्था :

आज गजल सिर्फ प्रेम मिलाप के वर्णन से बाहर आकर किसी की जीवन अवस्था का भी वर्णन कर रही है। आज समाज में स्त्री जब भरी जवानी में विधवा बनती है तो इसका वर्णन गजल द्वारा गजलकार इस तरह करता है, -

"रात गए इक मुफलीस बेवा पागल सी हो जाती है।
रोकर बच्चा सो जाता है, वो तब लोरी गाती है।
उसकी खातिर सुबह, दुपहरी, शाम का कोई रंग नहीं
उसकी आंखों के आगे बस एक नदी लहराती है।
कल तक तो वह इन गलियों में हसती-गाती फिरती थी
अब जाने अपने ही घर में कितने चक्कर खाती है।
बिखर गए सुंदर सपनों के सारे मौसम ऑखों से
रोज वरक माजी के छुकर कुछ एहसास जलती है।"[10]

किसी विधवा का दर्द गजल द्वारा सामने रखना गजल की यह नई विचारधारा है। स्त्री विधवा जब होती है तो वह पागल होती है। प्यार टूट जाता है। उसकी आंखों के सामने लंबे जीवन प्रवास का संघर्ष पूर्ण दिखता है। वह घर में घुटन सी महसूस करती है। उसके सारे सपने टूट जाते हैं। वह जीवन के हर अतीत के पृष्ठ को याद करके जीवन को जीने की आशा करती है। समाज में यही स्थिति आज दिखाई देती है। इसी प्रेम विलाप भाव को ग़ज़ल सामने रखती है।

7) भाषा का भाव :

आज समाज में मधुरता और तीखेपन की भाषा में अंतर है इसकी अभिव्यक्ति जहीर कुरैशी अपनी ग़ज़ल द्वारा देते हैं,

"मैंने चाहा बात करें वह फुलवारी की भाषा में,
वह बातें करती है लेकिन चिंगारी की भाषा में।"[11]

आज समाज में बोलने का अलग-अलग तरीका है जो सच्चे दोस्त होते हैं वह लड़ते हैं लेकिन उनकी भाषा की अभिव्यक्ति में अलग सा प्रेम होता है। जो स्वाभिमान बेच चुके हैं वह खुद्दारी की भाषा नहीं कर सकते, जो सच को देखते नहीं वह तो गांधारी जैसी अनदेखी ही बातें करेंगे। इस तरह बात करने के तरीके के अनुसार गलत विचारधाराओं को सामने रखा है।

जैसे

"यह कहना भी सत्य नहीं, दो सच्चे दोस्त नहीं लड़ते,
हमें भी लड़ते-भिडते रहते हैं यारी की भाषा में।
दरबारी लोगों ने अपने स्वाभिमान को बेच दिया,
वे क्या बात करेंगे तन कर खुद्दारी की भाषा में।
आंखों पर पट्टी बांधे जो सच को देखा करते हैं,
वे उत्तर देते हैं अवसर गांधारी की भाषा में।"[12]

आगे वह यह कहते हैं कि विनम्रता पूर्ण भरी भाषा में प्रशंसा का भाव उभरता है। आंखों में आभारी नम्रता का भाव भी दिखाई पड़ता है।

"एक विनय के साथ प्रशंसा का अभी भाव उभरता है,
शब्दों से लेकर आंखों तक आभारी की भाषा में,
लोग सामने से आकर अब खुलकर वार नहीं करते,
चुपके चुपके कांटा करते हैं आरी की भाषा मे"[13]

आज समाज में भाषा के जरिए जो चुपके से वार किए जाते हैं वह प्रवृत्ति अधिक घातक है। इस पर गजलकार अभिव्यक्ति व्यक्त करता है।

8) रिश्ते :

आज शहरी जीवन के कारण लोगों में भावना शून्यता आ गई है। आज वह पत्थर जैसे बन गए हैं। वह अपने झूठे मुखौटे पहनकर सांप की जगह खुद को शंकर साबित करने में मशगूल है। जब जिंदगी में तूफान आते हैं तब अपना कहने के लिए कोई नहीं रहता इसलिए ग़ज़लकार कहते हैं,

"अबे किसे अपना कहे किस द्वार पर आवाज दे।
दोस्त,रिश्ते, फूल सब कांटों के बिस्तर हो गए"।[14]

इसमें ग़ज़लकार यही अभिव्यक्ति व्यक्त करता है कि नाते रिश्ते फुल की तरह थे लेकिन शहर में जाकर जब बेघर हुए तब वही रिश्ते खत्म होकर काटें बन गए हैं। समाज की यथार्थ वास्तविकता यहां दिखाई पड़ती है।

9) प्रेम की विरह वेदना:

दुष्यंत कुमार की गजलों में प्रियसी के प्रेम भाव की प्रस्तुति हुई है। जिस तरह कोई जंगल में जाकर अपना रास्ता भूल जाता है। उसी तरह प्रियसी के अदा पर प्रेमी सहजता से घायल हो जाता है। उसके प्रेम में सब भूल कर उसमें डूब जाता है।

"किसी को क्या पता था इस अदा पर मर मिटेंगे हम,
किसी का हाथ उठा और अलको तक चला आया ।
एक जंगल है तेरी आंखों में,
मैं जहां राह भूल जाता हूं।"[15]

प्रेम भाव का सौंदर्य और आत्मीयभाव तथा विरह के चित्र एक भावुक प्रेमी की अनुभूति है। इसमें कहीं भी मांसलता दिखाई नहीं देती।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध कार्य में यही स्पष्ट किया है की गजल एक काव्य का रूप है जो अभिव्यक्ति का साधन है। गजल आज हमारे भाव को संकुचित परिधि से उठाकर लोकमान्य भावभूमि पर ले जाती है। ग़ज़लकार ग़ज़ल के जरिए वास्तवता को दिखाकर सामाजिक हर स्तर के हार-जीत को लिखता है। आज के हिंदी गजल साहित्य में मिसरा, शेर, काफीया, रफीद, मतला और मक्ता के माध्यम से दिनेश ठाकुर, जहीर कुरैशी, मनोज सोनकर, दुष्यंत कुमार आदि ने समाज के हर एक पहलू को छूकर उसे सामने रखा हैं। समाज में सत्य की दशा, साजिशें, नैतिकता का पतन, स्वार्थ, ढोंगी समाज, धार्मिकता विधवा की अवस्था, भाषा की चुभन और मधुरता, दोस्ती, रिश्ते नाते, प्रेम आदि विविध विषयों की स्थिति को सामने रखा है। निष्कर्ष का रूप ग़ज़ल बताती हैं -

"बंदीशे हो तो गजल होती है,
सुरो में ढालो तो गजल होती है।
जब टूटता है दिल का कोना-कोना,
हर एक टुकड़े में गजल होती है।" (जूतों का हार)

समाज के हर स्थिति को देखने के बाद जब दिल टूटता है, और उसके प्रति जज्बात, अनुशासन, गहरे दिल की अभिव्यक्ति गजलकार पाठकों के सामने रखने का काम करता है। हर एक ग़ज़लकार की ग़ज़ल समाज में व्यक्ति को सोचने के लिए विवश करती है यही गौरवास्पद है।

संदर्भ ग्रंथ

1. रामशरण दास गुप्ता एवं रामकुमार वर्मा, 'साहित्यशास्त्र', कॉलेज बुक डेपो जयपुर-2, पृ. क्र 11,12
2. दिनेश ठाकुर, 'हम लोग भले हैं कागज पर' (गजल संग्रह),प्रथम संस्करण, सन 2000, रचना प्रकाशन जयपुर, पृ.क्र 13
3. संपादक–डॉ मधु खराटे, 'जहीर कुरैशी की चुनिंदा गजलें', संस्करण 2009, विद्या प्रकाशन कानपुर, पृ. क्र 74
4. मनोज सोनकर, 'गजल-गंग', प्रथम संस्करण 2008, मनीषा प्रकाशन दिल्ली, पृ.क्र 36
5. वहीं पृ. क्र 18
6. वहीं पृ. क्र 18
7. वहीं पृ. क्र 108
8. वहीं पृ क्र 104
9. वहीं पृ क्र 104
10. दिनेश ठाकुर, 'हम लोग भले हैं कागज पर' (गजल संग्रह),प्रथम संस्करण, सन 2000, रचना प्रकाशन जयपुर, पृ.क्र 38
11. संपादक–डॉ मधु खराटे, 'जहीर कुरैशी की चुनिंदा गजलें', संस्करण 2009, विद्या प्रकाशन कानपुर, पृ. क्र 77
12. वहीं पृ क्र 77
13. वहीं पृ क्र 77
14. वहीं पृ क्र 83
15. डॉ. किशोर, 'रचनाकार दुष्यंत कुमार', प्रथम संस्करण 2007, विनय प्रकाशन कानपुर, पृ. क्र 138

*****

हिंदी गीत और गजल में प्रगतिशील चेतना

प्रा डॉ. संजय नारायण पाटील
हिंदी विभागाध्यक्ष
र भा माडखोलकर कॉलेज, चंदगड़
Mob – 9421112994
Email – snpatil25@gmail.com

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में गीत और गजल के माध्यम से आधुनिक युग में नये परिवर्तन आ गये हैं । यह परिवर्तन प्रगतिशील चेतना को ध्यान में रखकर किये जा रहे हैं । समकालीन साहित्यकार, गीतकार, गजलकारों का इसमें विशेष योगदान रहा है । प्रगतिशीलता से तात्पर्य है सामाजिक यथार्थ, शोषण के खिलाफ आवाज, सांप्रदायिकता का विरोध और मानवीय मूल्यों की स्थापना, शोषितों की व्यथा, युद्ध की विभिषिका और जनता में आशा का संचार करने का कार्य इससे हुआ है। इस कारण यह विधा मनोरंजन के साथ-साथ समाज में बदलाव लाने का सशक्त माध्यम बन गई है । इसमें खासकर फिल्मी गीत और गजल का योगदान विशेष रहा है । गीतकार और गजलकार वर्तमान समय में भारी मात्रा में लेखन कार्य करते जा रहे हैं। समाज प्रबोधन और परिवर्तन इस विधा के लेखन कार्य के केंद्र में रहा है।

आज हिंदी साहित्य में गजल विधा एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और लोकप्रिय विधा के रूप में प्रतिष्ठित है। जिसको सर्वप्रथम दुष्यंत कुमार ने उसके पूर्व प्रचलित रुमानी श्रृंगारिक रूप से दूर कर सामान्य व्यक्ति के यथार्थ जीवन से जोडकर प्रस्तुत किया है। गजल को काव्यरूप में प्रतिष्ठित करनेवाले प्रगतिशील कवियों में दुष्यंतकुमार त्यागी का नाम शीर्षस्थ है। उन्होने गजल के अलावा हिंदी साहित्य की विविध विधा में बहुमूल्य योगदान दिया है। 'साये में धूप' उनका सर्वश्रेष्ठ गजल संग्रह है ।

गजल हृदय के अंतस्थल से उत्पन्न ऐसी अभिव्यक्ती है जो गजलगायक के रुदय से निकल सीधे पाठकों के हृदय में प्रविष्ट होकर उनको गजल के जीवन आधारित गहन विचार और उस पर बार-बार सोचने तथा गजल में स्वयं और स्वयं के जीवन की सच्चाई को तलाशने हेतू बाद्य कर देती है। गजल गायक अपने जीवन के किसी व्यक्तिगत पहलू को ही प्रायः अपनी गजल की आधारशीला बनाकर उसको स्वर देता है।

दुष्यंतकुमार की गजले काव्यात्मक अभिव्यक्ती की तलाश करती हुई सामाजिक यथार्थ को सामने लाती है। इनमें सरलता, स्वाभाविकता और सजीवता के दर्शन होते हैं। जटिल न होने से समझने में आसान लगती है। व्याकुलता और निराशावाद से पूर्णतः स्वतंत्र रही है। इनकी 'साये में धूप', आवाज के घेरे, सूर्य का स्वागत, जलते हुए वन के वसंत आदी गजलों ने पाठको में नया विश्वास पैदा किया है। दुष्यंतजी ने गजल केवल लिखा नहीं तो स्वयं जिया भी है।

प्रारंभिक दौर में गजलो में अनेक व्याकरण संबंधी दोष थे। दुष्यंत कुमार तक न ही हिंदी भाषिक गजल से पुरी तरह जुड पाये थे, न उन्हे गजल की पूरी जानकारी थी। वर्तमान में भी हिंदी गजलकारों को गजल की विधागत जानकारी संतोजनक मात्रा में नही है, फिर भी कोई गजलकार ऐसे हैं जिन्होने गजल को बडी हदतक समझा है और वे अच्छी गजले लिख रहे हैं। पर इनका प्रेरणास्रोत दुष्यंत जैसे चंद लब्धप्रतिष्ठित गजलकार ही रहे हैं।

जनवादी कविता को प्रगतिवादी कविता के अगले चरण के रूप में देखा जाता है। इस दौर में देश में नक्षलवाद का उभार हुआ, पश्चिम बंगाल में वामपंथी सरकार बनी, जेपी का समाजवादी आंदोलन हुआ और इसी बीच देश ने आपातकाल भी झेला। यह दौर देश के सामाजिक, राजनीति परिवेश में संक्रमणकाल था, इस दौर के काविियो ने अपने प्रगतिशील क्रांतिकारी विचारों के साथ संसदीय लोकतंत्र पर निशाना साधा। व्यक्तिगत स्वतंत्रता को महत्व दिया और वंचितों के पक्ष में लिखते हुए सामाजिक परिवर्तन के लिए मानसिक रूप से तैयार किया। नागार्जुन, धूमिल, मंगलेश डबराल, रघुवीर सहाय, गोपालदास 'नीरज', कुंअर बेचैन, चंद्रसेन विराट, मंगेश पाडगावकर आदि प्रमुख कवि है; तो गजलकारो में अमीर खुसरो, दुष्यंतकुमार, गुलजार, इकबाल, निदा फाजली, मिर्जा गालिब, शाहीर लुधियानवी, ताज भोपाली, अदम गौंडवी, जहीर कुरेशी, बशीर बद्र, अस्थाना 'सहर', ईशरत

अफरी, अंजुम रहबर, फिराक गोरखपुरी, दाग देहलवी, जौक, मजरूह सुलतानपुरी, आलोक त्यागी, ओम प्रकाश नदीम, महाश्वेता चतुर्वेदी आदी मशहूर गजलकार रहे हैं। इनकी गजलोने सामाजिक विसंगतियां और मानव समस्याओं पर तिखा प्रहार किया है। इनकी गजलें गरिब, किसान, मजदूर, नारी की व्यथा को व्यक्त करती दिखती हैं।

अर्थात हिंदी गीत और गजल प्रगतिशील चेतना को एक हत्यार और मंच बनाकर समाज को जगाने और बदलने तथा एक बेहत्तर न्यायपूर्ण दुनिया बनाने का कार्य कर रहे हैं, जो मनोरंजन से कहीं बढकर रहा है।

प्रगतिशील चेतना की मुख्य विशेषताएं-

1. **सामाजिक यथार्थ का चित्रण** – गरीबी, अज्ञान, निरक्षरता, बेरोजगारी और अन्याय आदि बुराईयों को उजागर करना ।
2. **शोषित पीडितों की आवाज** – किसान, मजदूर, दलित, पीडीत, वंचित वर्ग के दर्द को गीत और गजलो के माध्यम से व्यक्त करना
3. **मानवतावादी दृष्टिकोन** – युद्ध, हिंसा और भेदभाव का विरोध कर शांति और भाईचारे का संदेश देना ।
4. **सांप्रदायिकता और रूढीवाद का विरोध**- धर्म और जाती के नामपर होनेवाले भेद के खिलाफ खडा होना ।
5. **लोकभाषा और लोकसंस्कृती का प्रयोग** - आम जनता की भाषा और लोकगीतों का प्रयोग कर जनजन तक इसे पहुँचाना और जनता को सुसंस्कृत बनाना।
6. **आशा और आत्मविश्वास का निर्माण**- निराशा की खाई में डूबे लोगों में नई उम्मीद जताना, आशा का संचार करना और उन्हें संघर्ष के लिए तैयार करना।

हिंदी गीत और गजलो में प्रगतिशील चेतना-

चंद्रसेन विराट कहते हैं, पीडा की अनुभूती ही काव्य की जाननी है, आधुनिक युग में संघर्ष और तणावों के बीच गीत ही एक ऐसा माध्यम है जो संगीतबद्ध हो या बिना संगीत के सुना जाये पर भीडभरी इस दुनिया में भी अपनेपन को तरसते मन को अकेले ना होने का एहसास होता है। आज गीत पर भले ही भावूकता या शास्त्रीयता का आरोप लगाकर उसकी उपेक्षा की जा रही है। वर्तमान छायावादोत्तर गीतकारो ने इस विधा को बहुआयामी बनाकर समृद्ध किया है। कवि पंतजी की भाषा में कहे तो "वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गाण, उमडकर आंखो से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।"

मातृभूमी, देशप्रेम और राष्ट्रीयता की भावना को **चंद्रसेन विराट** के गीतो में इस प्रकार व्यक्त किया है-

"इसी मिट्टी में मिलू राम करें, फुल बन बन खिलूँ राम करें
स्वर्ग का दो न लालच तुम, स्वर्ग मिल जाय न लूं राम करें।"
"हो धूल इसकी चंदन, अमृत है इसका जल
है झुमती हवाओ में मोतियों फसल
बलिदान की प्रथाएं रण का विधान हो
अंतिम समय अधर पर जय हिंद का वचन हो।
बढ के सपूत देश के शेरो से दहाड़ो
जो हाथ उठ रहा है, वह हाथ उखाडो,
सदियों न उठे दुश्मन इस तरह पछाडो
फिर रक्त से दुश्मन के नहाने का समय है।"

भारतवर्ष को यदि खुशहाल और संपन्न बनाना है तो देश में ऐसे मजहब की जरूरत है जिसमें इंसान को इंसान बनाने की बात हो, इस बात को समझाते हुए **गोपालदास 'नीरज'** लिखते हैं-

"अब तो मजहब कोई ऐसा भी चलाया जाये
जिसमें इन्सान को इन्सान बनाया जाये,
जिसकी खुशबू से महक जाये पडोसी का भी घर

फुल इस किस्म का हर सिम्त खिलाया जाये।"

एकता, समता, बंधुता की अभिलाषा करते हुए **विराट** लिखते हैं-

"जो न हो मैली धुएँ से उस कीरण की खोज है
दृष्टि दूषित हो न जिसकी उस नयन की खोज है,
भिन्न प्रांतो, धर्म, भाषा, जातियों में एक था
है कहाँ मेंरा वतन? मुझको वतन की खोज है।"

विराट जी अपनी गजल में समाज की **वेदना तथा पीडा** को व्यक्त करते हुए लिखतें हैं-

"पाल कर रख न उसे हाथ के छाले जैसा
देर तक दुःख को नही ओढ दुशाले जैसा,
तुम कभी थे सूर्य लेकिन अब दियो तक आ गये
थे कभी मुखपृष्ठ पर अब हाथियों तक आ गए।
ठीक तो ये है कि दुःख जितना है उतना ही रहे,
एक काँटे को बना खुद ही न भाले जैसा।
सभ्यता के पत पर आदमी की यात्रा,
देवताओं से शुरू की वहशियों तक आ गये।"

जीवन की नश्वरता और कर्तुतों की विडंबना को अधोरेखित करते हुए **विराट जी** लिखते हैं -

"आग लेकर हाथ में पगले जलाता है किसे?
जब न ये बस्ती रहेगी, तू कहाँ रह जाएगा?
मुझको उस वैद्य की विद्या पे तरस आता है
भुखे लोगों को जो सेहत की दवा देता है।"

कुँअर बेचैन के शब्दों में समाज की पीडा उनकी गजलों में इस प्रकार व्यक्त है-

"दोनों ही पक्ष आये हैं तैयारियों के साथ
हम गर्दनों के साथ है ओ आरियों के साथ।
बोया न कुछ भी फस्ल मगर ढूंढते है लोग
कैसा मजाक चल रहा है क्यारियों के साथ।
सेहत हमारी ठीक रहे भी तो किस तरह
आते हैं खुद हकीम ही बिमारियों के साथ।
कुछ रोज से मैं देख रहा हूँ कि हर सुबह
उठती है इक कराह भी किलकारियों के साथ।"

फिराक गोरखपुरी अपनी गजल में दुःख तथा विरह को व्यक्त करते हुए लिखतें हैं -

"शामें गम कुछ उस निगाहे-नाज की बाते करो
बेखुदी बढती चली है राज की बाते करो,
नकहते जुल्फे परेशां दास्ताने शामें गम
सुबह होने तक इसी अंदाज की बाते करो,
जिसकी कुरकत ने पलट दी इश्क की काया 'फिराक'
आज उसी ईसा नफस दमसाज की बातें करो।"

'अदम' गौंडवी अपनी गजल में गरिबी, भ्रष्ट राजनीति पर व्यंग्य कसते हुए लिखते हैं-

"काजू भुने पलेट में विस्की गिलास में,
उतरा है रामराज्य विधायक निवास में,
पक्के समाजवादी है तस्कर हो या डकैत
इतना असर है खादी के उजले लिबास में,
आजादी का ये जश्न मनाये वे किस तरह
जो आ गये फुटपाथ पर घर की तलाश में,
पैसे से आप चाहे तो सरकार गिरा दे
संसद बदल गई है यहाँ की मखास में,
जनता के पास एक ही चार है- बगावत
यह बात कह रहा हूँ मैं होशोहवास में।"

जगजीवनलाल अस्थाना 'सहर' शहर और गाँव की बदलती स्थिती पर गजल में लिखते हैं-

"दिल मेंरा इस सलिके से जलता दिखाई दे
आए धुँआ नजर में न शोला दिखाई दे,
हर चेहरा अजनबी है हर आवाज अनसुनी
कोई तो हो जो शहर में अपना दिखाई दे,
ये कैसा शहर है कि कहीं छाव ही नहीं
बस सिर्फ अपने जिस्म का साया दिखाई दे,
पहुँची ये कहाँ ले के मुझे मेरी जिंदगी
मंजिल नजर में आये न रस्ता दिखाई दे,
कैसे यकी करूँ ये सहर हो गई सहर
मुझको तो शहर-शहर अंधेरा दिखाई दे।"

मंगेश पाडगावकर जी अपनी गजल में गाँव और शहर में तुलना करते हुए लिखते हैं-

"हे वेगळेच रस्ते ही वेगळीच नाती
शहरात माणसांना ही माणसेच खाती,
इथल्या इमारतींना आकाश ठेंगणे हे
सर्वत्र नक्षत्रांच्या माजल्या जमाती,
रस्त्यावरी उपाशी हे मूल माणसाचे
घाईत माणसेही बघती निघून जाती,
येथील भक्षकांना गणवेश रक्षकांचे
अन बेरके लुटारू नेतेपणात न्हाती,
मांडून सापळे ही टपुनी उभी दुकाने
टाळूवरील लोणी यांच्या सदैव खाती,
पिकवी कुणी न काहीं विकतात मात्र सारे
वाहून भार यांचा शरमून जाय माती,
गर्दीत राहूनीही परकेपणा न संपे

येथे मुकेच सारे बहिऱ्यासमोर गाती."

2 "जमा खर्च स्वातंत्र्याचा मांडणार केव्हा?
जाब ऊंच प्रासादांचा मागणार केव्हा?
जाहिरात आई ज्यांची जाहिरात बाप
आत्मविक्रयाचे झेंडे फाडणार केव्हा?"

निदा फाजली हिंदी और उर्दू के मशहूर शायर तथा गीतकार और लेखक थे। सफर में धूप तो होगी इनका मशहूर गजल संग्रह है। भारत पाकिस्तान विभाजन के दौरान उनका परिवार पाकिस्तान चला गया पर निदा फाजली ने भारत में ही रहना पसंद किया, उत्कृष्ट गजल और दोहा लेखन में उन्होने नाम रोशन किया। शायरी में आम आदमी की जिंदगी की सच्चाई और लोकसंवेदना नई पीढ़ी को प्रोत्साहन देने का कार्य करती है। प्रस्थापित लेखक या दरबारीकरण के बारे में विद्रोही लेखन कार्य करने से उनपर बहिष्कार भी डाला गया था, वे एक विद्रोही गजलकार थे।

निदा फाजली की गजले, गीत और शायरी के अनेक रंग है। जिंदगी के वैविध्यपूर्ण सफर में शहर, गाँव धूप-छाँव, आँधी, तुफान, रिश्ते-नाते, बादल, बरसात, बसंत, तीर्थ, पर्वत-त्योहार आदि विषयों का भटकते हुए बंजारे का मंजरनामा है निदा की शायरी। प्राचीनता से ताकद बटोरती है और आधुनिकता से सच्ची यारी निभाती है। हिंदी, उर्दू की शायरी निदा के बिना अधुरी सी लगती है। उनकी शायरी में लोकसंवेदना, लोकवेदना, लोकभावना की धडकन और ललकार नजर आती है इनकी शायरी जिंदगी के जीते-जागते तजूरबान की तजुरमानी है। जिसे सही ढंग से देखने के लिए रूढी-परंपरा से बाहर आना होगा।

निदा फाजली समाज की कैफियत व्यक्त करते हुए लिखते हैं-

"नक्शा उठा के कोई नया शहर ढुँढिए
इस शहर में तो सबसे मुलाकात हो गई,
हर आदमी में होते हैं दस-बीस आदमी
जिसको भी देखना हो कई बार देखना।

गजल धूप में निकलो में निदा लिखते हैं -

"धूप में निकलो घटाओ में नहा कर देखो
जिंदगी क्या है किताबों को हटा कर देखो,
सिर्फ आंखों से ही दुनिया नही देखी जाती
दिल की धडकन को भी विनाई बनाकर देखो,
पत्थरो में भी जबा होती है दिल होते हैं
अपने घर के दरो-दिवार सजा कर देखो,
फासला नजरों का धोका भी तो हो सकता है
चाँद जब चमके जरा हात बढाकर देखो।"

भावप्रवनता को व्यक्त करनेवाले **निदा** के दोहे -

अंदर मुरत पर चढे घी पूरी मिष्ठान,
मंदिर के बाहर खडा ईश्वर माँगे दान।
मैं रोया परदेस में भिगा माँ का प्यार
दुःख ने दुःख से बात की बिन चिट्ठी बिन तार।
बच्चा बोला देखकर मस्जिद अलिशान
अल्ला तेरे एक को इतना बडा मकान !

सबकी पूजा एक सी अलग अलग हर रीत
मस्जिद जाए मौलवी कोयल गाये गीत ।
माटी से माटी मिलें खो के सभी निशान
किसमें कितना कौन है कैसे हो पहचान?"

गीतकार **रवींद्र कुमार** अपने गीतो में जीवन की वेदना, रिश्तों की टूटन, परिवार की दुर्दशा, मशिनीकरण, वर्तमान यांत्रिकीकरण तथा यंत्रवत मानव की दशा पर लिखते हैं-

"क्या बतलाएं, इस घर में बच्चे उदास है
घर में सब कुछ है फ्रिज, टीव्ही और कम्प्युटर
सूना कब से नदी किनारे का पुजा घर
वेबसाईट भी हर बच्चे के लिए खास है
जुडे हुए है सारे कमरे डॉट कॉम से
सपने बुक है हर बच्चे के अलग नाम से
मम्मी पप्पा के कमरे बस पास पास है ।"

जनवादी कवि **दुष्यंत कुमार** अपनी गजल 'हो गई है पीर' में समाज की दुर्दशा को चित्रित करते हुए लिखते हैं -

"हो गई है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए
आज यह दिवार परदों की तरह हिलने लगी
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए
हर सडक पर, हर गली में, हर नगर, हर गाव में
हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए
सिर्फ हंगामा खडा करना मेंरा मकसद नही
मेरी कोशिश है कि ये सुरत बदलनी चाहिए
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही
हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए ।"

माँ-बाप, व्यवस्था और भ्रष्ट सत्ताधारियों पर **मंगेश पाडगावकर** अपनी गजल में लिखते हैं -

"जमलेत सर्व सौदे इथे कराया
विकतील आईबाप हे तुंबडी भराया,
कधी झाडतील लाथा पडतील ही गळ्यात
बघती गळ्यावरी हे संधी सुरी धराया,
जाऊनी मंदिरी हे करिती दुकान त्याचे
बडवेगिरीस यांच्या नाही दया न माया,
सत्ता मिळेल तेथे हे लाळ घोटतील
हे झेलतील थुकी खुर्चीमध्ये शिराया,
खातील त्या घराचे हे मोजतील वासे
जळवाच सज्ज साऱ्या शोषून रक्त घ्याया,
टोळ्या करून चरती हे हावरे लुटारू

अन् सर्व देश यांनी हा घातला मराया."

जीवन की नश्वरता पर पाडगावकर जी लिखते हैं-

"आलो इथे कशाला माझे मला कळेना
या बेगडी जगाशी हा सूरही जुळेना,
झेलूनी घाव सारे केली अपार प्रीती
पण प्रीतिच्या हिशेबी व्यवहार आकलेना,
ही रक्त शोषणारी सिंहासने सभोवती
सत्तेपुढे अशा या माझा दिवा जळेना,
धनवंत पत्थरांच्या दिसल्या अमाप राशी
दगडात देव कोठे शोधूनही मिळेना."

मंगेश पाडगावकर जी मनुष्यता खोनेवाली वर्तमान पीढी पर व्यंग्य कसते हुए लिखते हैं -

"कोलाहलात साऱ्या माणूस शोधतो मी
गर्दीत माणसांच्या माणूस शोधतो मी,
हे धर्म देवळे ही धुंडून सर्व आलो
भिंतीपल्याड त्यांच्या माणूस शोधतो मी,
फासून रंग रात्री दिवसा भकास सारे
खिडकीत विक्रयाच्या माणूस शोधतो मी,
या झोपड्यात आली वाहून ही गटारे
चिखलात हुंदक्यांच्या माणूस शोधतो मी."

बशीर बद्र अपनी गजल में समाज की विडंबना पर प्रहार करते लिखते हैं-

"लोग टूट जाते हैं एक घर बनाने में
तुम तरस नहीं खाते बस्तियाँ जलाने में,
उजाले अपनी यादों के हमारे साथ रहने दो
न जाने किस गली में जिंदगी की शाम हो जाये,
घरो पे नाम थे नाम के साथ ओहदे थे
बहुत तलाश किया कोई आदमी न मिला,
तुम अभी शहर में क्या नए आये हो
रुक गये राह में हादसा देख कर।"
"ये दुनिया है यहाँ कोई जगह खाली नहीं रहती
किसी के आने जाने से कभी कुछ कम नहीं होता,
यहाँ लिबास की कीमत है आदमी की नहीं
मुझे गिलास बडा दे शराब कम कर दे,
हम भी दरिया है हमे अपना हुनर मालूम है
जिस तरफ भी चल पड़ेंगे रास्ता हो जाएगा।"

अमीर खुसरो अपनी गजल में लिखते हैं -

"गोरी सोए सेज पर मुख पर डाले केस

चल खुसरो घर अपने सांझ भई चहुं देस ।"

गुलजार अपनी शायरी में लिखते हैं -

"हाथ छूटे भी तो रिश्ते नहीं छोडा करते
वक्त की शाख से लम्हे नहीं तोडा करते,
आईना देखकर तसल्ली हुई
हमको इस घर में जानता है कोई,
चेहरे में है आईना कि आईने में है चेहरा
मालूम नहीं कौन किसे देख रहा है।"

अंजुम रहबर लिखते हैं -

"वो आके मेरे गाँव से वापस भी जा चुका
मैं थी कि अपने घर को सजाने में रह गई ।"

मशहूर शायर **गालिब** अपनी गजल में लिखते हैं -

"इस सादगी पे कौन न मर जाये ऐ खुदा
लडते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं,
बस की दुश्वार है हर काम का आसां होना
आदमी को भी मयसर नहीं इंसा होना ।"
अब तो घबरा के ये कहते हैं कि मर जायेंगे
मरके भी चैन न खाया तो किधर जायेंगे,

रियाज मजीद लिखते हैं -

दुःख मेंरा देखो की अपने साथियो जैसा नहीं
मैं बहादुर हूँ मगर हारे हुए लष्कर में हूँ।

डॉ. **हनुमान नायडू** अपनी व्यथा को इसप्रकार व्यक्त करतें हैं-

आदमी कोई नहीं हम घुम आये हर गली
या तो बस्ती हिंदुओं की या मुसलमानों की है।

राजेश रेड्डी के शब्दों में बेटी की व्यथा -

"मेंरे दिल के किसी कोने में इक मासूम सा बच्चा
बडों की देखकर दुनिया बडा होने से डरता है।
हमने देखा है कई ऐसे खुदाओं को यहाँ
सामने जिनके वो सचमुच का खुदा कुछ भी नहीं।"

विजय वाते बेटी की व्यथा को लिखते हैं -

एक पल में जी लिये पूरे बरस पच्चीस हम
आज जब बिटिया दिखी साडी तेरी पहनी हुई।

जाहीर कुरेशी समाज की विडंबना को व्यक्त करते हुए लिखते हैं -

"आदमी की बात ही मत कीजिए
रोज बिकता है खुदा बाजार में,
ग्राहकों की क्या कमी है दोस्तों

माल होना चाहिए दुकानो में ।"

अंत में **गालिब** की चिंता वर्तमान पूरे समाज की चिंता है इसे व्यक्त करते हुए वे कहते हैं -

"मेरी खुदा से बस इतनी दुवा है 'गालिब'
मैं जो अपनी वसियत लिखूँ बेटा पढ ले ।"

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं, उपर्युक्त सभी गीत और गजलो में जो प्रगतिशील चेतना का स्वर मुखरित हुआ है वह अत्यंत उद्बोधक और प्रेरणादायी है। इन सभी कवि तथा गजलकारों के गीत प्रगतिशील चेतना और सामंजस्य के भावों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। इन गीतों तथा गजलों के माध्यम से एकता, सामंजस्य, राष्ट्रीयता, दीनता, बेरोजगारी, अन्याय, जीवन संघर्ष, किसान-मजदूर भेदभाव ऊच-नीचता, नारी व्यथा, धर्म-अधर्म, आत्मविश्वास, इशारा, दर्द, पीडा, शहर-गाँव, अशांति, आतंक, मानवता आदी बातों पर गहण, गंभीरता और सूक्ष्मता से प्रकाश डालने की कोशिश की है। ये समझाने का प्रयास किया है कि देश परिवार समाज के विकास हेतू प्रगतिशील विचार भावनाओं की जरूरत है। प्रत्येक व्यक्ति में इन भावों की जरूरत है। धर्म, जात, संप्रदायवाद, द्वेषभाव निंदा उपेक्षा से भी बढ़कर कुछ हो सकता है, जो मानवता के लिए जरुरी है। उसका अनुकरण करें; राष्ट्रहीत को ध्यान रखें, संपूर्ण समाज का आरोग्य निरोगी रखने में योगदान दो यही हर भारतवासी का फर्ज है। यही लोककल्याणकारी सेवाभाव जीवन में फलप्राप्ती कराने में सहयोग देगा।

संदर्भ सूची-

1. दुष्यंत कुमार - साये में धूप (गजल संग्रह) - राधाकृष्ण प्रकाशन सं.- 14 (2023)
2. कन्हैयालाल नंदन(संपा) - आज के प्रसिद्ध शायर - राजपाल अँड सन्स प्रकाशन, दिल्ली- 2009
3. डॉ. शुभलक्ष्मी - आधुनिक हिंदी काव्य में राष्ट्रीय चेतना- अमन प्रकाशन, कानपूर -1984
4. चंद्रसेन विराट- मिट्टी मेरे देश की (गजल संग्रह)- प्रगती प्रकाशन, आगरा- 1975
5. नीरज- कांरवा गुजर गया (गजल संग्रह)- हिंदी पॉकेट बुक्स, दिल्ली -1991
6. मंगेश पाडगावकर- गजल- मौज प्रकाशन, मुंबई- 2009
7. बशीर बद्र- गजल 2000 (धूप जनवरी की फुल दिसंबर के) - वाणी प्रकाशन, दिल्ली
8. हिंदुस्तानी गजले – कमलेश्वर - राजपाल अँड सन्स प्रकाशन, दिल्ली- 2010

*****

समकालीन हिंदी ग़ज़लों में चित्रित राजनीतिक चुनौतियाँ

सुश्री. श्रीदेवी बबन वाघमारे
शोधछात्रा
शिवाजी विश्वविद्यालय
shrideviwaghamare1993@gmail.com
दूरभाष : 8378084924

शोधसार :

साहित्य सृजन हेतु साहित्यकार का पूरक तत्त्व है समाज, समाज मे घटित होने वाली घटनाओं से प्रेरित होकर साहित्यकर साहित्य का सृजन करता है। साहित्य समाज का दीपस्तंभ होता है। मूलत: साहित्य समाज की अनुभूतियों का, सुख-दुखों, हर्ष-विषाद का वास्तविक रेखांकन करता है। डॉ.कमला प्रसाद पाण्डेय जी कहते है कि "विश्व के किसी भी साहित्य का जन्म उस देश के समाज की आवश्यकताओं का प्रतिफल है। साहित्य के इतिहास के विभिन्न युग,युग विशेष के ही संदर्भ है हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदिकाल,भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिक काल साहित्य के युग है। इन सभी युगों की प्रेरणा भूमि समाज ही रही है"[1] एक नवीन सृष्टि का सृजन करने का कार्य साहित्यकार करता है। साहित्य मे 'सहित' भाव होता है। साहित्य समाज का प्रतिनिधित्व करता है आदिकाल से रीतिकाल तक सिर्फ पद्यात्मक लेखन होता था। आधुनिक काल मे गद्य और पद्य विधाएं अलग-अलग हो गई। आधुनिक काल मे विभिन्न विधाओं के माध्यम से साहित्यकार अपने युग का नेतृत्व करता हुआ दिखाई देता है। 'ग़ज़ल' यह विधा फारसी है। फारसी से अरबी और अरबी से उर्दू और उर्दू से हिन्दी मे इसकी यात्रा दिखाई देती है।'ग़ज़ल' विधा के बारे मे माधव कौशिक जी लिखते है - "ग़ज़ल के निरंतर विकास ने यह सिध्द कर दिया है कि समकालीन समाज की तमाम अंतर्विरोधों व संकटपूर्ण स्थितियों को इस विधा के माध्यम से बखूबी बयान किया जा सकता है। सामाजिक विसंगतियों तथा विद्रूपताओं के साथ-साथ मानवमन की गहनतम भावनाओं को अभिव्यत करने तथा सूक्ष्म संवेदनाओं को वाणी प्रदान करने की अपार क्षमता और सामर्थ्य इस काव्य विधा में खूब है"[2] 'ग़ज़ल' मूलत: श्रृंगार रस के दोनों पक्षों का उद्घाटन करनेवाली काव्य रचना है। 'ग़ज़ल' का एक शेर पूरे जीवन का तत्वज्ञान है। 'ग़ज़ल' अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। स्वतंत्रोत्तर काल में 'ग़ज़ल' सिर्फ प्रेम काव्य नहीं वरन समाज के परिचय कराने वाली विधा बन गई है। स्वतंत्रोत्तर काल में जो ग़ज़ल विधा सिर्फ शमा-परवाना, हीर-रांझा, लैला-मजनू के इर्द-गिर्द घूमती थी, उसको आम आदमी के जीवन के साथ जोड़ने का प्रयास दुष्यंत कुमार ने किया और हिंदी 'ग़ज़ल' को एक नई दिशा प्रदान की स्वतंत्रता के बाद आम आदमी के जीवन के विभिन्न पहलुओं को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने का काम इस विधा ने किया। कहा जाता है कि साहित्य अपने आसपास के परिवेश की उपज होता है। साहित्यकार अपने समाज को खुली आंखों से देखता है और पाठकों को विचार करने के हेतु मजबूर करता है। साहित्य समाज का दीपस्तंभ बनकर एक नवीन सृष्टि का निर्माण करता है। आजादी के उपरांत हमारे देश में आधारभूत संरचना के विकास के साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, सुविधा, कृषि, उद्योग, विज्ञान, अंतरिक्ष आदि क्षेत्रों में उन्नति तो हुई लेकिन, सभी जगह पर उन्नति नहीं हुई। एक तरफ बुलेट ट्रेन चल रही है तो दूसरी तरफ रास्ता न होने के कारण बच्चे अपने स्कूल नहीं पहुंच रहे हैं। आजादी के इन 75 सालों में समाज के सामने विभिन्न समस्याएं खड़ी हुई जिसमें बेरोजगारी, गरीबी, सांप्रदायिकता, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, आर्थिक एवं सामाजिक विषमता, महंगाई जैसी समस्याओं ने जनता के सामने अपने पैर फैलाने शुरू किए हैं, इन सभी घटनाओं पर मीठी चुटकी लेने का कार्य हिंदी 'ग़ज़ल' ने किया हुआ दिखाई देता है।

बीज शब्द : समकालीन हिंदी ग़ज़ल, भ्रष्टाचार, गरीबी, आर्थिक एवं सामाजिक विषमता सांप्रदायिकता।

मूल आलेख :

काव्य मनुष्य जीवन की आलोचना है। काव्य में मनुष्य जीवन के दोनों पक्षों का चित्रण होता है। कवि का कर्म है - मनोरंजन के साथ-साथ उपदेश देना इसी की अभिव्यक्ति करते हुए ग़ज़लकार कुँवर बैचेन लिखते हैं –

"जो वक्त की आंधी से खबरदार नहीं हैं।
कुछ और ही होंगे वह कलमकार नहीं है"[3]

इसी प्रकार ग़ज़लकारों ने कल्पनाओं के रंगीन सपनों से बाहर निकाल कर समाज के वास्तविकता पाठकों के सामने प्रस्तुत की। दुष्यंत कुमार ने 'ग़ज़ल' को हुस्न और इश्क की कल्पना से निकलकर राजनीतिक एवं सामाजिक चेतना से अवगत कराया। अपने समाज को आईना दिखाने का कार्य दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में किया। 'ग़ज़ल' ने जीवन की विविधता के साथ-साथ

सामान्य जीवन के तमाम विसंगतियों को युग के समक्ष रखने का कार्य किया। समकालीन हिंदी 'ग़ज़ल' आजादी के बाद के भारत की तमाम तरह की चुनौतियां एवं समस्याओं को स्पष्ट रूप से रेखांकित कर रही है, साथ ही क्रांति की भावना जगाने का कार्य कर रही है। दुष्यंत कुमार कहते हैं –

"सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए"[4]

स्वतंत्रता के पश्चात रामराज्य की कल्पना का जामा पहनकर लोगों को ठगा गया। हमारे राष्ट्र के नायकों ने राष्ट्र की प्रगति तो की लेकिन इतनी नहीं की जनता को उपेक्षित थी। आज आजादी के 78 साल बाद भी भारत की जनता अपनी बुनियादी जरूरतों लिए लड़ रही है। अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समस्या एवं चुनौतियों से समाज लड़ रहा है। आजादी के समय जिस भावना से समाज लड़ा था, आजादी के पश्चात इस भावना में कहीं ना कहीं बदलाव आ गया है। मूल्यों को धाराशाई कर अपनी तिजोरी कैसी भरी जाए इस कल्पना से भारतीय राजनीति में कदम रखे जाने लगे हैं। इसके परिणाम स्वरुप लोकतंत्र का पतन हो गया है। इस सब संबंध में डॉ.अनिल कुमार वर्मा कहते हैं – "जनतंत्र मानव कल्याण का वाहक होता है, किंतु ऐसा लगता है कि भारतीय जनतंत्र की समूची ऊर्जा ही आज जैसे स्खलित सी हो गई है। जैसे-जैसे लोकतंत्र की आयु की सीढ़ियों पर चढ़ता जा रहा है, वैसे-वैसे इसकी आंतरिक विकृतियों ने विकराल रूप धारण किया है। डरावना यथार्थ तो यह है कि जिन लक्षण के लिए और जिन मूल्यों के लिए संबल के साथ इसकी स्थापना की गई थी, वे वर्तमान राजनीति की गतिविधियों के कारण पूरी तरह लुप्त होते जा रहे हैं"[5]

वर्तमान दौर में मूल्य का पतन जीवन के हर एक क्षेत्र में अनिवार्य बन गया है। और यही मूल्यहीनता बहुत सी समस्याओं और चुनौतियों को मूल है। समकालीन हिंदी गजलों में इन राजनीतिक चुनौतियों का चित्रण ग़ज़लकारों ने बखूबी से किया है। स्वतंत्रता के पश्चात सबसे बड़ी समस्या भारतीय समाज के सामने आ गई जो है – भ्रष्टाचार। आजादी के 78 साल गुजारने के बाद भी आम जनता की स्थितियों में इतना बदलाव नहीं आया। जनसेवा जैसे पवित्र स्थान की जगह सिर्फ स्वार्थ ने ले ली है एक तरफ जनता की पीड़ा, दर्द है तो दूसरी तरफ सत्ता के आश्वासनों का जाल और इस स्थिति का कारण है राजनीति और प्रशासन के क्षेत्र में हो रहा व्यापक भ्रष्टाचार। इसी भ्रष्टाचार की दीमक ने इस क्षेत्र में अपना घर बना लिया है। जिसके कारण विकास में हमेशा बाधा निर्माण हो रही है। एक तरफ भारत की मध्यवर्गीय जनता है जो मेहनत से अपना टैक्स अदा कर रही है, जिसके कारण विभिन्न सरकारी योजनाओं को सफल बनाने में इसका बहुत बड़ा हिस्सा होता है वह आज गायब हो रहा है, उसका कुछ ही हिस्सा सही जगह पहुंच रहा है। इस पर तीखा प्रहार करते हुए जहीर कुरैशी लिखते हैं –

"पचहत्तर फ़ीसदी वे खा गए।
हमारे हाथ तब अनुदान आया"[6]

राजनीति और प्रशासन क्षेत्र में हो रहे भ्रष्टाचार के कारण जनता प्यासी की प्यासी रह जाती है। योजनाओं की सिर्फ बरसात होती है, लेकिन उन योजनाओं से आने वाली राशि असली हकदारों तक नहीं पहुंच पाती जिसके कारण जनता अपने मूल अधिकारों से वंचित रह जाती है और क्षोभ के सिवा उसके पास दूसरा रास्ता नहीं होता। इसी कारण पीढ़ी दर पीढ़ी राजनेता अपना कार्य करते हैं और प्रशासन चुपचाप देखकर आंखें मूंद लेता है।दुष्यंत कुमार लिखते हैं-

"यहां तक आते-आते सूख जाती है कई नदियां;
मुझे मालूम है पानी कहां ठहरा हुआ होगा"[7]

तो महेश कटारे 'सुगम' लिखते हैं –

"हर विकास की नदी कहां खो जाती है
क्यों धुंधले समृद्धि चित्र ये पहचानो"[8]

भ्रष्टाचार का यह संक्रमित रोग अब अब मीडिया और न्यायपालिका को भी चपेट में ला रहा है। न्याय पाने हेतु हम न्यायपालिका में पहुंच जाते हैं, लेकिन आज न्याय मिलना संभव नहीं है। न्याय आज कस्तूरीमृग के भांति बन गया है। अपराधियों को कड़ी से कड़ी सजा देने वाली न्यायपालिका आज सिर्फ अपराधियों के पक्ष में खड़ी है। लोकशासन का चतुर्थ स्तंभ है – मीडिया। आज वह भी बिकाऊ बन गया है। टीआरपी बढ़ाने के लिए सत्ता के हाथों में बिक गया है। इसी समस्या को डी.एम.मिश्र जी कहते हैं -

"बड़े आराम से वह कत्ल करके घूमता है

उसे मालूम है जज भी तो पैसा सूंघता है"[9]

इस प्रकार अपराध करने वाले खुलेआम घूम रहे हैं और जिसके साथ अन्याय हुआ है वह डर-डर के जी रहा है। ऐसे अपराधी सत्तापर विराजमान लोगों के हाथों भी मीडिया बिक चुकी है। इस बात पर टिप्पणी करते हुए गजलकार राम मेश्राम लिखते हैं -

"वक्त की चुनौती से कटा हुआ मीडिया
सत्ता के कदमों में बिछा हुआ मीडिया
सेठों की मेहर पर टिका हुआ मीडिया
डॉलर की भोपु का 'हुआ-हुआ' मीडिया"[10]

पूरे देश के विकास में बाधा बनकर भ्रष्टाचार फैल रहा है और एक गंभीर चुनौती बन गया है। भ्रष्टाचार के आंकड़े जारी किए गए जिसमें भारत विश्व के 180 देश में 2022 में 50 वें अंक पर था और 2023 में वह 93 स्थान पर है। यह रोग हमारी न्यायपालिका और मीडिया को भी संक्रमित कर रहा है। इसका एक ही समाधान है क्रांति। इस क्रांति की प्रेरणा को दुष्यंत कुमार जी की ग़ज़ल की पंक्तियों से स्पष्ट कर सकते हैं –

"हो गई है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए
हिमालय से बहती गंगा निकलनी चाहिए"[11]

इस समस्या के उपरांत दूसरी समस्या भी हमारे भारत को खोखला बना रही है जो है- आतंकवाद। आतंकवाद यह पूरे विश्व की समस्या बन गई है। आजादी के पश्चात पड़ोसी देशों के द्वारा किए गए आतंकी हमले से आज भी हम लड़ रहे हैं। हमारा पड़ोसी देश आतंकवादी संगठनों को संरक्षण दे रहा है, जो जमीन जम्मू-कश्मीर एवं संपूर्ण देशभर आतंकी हमले कर निर्दोष जनता का खून बहा रहा है। आतंकवाद से प्रभावित विभिन्न राज्यों में पढ़े-लिखे लोग भी धर्म के नाम पर या गरीबी, बेरोजगारी एवं अन्य कारणों की वजह से आतंकवादी संगठनों से जुड़े हुए हैं और निरीह जनता पर कहर बरसा रहे हैं। जहां केसर की गंध थी वहाँ खून की नदियां बह रही है। आतंकवादी हमलों ने सारे विश्व को परेशान किया हुआ है। इसी बात हिंदी ग़ज़लकारों ने अपनी कलम के इस समस्या प्रस्तुत किया है।कमलेश भट्ट 'कमल' कहते हैं-

"जहां केसर महकता था जहां खुशबू पनपती थी
उगी बारूद की फैसले वही बंकर निकल आए"[12]

अथवा

"दिलों में घाव माथे पर तिलक है
वही जो कल तलक था आज तक है
कहाँ हंसना है कोई वादियों में
वहीं बस चीख है, डर है, कसक है"[13]

विभाजन के पश्चात हमें सांप्रदायिकता से गुजरना पड़ा। आजादी के पश्चात राजनीतिक दलों ने सत्ता को पाने हेतु धर्म, जाति के नाम पर लोगों को लड़वाया। अंग्रेजों की नीति 'फूट डालो और राज करो' के अनेक दुष्परिणाम है। इस नीति के कारण आजादी के पश्चात दंगे हुए जिसमें 84 सिखों एवं बाबरी मस्जिद विध्वंस जैसे सांप्रदायिक दंगों की हम ले सकते हैं। इसी के साथ हमारे देश के संसद पर 2001 में मुंबई में 2008 में वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हुए आतंकी हमले सांप्रदयिक विचारों से हुए जिसने दुनिया को सोच विचार करने हेतु मजबूर किया। सांप्रदायिकता में सियासी साजिश के शिकार होकर बेकसूर लोग दम तोड़ देते हैं। आज अनेक धर्मगुरु ठेकेदार बनकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। धर्म के नाम पर लोगों में दूरियां निर्माण करना है। इस प्रकार की बढ़ती सांप्रदायिकता के ऊपर करारा व्यंग्य समकालीन हिंदी गजलकारों ने किया है। रामकुमार कृषक कहते हैं -

"वह अल्लाह-हो अकबर यहां
श्रीराम की जय-जय
इधर गुरुओं की पौबार उधर
रहबर बहुत खुश है"[14]

राम मेश्राम लिखते हैं –

"आग भड़की खून पानी हो गया

ख़ौफ़ में दिल ब्रम्ह ज्ञानी हो गया"[15]

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि आजादी के उपरांत हमारे देश के हर क्षेत्र में काफी बदलाव आया। भारतीय समाज और लोकतंत्र के सामने अनेक समस्याएं निर्माण हुई और यह समस्याएं आज भी दिखाई दे रही है। उनमें बढ़ोत्तरी हो रही है। समाज में व्याप्त इन सभी विसंगतियों को इन ग़ज़लकारों ने समाज के सामने प्रभावी व प्रामाणिक ढंग से चित्रण किया है।

संदर्भ सूचि :

1. कमला प्रसाद पाण्डेय – छायावादोंत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्टभूमि , पृ.क्र. 19-20
2. हाथ सलामत रहने दो -ग़ज़ल संग्रह -माधव कौशिक-भूमिका से
3. कुँवर बैचेन – आंधीयों धीरे चलों,वाणी प्रकाशन,दिल्ली तृतीय संस्करण 2024 पृ.क्र.69
4. दुष्यंत कुमार -साये मे धूप , राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली पाँचवी आवृत्ती, पृ.क्र.30
5. जाहीर कुरेशी एवं डॉ. मीनाक्षी दुबे(संपादक)-सादगी का सौन्दर्य:वशिष्ठ अनूप का सृजन, साहित्य भांडार,प्रयागराज 2023, पृ.क्र.142
6. जहीर कुरेशी – भीड़ मे सबसे अलग,मेधा बुक्स,दिल्ली,संस्करण2003, पृ.क्र.9
7. दुष्यंत कुमार -साये मे धूप,राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पाँचवी आवृत्ती, पृ.क्र.15
8. महेश कटारे 'सुगम'- अय हय हय,काव्या पब्लिकेशन, भोपाल, पृ.क्र. 60
9. डी.एम.मिश्र – आईना-दर-आईना, नमन प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ.क्र.111
10. राम मेश्राम – आग मे उड़ान, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद,संस्करण, 2024 पृ.क्र.94
11. दुष्यंत कुमार- साये मे धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पाँचवी आवृत्ती, पृ.क्र.30
12. कमलेश भट्ट 'कमल' कश्मीर
13. विनय मिश्र – सच और है, लिटिल बर्ड पब्लिकेशन, संस्करण 2020 पृ.क्र. 42
14. राम कुमार कृषक – पढिए आँख पाइए, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2020 पृ.क्र. 148
15. राम मेश्राम – आग में उड़ान , अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, संस्करण 2024 पृ. क्र. 110

*****